कर्म तेज सिंह सराओ

बाकू का अखंड-अग्नि मंदिर

गुरु नानक और उदासी साधुओं का संबंध

पुस्तक के बारे में

यह पुस्तक सुरखानी (बाकू) के महाज्वाला जी मंदिर का अवलोकन प्रदान करती है, जिसे बाकू के अग्नि मंदिर के नाम से जाना जाता है। यह मंदिर परिसर, जिसे शिलालेखों में जवाला-जी-का-मंदिर कहा जाता है, एक मठ के रूप में है, जिसकी संरचना इस क्षेत्र की एक विशिष्ट कारवांसराय के समान है, जिस के केंद्र में एक पंचकोना आंगन की दीवारों से घिरी हुई एक चौकोना-स्तंभ-वेदी है। जब यह मंदिर क्रियाशील था, उस समय यह वेदी इस परिसर का केंद्रबिंदु थी जहाँ अग्नि संस्कार किया जाता था। वेदी-अभयारण्य अपने आप में एक चार-तरफा निर्माण है, जो सभी दिशाओं में खुला है, और इसमें चार आयताकार स्तंभ हैं, जो मेहराब से जुड़े हैं और ऊपर एक चौकोर गुंबद (कपोला) है। वेदी के चारों ओर चौबीस प्रकोष्ठ हैं जो मूर्तियों, तपस्वी उपासकों, हिंदू और सिख तीर्थयात्रियों और व्यापारियों को उनके माल-जानवरों के साथ आवास प्रदान करते थे। मौजूदा परिसर का निर्माण पहले की उस प्राचीन संरचना पर हुआ है जो अग्नि पूजा स्थल के रूप में कार्य करती थी। यह पुस्तक हिंदू और सिख धार्मिक परंपराओं, विशेष रूप से उदासी परम्परा के इतिहास और पुरालेख, के छात्रों और विद्वानों के लिये एक अनिवार्य रूप से पढ़ा जाने वाला ग्रंथ है।

लेखक के बारे में

कर्म तेज सिंह सराओ विभाग के पूर्व प्रोफेसर और विभाग प्रमुख हैं। उन्होंने भारतीय बौद्ध धर्म, पालि, तीर्थयात्रा, वेदान्त, समाज-प्रयुक्त बौद्ध धर्म, पर्वतीय ट्रेकिंग, धार्मिक बहुलवाद, और अंतरधार्मिक संवाद पर विस्तार से लिखा है। उन्होंने दिल्ली और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों से डॉक्टरेट की उपाधि और फनोम पेन्ह प्रिय सिहनूक राजा बौद्ध विश्वविद्यालय से मानद डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उन्हें १९८५ में ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिष्ठित राष्ट्रमंडल छात्रवृत्ति से सम्मानित किया गया था। उनकी कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें *The Origin and Nature of Ancient Indian Buddhism* (1989), *Urban Centres and Urbanisation as Reflected in the Pāli Vinaya and Sutta Piṭakas* (1990), *प्राचीन भारतीय बौध धर्म* (२००४), *Pilgrimage to Kailash* (2009), *The Dhammapada: A Translator's Guide* (2009), *कैलाश-मानसरोवर तीर्थयात्रा* (2010), *The Decline of Indian Buddhism: A Fresh Perspective* (2012), *धम्मपद– एक व्युत्पत्तिपरक अनुवाद* (२०१५), *Buddhism and Jainism: Encyclopedia of Indian Religions* (2017), *The History of Mahabodhi Temple at Bodh Gaya* (2020) हैं। २०१८ में भारत के राष्ट्रपति ने उन्हें पालि भाषा के क्षेत्र में अभूत योगदान के लिये प्रतिष्ठा-प्रमाणपत्र तथा २०२० में भारत सरकार ने वैशाख सम्मान प्रशस्ति पत्र प्रदान किया।

“The Atashgah temple housed different kinds of worshippers. Merchants stopped here for short periods of time but their donations were vital for the continued existence of the temple. Meanwhile, the temple had permanent inhabitants like ascetics who practiced quite extreme forms of devotion and self-denial. Travellers wrote about ascetics who kept an arm in one position for many years, laid on quicklime and wore heavy chains.”

(official sign board inside the museum of the temple)

“आतशगाह मंदिर में विभिन्न प्रकार के उपासक रहते थे। व्यापारी यहां कुछ समय के लिये ठहरते थे लेकिन उनका धर्मदान मंदिर के निरंतर अस्तित्व के लिये महत्वपूर्ण था। इसी दौरान, मंदिर में स्थायी तौर पर तपस्वी रहते थे जो भक्ति और आत्म-निषेध की नितान्त चरम विधियों की साधना करते थे। यात्रियों ने ऐसे तपस्वियों के बारे में लिखा है जिन्होंने कई वर्षों तक एक हाथ को एक ही दशा में रखा, दहकते चूने पर लेटे और भारी जंजीरें पहनीं।”

(मंदिर के संग्रहालय के अंदर आधिकारिक साइन बोर्ड)

मेरे दादा-दादी

स्वर्गीय सरदारनी गुरनाम कौर बोला सराओ

और

स्वर्गीय सरदार सरबण सिंह सराओ

की स्मृति को समर्पित

आभार

यह कार्य उन कई व्यक्तियों और संस्थानों की सहायता से संपन्न हुआ, जिनके बिना यह कभी अस्तित्व में न आ पाता। इस पुस्तक के प्रकाशन में व्यक्तिगत रुचि के लिए गुरुजी, अरुण कुमार भाई साहब और नीरज दफ्तुआर मेरे हृदय से आभार के पात्र हैं। मेरे सहयोगी अनीता शर्मा और सुरिंदर कुमार का विशेष धन्यवाद करता हूं जिन्होंने न केवल एक बार अग्नि मंदिर की यात्रा पर मेरा साथ दिया बल्कि समय-समय पर अपनी मूल्यवान टिप्पणियां व ज्ञान सांझा किया। प्रोफेसर अंबालिका सूद जैकब पुस्तक के कवरपेज को डिजाइन करने के लिए मेरे हार्दिक धन्यवाद की पात्र हैं। मैं प्रोफेसर हरपाल सिंह पन्नू का विशेष रूप से आभारी हूं जिन्होंने इस पुस्तक की पांडुलिपि के एक अध्याय को पढ़ा और कई उपयोगी सुझाव और आलोचनात्मक टिप्पणियाँ कीं। शिलालेखों के अनुवाद में मदद करने के लिये मैं संजय कुमार सिंह, विवेक कुमार, जोग्यता राणा, और उज्जवल कुमार का भी आभारी हूं। मैं संजय कुमार सिंह का पांडुलिपि में अनगिनत व्याकरण और वाक्य-विन्यास की गलतियों को ठीक करने के लिए विशेष रूप से ऋणी हूँ। मैं अंग्रेज, जरनैल, अनु, सरबजीत, निर्मल, रानी, सतगुर, राज, वरिंदर, हरजीत, करनजीत, राहुल, जसकरन, रोमन, और हर्मन को धन्यवाद देना चाहता हूं कि उन्होंने मेरी भलाई के लिये चिंता की। मैं उन का भी ऋणी हूं। अग्नि मंदिर की साइट पर जाने के लिये वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद को धन्यवाद देना चाहता हूं। सबसे ऊपर, मैं नेहा, आशर, निधि, केन, सरबजीत, कनिष्क, मानिक, पूनम, कनिका, और जतिन की मेरे शोध में निरंतर रुचि के लिये आभारी हूं। मैं अमाया, डारियुश, रिया, मिशका, रोमन, मिराया, और मायरा का उनकी साहसी आत्माओं के लिये भी आभारी हूं। और अंत में, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण, मैं मेरी मेरी पत्नी सुनीता का धन्यवाद करना चाहता हूं जिस ने हमारे रास्ते में आए उतार-चढ़ाव में अलौकिक अच्छे स्वभाव का प्रदर्शन दिया।

१५ जून २०२१ कर्म तेज सिंह सराओ

विषयवस्तु

प्रस्तावना

उत्तरी इराक में किरकुक के पास स्थित बाबा गुड़गुड़[1] के पवित्र स्थल की तरह, बाकू का मंदिर, जिसे स्थानीय रूप से आतशगाह के नाम से जाना जाता है, भारतीय अग्नि-उपासकों का एक प्राचीन स्थल है। सुरखानी में बाकू के बाहरी इलाके में स्थित वर्तमान संरचना सत्रहवीं शताब्दी के अंत में बनाई गई थी। इसके पूर्व में एक प्रवेश द्वार और केंद्र में एक गर्भगृह के साथ एक पंचकोणीय दीवार से घिरा २५ कोठरियों का एक बाड़ा है। यह इमारत अखंड-अग्नि की हिंदू देवी ज्वाला जी को समर्पित है। ज्वालामुखी (कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश) में स्थित प्रसिद्ध (छोटे) ज्वाला जी और बाकू के मंदिर के बीच अंतर करने के उद्देश्य से, भक्तों के बीच बाकू वाला मंदिर महा ज्वाला जी के नाम से जाना जाता है।[2] पाठ्य स्रोत सामग्री में कई भारतीय और अन्य खोजकर्ताओं एवं तीर्थयात्रियों द्वारा पवित्र मंदिर के दौरे के बारे में दी गई कई प्रकार की जानकारी मिलती है। मैंने जनवरी २०१७ में पहली बार विधिवशात् मंदिर का दौरा किया था, जब मैं बाकू शहर की यात्रा पर था, जिसकी अग्निशिखा के आकार की गगनचुंबी इमारतें मीलों से दिखाई देती हैं। इसके बाद, मार्च २०१७ और मार्च २०१९ में दो बार मंदिर संबंधित अनुसंधान सामग्री एकत्र करने के विशिष्ट लक्ष्य से यहां का दौरा किया गया। शिलालेखों की अधिकांश तस्वीरें दूसरी और तीसरी यात्राओं के दौरान ली गई थीं। अपनी दूसरी यात्रा के दौरान, मैंने सुरखानी ज्वाला जी मंदिर से लगभग पाँच किलोमीटर की दूरी पर ज्वाला जी मंदिर के गर्भगृह की नवनिर्मित प्रतिकृति की भी 'खोज' की जिसके बारे में स्थानीय या अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं है। यद्यपि इस दूसरे गर्भगृह में एक हिंदू शैली का हवन कुण्ड और साथ ही इसके शीर्ष पर एक त्रिशूल है, इसे एक छोटे से कृत्रिम रूप से निर्मित पहाड़ी पर बनाया गया है ताकि यह एक पारसी आतशगाह की तरह दिखाई पड़े। कुल मिलाकर इस मंदिर में विभिन्न स्थानों पर कम से कम तेईस शिलालेख स्थापित थे जिन में से दो शिलालेख (संख्या १२ और २३) अब गायब हैं। मौजूदा शिलालेखों में से एक गर्भगृह के पूर्वी मेहराब के ऊपर स्थित है (शिलालेख संख्या १), एक प्रवेश द्वार पर (शिलालेख संख्या २), एक बालखाने की बाहरी दीवार

---

[1]बाबा गुड़गुड़. शाब्दिक रूप से "गड़गड़ाहट वाले बाबा"। प्लूटार्क (Plutarch) के अनुसार, सिकंदर ने चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में इस गड़गड़ाहट वाली शाश्वत अग्नि को देखा, जो पानी के झरने की तरह एक सतत धारा में पृथ्वी से निकल रही थी (Plutarch, *Plutarch's Lives,* ed. with notes and preface by A.H. Clough, Volume II. New York: The Modern Library, 2001: 168)। स्थानीय इराकी महिलाएं इस गरजने वाली अग्नि के पवित्र स्थल पर एक पुरुष बच्चे के आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करती हैं।

[2]जब जमशेदजी मोदी वर्ष १९०० में ज्वालामुखी (कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश) शहर में ज्वाला जी मंदिर गए थे, तो उन्हें वहां के भक्तों ने बताया कि "वे इसे छोटी ज्वालाजी कहते हैं और कहा कि उनका बड़ा ज्वालामुखी बाकू, आज़रबैजान में है" (J. Jamshedji Modi, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, 1926; trans. by Soli Dasturji, 2004. (http://www.avesta.org/modi/baku.htm)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।). दूसरा छोटा ज्वालादेवी मंदिर उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले के शक्तिनगर में स्थित है जहां मंदिर का पुराना हिस्सा एक हजार साल से अधिक पुराना है।

पर (शिलालेख संख्या ३), और अठारह कक्षों के प्रवेश द्वारों के ऊपर (जिनकी क्रम संख्या मंदिर के प्रवेश द्वार से कोठरियों के घड़ी-विरोधी क्रम में की गई है)। इन शिलालेखों में से अठारह देवनागरी लिपि में हैं (संख्या १३ सहित जो अब गायब है), दो गुरुमुखी लिपि में (संख्या १० और ११), दो लांडा लिपि में (संख्या १२ और १६; संख्या १२ अब गायब है), और एक फ़ारसी में (नंबर १८) है। इसके अलावा, फर्डिनेंड कर्स्टन (Ferdinand Kirsten) (Ferdinand Kirsten, "Indische Inschriften," in Bernhardt Dorn, *Atlas zu Bemerkungen auf Anlass einer wissenschaftlichen Reise in den Kaukasus und den südlichen Küstenländern des Kaspischen Meeres in den Jahren 1860-1861*, Dritte Abtheilung, Taf. I-VII, 1895) व अन्य विद्वानों की प्रतिलिपियां, ग्रंथ सूची में सूचीबद्ध संबंधित स्त्रोतों के अनुसार शामिल की गई हैं।

अध्याय १
परिचय

भारतीय, जो कम से कम पांचवीं सहस्राब्दी ईसा पूर्व से अग्नि की पूजा कर रहे हैं, माना जाता है कि वे दुनिया में सबसे पहले अग्नि-उपासक थे। अग्नि देव, जो इस दुनिया और परे की दुनिया के बीच की कड़ी के रूप में कार्य करते हैं, प्राचीन भारतीय लोगों के सबसे महत्वपूर्ण देवताओं में से एक थे। वे अग्नि को प्रकृति की सभी सक्रिय शक्तियों का सार मानते थे और इस कारण से वे अपने पूजा स्थलों के अंतरतम स्थानों में चिरस्थायी आग जला कर रखते थे। सिंधु-सरस्वती सभ्यता के कई स्थलों जैसे कालीबंगां, लोथल, बनवाली, भगवानपुरा, नवदतोली, रंगपुर, और आमरी में अद्वितीय अग्नि-वेदियों और हवनकुण्डों के रूप में अग्नि के विचलन के पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं। ऋग्वेद, जिसे आर्यों की अग्नि उपासना की पुस्तक कहा जा सकता है, में कम से कम २०० सूक्त ऐसे हैं, जिनमें अग्नि को एक ऐसे आदि देवता के रूप में दर्शाया गया है, जो उपभोग, रूपांतरण, शुद्धीकरण, और संप्रेषितता की मौलिक शक्तियों का स्रोत है। वास्तव में, वैदिक साहित्य का संपूर्ण सरगम अग्नि के तीन स्तरों (*त्रिविध*) पर अस्तित्व में होने की कल्पना करता है, अर्थात पृथ्वी पर अग्नि के रूप में, वायुमंडल में बिजली के रूप में, और आकाश में सूर्य के रूप में और इसलिये इस तीन गुना उपस्थिति के माध्यम से देवताओं और मनुष्यों के बीच दूत के रूप में कार्य करता है। वास्तव में, अग्नि पूजा का अनुष्ठान वैदिक भारतीय लोगों की सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक प्रथा थी क्योंकि उनका मानना था कि मृत्यु के बाद शरीर अग्नि में दाह संस्कार के माध्यम से दूसरी दुनिया में जाता है, जिससे मृतक दूसरी दुनिया में एक नया शरीर प्राप्त करने के बाद पूर्वजों (*पितृ*) में शामिल हो जाता है। इसके अलावा, अग्नि को यज्ञ के लिये केंद्रीय तत्व माना जाता है क्योंकि भेंट का सेवन करके, अग्नि उन्हें शुद्ध बनाता है और उसके बाद ही उन्हें देवताओं तक पहुंचाता है।

जब कुछ आर्य जनजातियों का सप्त-सिंधु (ईरानी विकासज– *हप्त हेंदु*) से, जो उनकी मातृभूमि थी, विशाल ईरान (*ईरानज़मीं, ईरान-ए-बोज़ोर्ग*) में प्रवासगमन हुया, तब अग्नि-पूजा की प्रथा उनके साथ वहां पहुंच गई। इसका उल्लेख ऋग्वेद के आरम्भिक भागों में मिलता है, जहां सप्त-सिंधु के पश्चिमी भाग (पश्चिमी पंजाब के द्रुह्यु) और पूर्वी भाग (हरियाणा में पौरव और कश्मीर में आनव) की विभिन्न अग्नि-पूजक आर्य जनजातियों के बीच हुए एक क्षेत्रीय युद्ध का संदर्भ मिलता है। इस युद्ध के परिणामस्वरूप द्रुह्यु-क्षेत्र पर आनवों द्वारा कब्जा कर लिया गया था और अधिकांश द्रुह्यु का पश्चिम में अफगानिस्तान और ईरान की ओर निष्कासन हुआ। इससे हुई कटुता के परिणामस्वरूप, ये दो युद्धरत समूह एक दूसरे को *अनार्य* मानने लगे। प्रतीत होता है कि कुछ और आर्य जनजातियों का सप्त-सिंधु से पश्चिम की ओर अगला पलायन, विशेषकर आनवों का, दस राजाओं के युद्ध (*दाशराज्ञ युद्ध*) के बाद हुआ। इस युद्ध में, वैदिक

राजा सुदास् विभिन्न विरोधी आर्य जनजातियों, जिन्हें *अनिंद्र* (इंद्र-विहीन) का नाम दिया गया, के खिलाफ विजयी हुए, इन *अनिंद्रों* का मुख्य क्षेत्र अफगानिस्तान और पश्चिम में उससे आगे का क्षेत्र बन गया। जिन आर्य जनजातियों पर इंद्र ने जीत की कृपादृष्टि नहीं डाली थी, उन्होंने उन्हें अंगरा मैन्यु (क्रोधित आत्मा) में बदल दिया। वास्तव में, दस राजाओं के युद्ध के बाद, के परिणामस्वरूप विभिन्न आर्य जनजातियों ने दो अलग-अलग रास्ते अपना लिये और प्रत्येक मुख्य देवता को इन दो समूहों में उसकी कृपादृष्टि, या फिर उसकी कमी, के अनुसार अपना लिया गया। इसके अलावा, दस राजाओं के युद्ध के कुछ सदियों बाद, जरथुस्त्र अग्नि-पूजा करने वाले आर्यों की कुछ अपदस्थ जनजातियों के एक प्रसिद्ध प्रवक्ता बन गए, जिसके परिणामस्वरूप, अपने भजनों के माध्यम से, उन्होंने इन जनजातियों के बीच विकसित हुए जीवनदर्शन (weltanschauung) को *अवेस्ता* के धर्म में संगठित कर दिया, जिसके अनाहिता, मिथ्र, तिश्त्र्य, वाइयु, अंग्र मैन्यु, और आपस् जैसे देवी-देवता स्पष्ट रूप से ऋग्वेदिक हैं। कुछ आर्य समुदाय जो अवेस्ता की छत्रछाया में नहीं आए थे, उन्होंने अग्नि की पूजा को दस राजाओं के युद्ध से पहले की तरह ऋग्वैदिक शैली में जारी रखा, बाकू के आतशगाह और किरकुक के बाबा गुड़गुड़ जिसके दो उदाहरण हैं।

यह ध्यान देने योग्य है कि ऋग्वेद के आरम्भिक हिस्सों में, असुर और देव शब्द अक्सर एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किये जाते हैं। उदाहरण के लिये, इंद्र को नौ बार असुर कहा गया है जहां इस शब्द का प्रयोग शक्तिशाली या सक्षम के अर्थ में किया गया है। इसी तरह, अग्नि (बारह बार), वरुण (दस बार), मित्र (आठ बार), रुद्र (छह बार), और सवितृ (एक बार) को भी ऋग्वेद में असुर कहा गया है। दस राजाओं के युद्ध के बाद रास्ते अलग होने के कारण, ऋग्वेदिक असुर धीरे-धीरे अहुर बन गया। ऐसे ही वरुण और देव, जो पूर्व-पारसी धर्म में वोउरुन और दैव में रूपांतरित हो गए थे, अंत में पूरी तरह से विपरीत भूमिका निभाने लगे। ये विपरीत भूमिकाएँ, जैसा कि ऊपर बताया गया है, उस कटुता के परिणामस्वरूप हुई, जिसकी उत्पत्ति दो समूहों के बीच क्षेत्रीय विवादों में हुई, जिससे उनके ब्रह्मांड विज्ञान में अंतर प्रतिबिंबित हुआ। परिणामस्वरूप, अग्नि-पूजा करने वाले आर्यों के दो समूहों के बीच धार्मिक विभाजन की वजह से भारतीय आर्य देवों की पूजा और बोजोर्ग ईरानी आर्य असुरों की पूजा करने लगे। इसका नतीजा यह हुआ कि लगभग १००० ईसा पूर्व, जोरास्टर के नेतृत्व में कुछ वैदिक भाषी लोगों ने अहुर को अपना सर्वोच्च देवता घोषित किया। इसके अलावा, गाथाओं में जोरास्टर ने देवों को "झूठे देवता" के रूप में घोषित किया और उन्हें अस्वीकार कर दिया क्योंकि वे न केवल उचित दैवीय समझ में असमर्थ थे बल्कि उन्होंने दुनिया के आदेश, मानव स्वास्थ्य, और धार्मिक जीवन की नियमितता को भी विक्षुब्ध किया था। हालाँकि, कुछ देवता जैसे कि वाइयु (वायु) और मित्र (मिथ्र) अपने "न्याय और सद्भाव के देवता" के रूप में अपनी वैदिक भूमिकाओं को निभाते रहे। इसके अलावा, *होतृ* या *ज़ाओतर्* द्वारा यज्ञ का प्रदर्शन और *आहुति* या *आज़ुइति* की भेंट *वेद* और *अवेस्ता* के धर्म में अग्नि की पवित्रता के विशिष्ट सामान्य उदाहरण बने रहे।

दिलचस्प बात यह है कि *अवेस्ता* में अग्नि मंदिरों का उल्लेख नहीं है। वास्तव में, अग्नि मंदिर उपासना पद्धति केवल एकेमेनियन (Achaemenian) काल के उत्तरार्ध में अर्थात चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास ही उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। पारसी धर्म में पवित्र अग्नि के मंदिर पहाड़ियों या ऊंचे स्थानों पर स्थापित किये जाते थे। यह उल्लेखनीय है, जैसा कि उनके आध्यात्मिक नेता ने आदेश दिया था, पारसी लोग खुद को अग्नि उपासक नहीं मानते हैं। वे बस अग्नि को पवित्रता का एक उपकरण और सत्य और धार्मिकता का प्रतीक मानते हैं जो उन्हें अपने विचारों को उनके सर्वोच्च भगवान अहुर पर केंद्रित करने में मदद करती है। शायद यही कारण था कि पारसी धर्म में दाह संस्कार को अस्वीकार कर दिया गया जबकि हिंदू धर्म में यह एक सार्वभौमिक तथ्य बन गई।

अनुष्ठान, जैसा कि ऋग्वेदिक भारतीयों द्वारा कल्पना की गई है, में अग्नि पुजारियों की सहायता से देवताओं को दी जाने वाली खाद्य, पीने योग्य या भौतिक रूप से मूल्यवान किसी चीज की बलि (बलिदान और साथ ही परिवाद) शामिल हैं। यज्ञ-वेदी या होम/हवन कुण्ड) हमेशा चौकोर आकार की होती है और आमतौर पर या तो ईंट या पत्थर से बनी होती है या तांबे का बर्तन होती है। स्तोत्रों के पाठ के दौरान, अक्सर स्वाहा के स्वर के साथ, यज्ञकर्ता अग्नि में भेंट डालता है। वेदी और उसमें किया जाने वाला अनुष्ठान देवताओं की दुनिया और जीवित प्राणियों की दुनिया के बीच हिंदू ब्रह्माण्डीय संपर्क का एक प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व है।

ऋग्वेद के अनुसार, अग्नि अंधकार, शोक, बुरी आत्माओं, और शत्रुतापूर्ण जादू को दूर करती है। कोई भी अग्नि से न केवल पाप से शुद्धि और अपने विरोधियों से सुरक्षा के लिये प्रार्थना कर सकता है बल्कि धन, अनुकूल आवासीय भवन, मवेशी, महिमा, और खुशी प्राप्त करने के लिये भी प्रार्थना कर सकता है। अग्नि जो मनुष्यों के नेता (*विश्पति*) हैं और प्रत्येक मानव निवास में अतिथि के साथ-साथ उसके स्वामी (*गृहपति*) के रूप में रहते हैं, और जो लोग उनकी पूजा करते हैं वे उनके लिये एक सुरक्षात्मक पिता, देखभाल करने वाले भाई, भरोसेमंद सहयोगी और एक सदाबहार मित्र हैं। वह न केवल एक दूत होने के साथ-साथ देवताओं और पुरुषों के बीच मध्यस्थ हैं, बल्कि अपनी खुली लाख आँखों के माध्यम से मनुष्यों के कर्मों, जिसमें उनके विवाह समारोह भी शामिल हैं, के साक्षी भी हैं। वेदों के ब्राह्मण भाग में, अग्नि न केवल ईश्वरत्व और देवत्व की संपूर्णता का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि आध्यात्मिक ऊर्जा की उन सभी अवधारणाओं का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जो ब्रह्मांड में प्रत्येक और हर चीज में व्याप्त हैं। वास्तव में, अग्नि इस हद तक महत्वपूर्ण हैं कि अन्य देवों की पूजा ज्यादातर अग्नि अनुष्ठानों के माध्यम से होती है और इसलिये देवताओं को दिया जाने वाला कोई भी चढ़ावा हमेशा अग्नि को ही देना होता है। इसके अलावा, उपनिषदों और उत्तर-वैदिक साहित्य में, अग्नि न केवल मनुष्य में अमर सिद्धांत के लिये एक अन्योक्ति बल्कि एक ऊर्जा या ज्ञान के रूप में भी विकसित हुए, जो अंधेरे की स्थिति का क्षय करके अस्तित्व की एक प्रबुद्ध स्थिति पैदा करते हैं। दूसरे शब्दों में, अग्नि अंततः न केवल पुरुषों के कार्यों के साक्षी और उनकी सत्यता के एक परीक्षक बन गए, बल्कि एक देवता भी बन गए, जिनके बिना कोई भी बलिदान अर्पित नहीं किया जा सकता था।

अग्नियुक्त जिह्वा, देवी ज्वाला, की उपासना पद्धति की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि असुरों व शक्तिशाली बुरे अर्ध-देवताओं तथा देवों व परोपकारी देवताओं के बीच संघर्ष में निहित है। किंवदंती के अनुसार, भगवान विष्णु के नेतृत्व में देवताओं ने असुरों के उपद्रवी व्यवहार को समाप्त करने का फैसला किया। इस उद्देश्य के लिये, देवताओं ने ध्यान केंद्रित किया और अपनी शक्तियों को एक साथ मिला दिया, जिससे जमीन से बड़ी लपटें उठीं। इन ज्वालाओं में से आदि-पराशक्ति निकलीं और राजा दक्ष की बेटी के रूप में जन्म लिया, और शक्ति, वैवाहिक सुख और दीर्घायु की देवी सती के रूप में जानी गईं। इसके अलावा, आदि-पराशक्ति के प्रत्यक्ष वंशज होने के नाते, सती को शिव की पत्नी के रूप में लाया गया था ताकि उन्हें तपस्वी अलगाव से दुनिया के साथ रचनात्मक भागीदारी में लाया जा सके। समय के साथ, उन्होंने एक स्वयंवर में शिव से विवाह किया। हालाँकि, किंवदंती के अनुसार, सती ने अपने पिता द्वारा आयोजित एक यज्ञ में भाग लिया, जहाँ उन्हें आमंत्रित नहीं किया गया था और अपने पिता द्वारा अपमानित महसूस करने पर खुद को आत्मसात कर लिया था। दर्शकों ने उन्हें बचाने की कोशिश की, लेकिन उनके आधे जले हुए शरीर को ही निकाल पाए। जब शिव ने अपनी पत्नी की असामयिक और हिंसक मृत्यु के बारे में सुना, तो उनके दुःख और क्रोध की कोई सीमा नहीं रही। दक्ष को उसकी धृष्टता के लिये दंडित करने के बाद, लेकिन फिर भी गहरे दुःख में डूबे हुए, शिव ने सती की लाश को ले लिया, तीनों लोकों के विनाश के लिये ब्रह्मांडीय नृत्य तांडव आरम्भ किया। शिव के क्रोध से भयभीत अन्य देवताओं ने भगवान विष्णु से शिव को शांत करने की अपील की। ऐसा करने के लिये, विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र का उपयोग करके सती के शरीर को ५१ (या कुछ अन्य परंपराओं के अनुसार १०८) टुकड़ों में विभाजित कर दिया। उन सभी स्थानों पर जहां सती के शरीर के अंग गिरे थे, शक्तिपीठों के पवित्र स्थान अस्तित्व में आए। ज्वालामुखी शहर (कांगड़ा, हिमाचल), शक्तिनगर (सोनभद्र, उत्तर प्रदेश), सुरखानी (बाकू, अजरबैजान), और मुक्तिनाथ (मुस्ताङ, नेपाल) जैसे वे स्थान, जहां सती की प्रज्वलित जिह्वा के टुकड़े गिरे थे, वे स्थल ज्वाला जी (या ज्वालामुखी) के विशिष्ट दुर्लभ स्थान बन गए जिनके माध्यम से उन्होंने खुद को प्रकट किया। किंवदंती कहती है कि देवी ने सात दिव्य बहनों के लिये सात ज्वालाओं के रूप में या नौ दुर्गाओं (महाकाली, अन्नपूर्णा, चण्डी, हिंगलाज, विंध्यवासिनी, महालक्ष्मी, सरस्वती, अंबिका और अंजना देवी) के लिये नौ ज्वालाओं के रूप में खुद को प्रकट किया। ऐसा प्रतीत होता है कि दस राजाओं के युद्ध के बाद कुछ आप्रवासी अग्नि-पूजक आर्यों ने बाकू क्षेत्र में सात ज्वालाओं की पूजा शुरू कर दी, और बाद में यहां एक मंदिर बनाया। ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि पूजा करने वाले पारसियों ने, जिनके अग्नि मंदिर हमेशा पहाड़ियों पर स्थित थे, इस स्थान को बाधारहित छोड़ दिया क्योंकि इसकी पवित्र अग्नि समतल मैदानों में स्थित थी।

जब अरबों ने कैस्पियन सागर के आसपास के क्षेत्र पर आक्रमण किया, तो उन्होंने या तो अधिकांश गैर-मुस्लिम पूजा स्थलों को नष्ट कर दिया या उन्हें परित्यक्त होने दिया। सुरखानी के महाज्वाला जी मंदिर का भी यही हश्र हुआ प्रतीत होता है। हालांकि, बाद के मध्ययुगीन काल के दौरान स्थानीय राजनीतिक प्राधिकरण की राजनीतिक समीचीनता और आर्थिक मजबूरियों

ने शांत चित हिंदुओं के लिये अपने कुछ पवित्र स्थानों को पुनः प्राप्त करना संभव बना दिया। परिणामस्वरूप, महाज्वाला जी मंदिर को सत्रहवीं शताब्दी के अंत में एक पुराने मंदिर के खंडहरों पर फिर से बनाया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मंदिर को बनाए रखने की जिम्मेदारी उन उदासियों पर आ गई, जो अग्नि का सम्मान करने के अलावा, त्रिशक्ति (त्रिशूल, ॐ, और स्वस्तिक) और पंचायतन (शिव, विष्णु, सूर्य, दुर्गा, और गणेश) की पूजा भी करते थे।

ऐतिहासिक साक्ष्य इंगित करते हैं कि बाकू को इसका नाम वैदिक लोगों से मिला, जिन्होंने इस स्थान को बगवान/बगुआन/भगवान कहा। उदाहरण के लिये, सासैनियन शासन (२२४-६५१ ई) के दौरान इसे बगवान कहा जाता था। परिसर के प्रांगण में निर्मित गर्भगृह में एक विशिष्ट ज्वाला जी शैली की वेदी है और के चारों ओर चौबीस खिड़की रहित कक्ष हैं। मंदिर के प्रवेश कक्ष ऊपर हिंदू और सिख तीर्थयात्रियों के आवास के लिये एक अतिथि कक्ष (*बालखाने*) बनाया गया है। वेदी एक चार-तरफा निर्माण है, जो सभी से तरफ खुली है और इसमें चार आयताकार स्तंभ हैं, जो मेहराबों से जुड़े हुए हैं और ऊपर एक गुंबद है। मूल रूप से यहां तेईस शिलालेख थे लेकिन उनमें से दो अब गायब हैं। वर्तमान अभिलेखों में से अठारह विभिन्न कक्षों के प्रवेश द्वारों के ऊपर स्थापित किये गए हैं। अन्य तीन में से एक-एक को गर्भगृह, मंदिर के प्रवेश द्वार और अतिथि कक्ष की बीच वाली खिड़की के ऊपर स्थापित किया गया है। इनमें से अठारह शिलालेख देवनागरी लिपि में, दो गुरुमुखी में, दो लांण्डा लिपि में और एक फारसी लिपि में लिखे गए हैं। शिलालेखों में वर्णित अंक, विशेष रूप से तिथियां, लगभग सभी गुरुमुखी लिपि में हैं।

भक्तिपरक हिंदू स्वस्तिक (卐) छह शिलालेखों में से सात बार बनाया गया है और अधिकांश शिलालेख *ॐ* और *श्री गणेशाय नमः* से शुरु होते हैं। इसी तरह, इनमें से एक दर्जन से अधिक शिलालेखों में देवी ज्वाला जी के नाम का उल्लेख किया गया है। अधिकांश शिलालेखों में तारीखों का उल्लेख है जो संवत् १७०५ से संवत् १८७३ तक तक की अवधि के अनुरूप १७६२ ईस्वी से १८१६ ईस्वी की हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मौजूदा परिसर का निर्माण पंजाब के मुल्तानवासी बाकू स्थित हिंदू खत्री व्यापारियों द्वारा पहले के ढांचे पर किया गया था। यह मंदिर १८८३ के बाद परित्यक्त हो गया जब स्थानीय ठगों द्वारा अंतिम भारतीय साधु की हत्या कर दी गई। तेईस शिलालेखों के अलावा, यात्रियों द्वारा छोड़े गए रेकार्डों के साथ-साथ भौतिक अवशेषों से संकेत मिलता है कि ये व्यापारी बाबा नानक और उनके बड़े बेटे बाबा श्रीचंद के अनुयायी थे, जो उदासी संप्रदाय के संस्थापक थे। ऐसा प्रतीत होता है कि दो गुरुमुखी की शिलापट्टियां और एक अन्य शिलापट्टी जे देवनागरी में है, जिसमें से बाबा नानक के नाम उल्लेख है, यहां पर बाबा नानक की बाकू यात्रा की स्मृति में स्थापित की गईं थीं, जब बाबा जी अपनी चौथी उदासी (आध्यात्मिक यात्रा) (लगभग १५११-१५२१ ई) के दौरान मध्य पूर्व, फारस और मध्य एशिया से होते हुए लौट रहे थे।

मंदिर की इमारत क्षेत्र के एक नियमित शहरीय कारवांसराय (यात्रियों की सराय) और भक्ति और परोपकार के कार्य के लिये स्थापित एक विशिष्ट उदासी अखाड़े का एक संयोजन

है। इस अखाड़े का एक हिस्सा यात्रा करने वाले व्यापारियों द्वारा अपने माल-जानवरों के साथ-साथ अन्य/स्थानीय व्यापारियों के साथ लेनदेन के लिये उपयोग किया जाता था। अधिकांश कक्षों में जहां अग्नि-पूजा करने वाले उदासी साधु ध्यान करते और सोते थे, वहां बगल की दीवारों पर छोटे-छोटे सोने के लिये शिरानिक्षेप चबूतरे बने हैं। कुछ कोठरियों की दीवारों पर हिंदू देवताओं के चित्रों के निशान दिखाई देते हैं जैसे कि एक बाघ पर खड़ी छह-हाथ वाली दुर्गा। प्रवेश द्वार के ऊपर एक बारह छड़ों वाला धर्मचक्र स्थापित है, जिसके बाईं ओर एक घोड़ा और दाईं ओर एक सिंह है। वेदी के पास, उत्तर-पूर्व में, एक चौतरफा गड्ढा है जहाँ पवित्र अग्नि पर शवों का अंतिम संस्कार किया जाता था। वेदी मूल रूप से परिसर के नीचे स्थित एक भूमिगत प्राकृतिक गैस क्षेत्र से गैस निकास के प्राकृतिक शीर्ष पर स्थित थी, जो सात पवित्र लपटों, मंडप के बीच में एक बड़ी वेदी-लौ, छत के कोनों पर चार छोटी लपटों, और आंगन में दो लपटों, को प्रज्वलित करती थी। हालाँकि, १९६९ में रूसियों द्वारा प्राकृतिक आग को उस समय बाधित कर दिया गया था जब उन्होंने गैस और पेट्रोलियम के लिये इस क्षेत्र का दोहन करना शुरू किया था। आज दिखाई देने वाली लपटों को बाकू से पाइप द्वारा भेजी गई गैस द्वारा जलाया जाता है, और केवल आगंतुकों के लाभ के लिये चालू किया जाता है।

अज़रबैजान में एक मजबूत अंतर्धारा है जो मानती है कि मंदिर हिंदू के बजाय पारसी है। परिणामस्वरूप, यूनेस्को विरासत की स्थिति (UNESCO Heritage Status) के लिये आवेदन जमा करने से कुछ समय पहले, वेदी के विशिष्ट हिंदू रूप को पारसी शैली के अग्नि-मंच में बदल दिया गया था और छत के ऊपर से नीचे गिरे हुए त्रिशूल को फिर से स्थापित नहीं किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि कुछ किलोमीटर दूर बनी वेदी की प्रतिकृति हिंदू वेदी के साथ-साथ त्रिशूल को भी बरकरार रखती है, लेकिन इसे गलती से एक छोटी पहाड़ी पर एक विशिष्ट पारसी शैली में बनाया गया है। जब भी कोई मरम्मत कार्य किया जाता था, तो वह गैर-पेशेवर और आकस्मिक तरीके से किया जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश शिलालेख सफेदी की कई परतों के माध्यम से क्षतिग्रस्त हो गए हैं। १९५० में एक आगंतुक ने देखा कि एक शिलालेख (नंबर ३) उल्टा लगा हुआ है। गुरुमुखी शिलालेख (संख्या ११) पर किया गया मरम्मत कार्य, जो कोठरी नं १० के द्वार के ऊपर मौजूद है घटिया काम का एक और उदाहरण है। कुछ नुकसान होने के बाद (संभवत: बर्बरों के हाथों), क्षतिग्रस्त हिस्से को इतनी लापरवाही से सीमेंट से भरा गया था कि शिलालेख के अक्षर और भी क्षतिग्रस्त हो गए हैं।

अध्याय २
भारतीय परंपरा में अग्नि पूजा

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक, मानव जीवन के हर क्षेत्र में आग की उपस्थिति महसूस की जा सकती थी। यह मनुष्यों के लिये भोजन पकाती थी, उन्हें गर्म रखती थी, प्रकाशित करती थी, उनका मनोरंजन करती थी, और सबसे बढ़कर, कचरे को न केवल उपयोगी वस्तुओं में बदल देती थी, बल्कि भूदृश्य को आवासों में भी बदल देती थी। दिन का आरम्भ आग के जलने से होता था और अंगारों के ढेर के साथ समाप्त होता था; और अंतरकाल में आग एक अनवरत साथी का कार्य करती थी। मानवता ने अंततः अपनी शक्ति आग से ली। जिस वस्तु ने लोगों की सामान्य दुनिया को इतना गढ़ा हो, स्वाभाविक है कि वह निश्चित रूप से उस दुनिया की उनकी समझ में प्रवेश करेगी और उनकी आगे की दुनिया में बौद्धिक रूप से विकसित होगी। परिणामस्वरूप, आग की बुराई को नष्ट करने और अच्छाई को प्रेरित करने की शक्ति ने विभिन्न देवता-केंद्रित अन्योक्तियों, मिथकों, और सृजन कथाओं को उत्प्रेरित किया।

आग की पूजा, जो मानव-रक्त की तरह लाल है और मानव शरीर की तरह गर्म है, भारतीय उपमहाद्वीप के साथ-साथ भारत से प्रभावित संस्कृतियों में व्यापक है जहां सांसारिक अग्नि को स्वर्गीय अग्नि की छवि माना जाता है। अग्नि को प्रकृति की सभी सक्रिय शक्तियों का मूलतत्व मानने वाले भारतीय अपने पूजा स्थलों के अंतरतम स्थानों में प्रज्ज्वलित चिरस्थायी आग रखते हैं। अग्नि देवता, जो इस दुनिया और परे की दुनिया के बीच की कड़ी के रूप में कार्य करते हैं, प्राचीन भारतीय लोगों के एक महत्वपूर्ण देवता थे। पुरातत्व के साथ-साथ साहित्यिक साक्ष्य इंगित करते हैं कि भारतीय, जो दुनिया में सबसे पहले अग्नि उपासक थे, कम से कम पांचवीं सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व से अग्नि की पूजा कर रहे हैं। सिंधु-सरस्वती सभ्यता के कई स्थलों से अग्नि के देवत्वारोपण के पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। उदाहरण के लिये, कालीबंगां[3] में

---

[3]कालीबंगां [काली चूड़ियाँ] नगर राजस्थान के हनुमानगढ़ जिले में ऋग्वेद की पवित्र सरस्वती, जो वर्तमान में घग्गर-हकड़ा नदी है, के बाएँ तट पर स्थित था। डी.के. चक्रबर्ती के अनुसार, यहां पर मिली सामग्री अवशेष में "फर्श में धँसी हुई, प्लस्टर युक्त मिट्टी के बेलनाकार और पहलूदार ठूंठ तथा राख और कोयले से संलिप्त टेराकोटा में 'पिंड' सहित आयताकार वेदियां" शामिल थे (Dilip K. Chakrabarti, *India: An Archaeological History: Palaeolithic Beginnings to Early Historic Foundations*. New Delhi: Oxford University Press, 2009: 169)।

अद्वितीय अग्नि-वेदियां[4] और हवन कुण्ड[5] पाए गए हैं, जिनका उद्देश्य केवल कर्मकांड था। ये अग्नि वेदियां नगर के तीन अलग-अलग हिस्सों में पाई गई हैं– नगर-दुर्ग, नगर के बाहरी हिस्से की सार्वजनिक अग्नि-वेदियां, और निचले नगर की घरेलू वेदियां। अग्नि-वेदियों से थोड़ी दूर और एक कुएं के पास, एक स्नान-स्थल के अवशेष मिले हैं, जो दर्शाता है कि औपचारिक स्नान अनुष्ठान का हिस्सा था। कालीबंगां के नगर-दुर्ग परिसर के भीतर, दक्षिणी आधे हिस्से में कम से कम पांच ऊंचे चबूतरे (सीढ़ियों के साथ) मिले हैं, जो मिट्टी की ईंटों से बने हुए हैं और जो गलियारों से एक दूसरे से अलग होते हैं। अग्निवेदियों में जले हुए कोयले के पाए जाने के साक्ष्यों के आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि इन अग्नि-वेदियों की संरचना उन वैदिक अग्नि-वेदियों की याद दिलाती है, जिन्हें समग्र रूप से समुदाय किसी विशिष्ट धार्मिक उद्देश्य के लिये बनाता था। इसके अलावा, कुछ अग्निवेदियों में जानवरों के अवशेष पशु-बलि की संभावना का संकेत देते हैं। दुर्भाग्य से, ईंट लुटेरों द्वारा प्लेटफार्मों की बर्बादी के कारण उनके ऊपर की संरचनाओं के मूल आकार का अनुमान लगाना संभव नहीं है, लेकिन वेदियों के लिये पकी हुई ईंटों के अंडाकार व आयताकार अग्नि-कुण्डों के असंदिग्ध अवशेष मिले हैं और इन अग्नि-कुण्डों में से प्रत्येक के केंद्र में बलि-यूप और सभी में बलि के लिये बनाए गए टेराकोटा के पिष्ड मिले हैं। लोथल[6] के लोग एक अग्नि देवता की पूजा करते थे, जिसके बारे में अनुमान लगाया गया है कि यहां पाई गईं मुहरों पर चित्रित सींग वाला देवता यही था। लोथल में अग्नि पूजा की निजी और सार्वजनिक अग्नि-वेदियों की उपस्थिति जिनमें सोने के कर्णफूल, टेराकोटा की पिंडिकाएं, मोती, मिट्टी के बर्तन, और गोजातीय जानवरों के जले हुए अवशेष पाए गए हैं से वैदिक काल में प्रचलित गवामयन यज्ञ, एक विशिष्ट सत्त्रयाग, जैसी उस प्रथा का संकेत मिलता है जिसे संतान,

---

[4] *ऋग्वेद* में वर्णित *वेदी* शब्द का प्रयोग वैदिक धर्म में एक विशेष प्रकार के बलि-स्थल के लिये किया जाता था जो आमतौर पर यज्ञशाला में स्थित होती थी और जिसमें यज्ञ के लिये एक पात्र होता था। यह *श्रौत सूत्रों* में निर्धारित विभिन्न आकृतियों और आयामों की होती थी, लेकिन आमतौर पर बीच में संकरी होती थी। *तैत्तिरीय संहिता* (५.२.३) के अनुसार, एक विशिष्ट वेदी इक्कीस ईंटों से बनाई जाती है। वर्तमान समय में भी, वेदी अधिकांश हिंदू उत्सवों के साथ-साथ पारगमन होने के संस्कारों से संबंधित अनुष्ठानों, विशेष रूप से सप्तपदी (पवित्र अग्नि के सात फेरे) जो हिंदू शादियों की अनिवार्य प्रथा है, का एक अभिन्न अंग है।

[5] B.B. Lal and S.P. Gupta (ed.) 1984. *Frontiers of the Indus Civilization: Sir Mortimer Wheeler Commemoration Volume*, New Delhi: Books and Books, 1984: 57-68; B.B. Lal, *The Earliest Civilization of South Asia*, New Delhi: Aryan Books International, 1997: 124-125, pl.XXXIIa and XXXIIa-b.

[6] वर्तमान गुजरात के भाल क्षेत्र में स्थित, लोथल [*लोथ* (मृत शरीर) + *थल* (स्थान) = मृतकों का टीला] सिंधु-सरस्वती सभ्यता के सबसे दक्षिणी शहरों में से एक था। लोथल को दुनिया की सबसे पुरानी ज्ञात गोदी और मिस्र, बहरीन, तथा सुमेर जैसे दूर-दराज के स्थानों के साथ वाणिज्यिक संपर्कों के लिये महत्वपूर्ण माना जाता है। (देखें Bridget Allchin and Raymond Allchin. 1982. *The Rise of Civilization in India and Pakistan,* Cambridge: Cambridge University Press,1982: 185; S.R. Rao, *Lothal*, New Delhi: Archaeological Survey of India, 1985: 11-17).

समृद्धि, और महिमा जैसे विभिन्न पुरस्कारों के लिये किया जाता था।[7] भगवानपुरा[8] और नवदातोली[9] में अग्नि-वेदियों के साथ-साथ ईंट-निर्मित बलि वेदियां भी मिली हैं।[10] बनावली[11] में एक अर्धवृत्ताकार अग्नि मंदिर[12] मिला है। रंगपुर[13] और आमरी[14] के स्थलों से भी अग्नि पूजा के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं।[15]

मृतकों की अंत्येष्टि के लिये आग के उपयोग की प्रथा और परे की दुनिया में आग से उनके परिवहन में विश्वास को पुरातात्विक रूप से भारतीय उपमहाद्वीप के पंजाब क्षेत्र में कांस्य युग की कब्रिस्तान-एच-संस्कृति (Cemetery-H Culture, लगभग २००० ईसा पूर्व) द्वारा भी सुझाया गया है।[16] जेम्स टॉड ने एक पौराणिक कथा की ओर इशारा किया है जिसके अनुसार, राजा इक्ष्वाकु[17] के दस पुत्रों में से तीन ने सांसारिक मामलों को त्याग कर संन्यास ले लिया था।

---

[7]देखें S.R. Rao, *Lothal: A Harappan Port Town (1955-62)*, vol. 1, Memoirs of the Archaeological Survey of India No. 78, New Delhi: Archaeological Survey of India, 1979: I, 93, 121, 218; Rao, *पूर्व उद्धृत*,1985: 43-45.

[8]भगवानपुरा/भागपुरा गांव हरियाणा प्रांत में कुरुक्षेत्र के उत्तर-पूर्व की ओर लगभग चौबीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यह सुझाव दिया गया है कि यहां पर उप-अवधि 1B से मिली वर्गाकार, आयताकार, और पच्चड़ आकार की पकी हुई ईंटों का उपयोग वैदिक अग्नि-वेदियों के निर्माण के लिये किया गया था। (देखें J.M. Kenoyer, "Cultures and Societies of the Indus Tradition. In Historical Roots," in R. Thapar (ed.), *The Making of 'the Aryan*', New Delhi: National Book Trust, 2006: 21-49).

[9]मध्य भारतीय प्रांत मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी के तट पर स्थित, नवदातोली में बड़े आयताकार ढांचों का पूजा संबंधित कार्यों के लिये उपयोग किये जाने का सुझाव दिया गया है (P.K. Basant, *The City and the Country in Early India: A Study of Malwa,* Delhi: Primus Books, 2012: 85-91; Upinder Singh, *A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century,* Delhi: Pearson Education India, 2008: 227-229).

[10]J.P. Joshi, *Excavations at Bhagwanpura 1975-76 and Other Explorations and Excavations in Haryana, Jammu and Kashmir and Punjab*, Memoir 89, New Delhi: Archaeological Survey of India, 1993: 41-43 fig.7; M.K. Dhavalikar, "Chalcolithic Cultures: A Socio-Economic Perspective" in K.N. Dixit (ed), *Archaeological Perspective of India Since Independence*, New Delhi: Books and Books, 1985: 77.

[11]हरियाणा प्रांत के फतेहाबाद जिले में स्थित बनावली सूख चुकी सरस्वती नदी के बाएं किनारे पर स्थित था। यहाँ, कई घरों में मेहराबदार संरचनाओं से युक्त अग्नि-वेदियों मिली हैं जिनका उपयोग कर्मकांड के प्रयोजनों के लिये किया जाता था (Upinder Singh, *पूर्व उद्धृत,* 2008: 152–153, 171, 179).

[12]Lal, *पूर्व उद्धृत,* 1997: 127, Pl.XXXVI.

[13]रंगपुर गुजरात प्रांत के सौराष्ट्र प्रायद्वीप में लोथल के उत्तर-पश्चिम में स्थित है।

[14]आमरी का प्राचीन स्थल पाकिस्तान के वर्तमान सिंध प्रांत में मोहनजो-दारो के दक्षिण में स्थित है।

[15]देखें H.D. Sankalia, *Prehistory and Protohistory of India and Pakistan,* Poona: Deccan College ,1974: 350; S.R. Rao, *Dawn and Devolution of the Indus Civilization*, Delhi: Aditya Prakashan, 1991: 47-48.

[16]देखें J.P. Mallory and D.Q. Adams. 1997. *Encyclopedia of Indo-European Culture*, London and Chicago: Fitzroy-Dearborn, 1997: 102; Allchin and Allchin, पूर्व उद्धृत, 1982: 246.

[17]सूर्य के पुत्र मनु के आसन्न पुत्र इक्ष्वाकु, साकेत (अयोध्या) में अपनी राजधानी के साथ इक्ष्वाकु वंश और कोशल साम्राज्य के पहले राजा थे। भगवान राम इक्ष्वाकु वंश के थे (देखें Romila Thapar, *The Past Before Us: Historical Traditions of Early North India*, Harvard: Harvard University Press, 2013: 308-309; Subodh Kapoor, *A Dictionary of Hinduism: Including its Mythology, Religion, History, Literature,*

इनमें से एक, कनिन के बारे में कहा जाता है कि वह पहला व्यक्ति था जिसने अग्निहोत्र बना कर अग्नि की पूजा की।[18] *ऋग्वेद* के अनुसार, प्रथम यज्ञ-अग्नि को मातारिश्वन् द्वारा गुप्त रूप में स्वर्ग से उतारा गया था और भृगु के यज्ञ के रूप में पृथ्वी पर स्थापित किया गया था।[19] इसलिये, वह *द्विजन्मन्* (दो बार जन्मा) है, एक बार स्वर्ग में और फिर पृथ्वी पर।[20] *ऋग्वेद* में आगे बताया गया है कि पहली आग, सुबह दिखाई देने वाली, दिन की पहली रोशनी थी।[21] *ऋग्वेद* में, अग्नि को मुख्य तौर पर एक ऐसे देवता के रूप में दर्शाया गया है, जिसके पास उपभोग करने, शुद्ध करने, बदलने और संप्रेषित करने की मौलिक शक्तियाँ हैं।[22] वैदिक ग्रंथ वास्तव में अग्नि को उस माध्यम के रूप में देखते हैं जो किसी *होम* में देवताओं को तीन स्तरों (*त्रिविध*) पर, पृथ्वी पर अग्नि के रूप में, वायुमंडल में बिजली के रूप में, और आकाश में सूर्य के रूप में, बलि पहुंचाता है। इस त्रिगुणात्मक उपस्थिति के माध्यम से अग्नि देवताओं और मनुष्यों के बीच दूत के रूप में कार्य करता है।[23]

ऋग्वेद में, अग्नि का अपने ज्वलंत बालों और सुनहरे जबड़े के साथ, इंद्र के बाद सबसे महत्वपूर्ण देवता के रूप में उल्लेख किया गया है, जो प्रतीकात्मक रूप से भोजन के लिये अतृप्त भूख का प्रतिनिधित्व करता है। अग्नि को समर्पित पहले सूक्त के अलावा, *ऋग्वेद* के लगभग २०० सूक्तों का सीधा संबंध केवल अग्नि से है। वास्तव में, *ऋग्वेद* को *अग्नि उपासकों का ग्रंथ* कहा जा सकता है और अग्नि पूजा वैदिक भारतीयों की सबसे महत्वपूर्ण धार्मिक प्रथा कही जा सकती है। इस तथ्य से यह भी संकेत मिलता है कि वैदिक काल के दौरान ऋषियों ने बिना किसी नस्लीय भेदभाव के *आर्य* शब्द का प्रयोग केवल उन लोगों के अर्थ में किया है जो अग्नि-

---

and Pantheon, New Delhi: Cosmo Publications, 2004: 171; John Garrett, *A Classical Dictionary of India*, New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors, 1975: 259; Scharf 2014: 559). बौद्ध, जो उन्हें शाक्य और कोलियों का पूर्वज मानते हैं, उन्हें ओक्काक के रूप में जानते हैं क्योंकि जब भी उन्होंने बोलने के लिये अपना मुंह खोला तो उसमें से एक मशाल की तरह प्रकाश निकला। (देखें G.P. Malalasekera, *Dictionary of Pāli Proper Names,* vol. 1, London: John Murray, 1937-38: 461-462).

[18]James Tod, *Annals and Antiquities of Rajasthan, Or the Central and Western Rajput States of India,* ed. with notes by William Crooke, vol. 1, London: Oxford University Press, 1920: 32.

[19]Stephanie W. Jamison and Joel P. Brereton (trans.), *The Ṛigveda: Religious Poetry of India*, vol. 1, Oxford: Oxford University Press, 2014: i.31.3, 128.2; iii.9.5; vi.8.4; x.88.19.

[20]पूर्वोक्त.i.60.1, 149.5.

[21]पूर्वोक्त.i.60.1, 143.4; iii.9.5; vi.8.4.

[22]A.A. Macdonell *Vedic Mythology*, reprint, Delhi: Motilal Banarsidass, 2002 (originally published 1898): 15-16; W. Norman Brown, *India and Indology: Selected Articles*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1978: 59-61.

[23]Jamison and Brereton, *पूर्व उद्धृत*, x.14.13.

उपासना पद्धति का पालन करते थे।[24] ऋग्वेद में दाह-संस्कार की स्थापित प्रथा का एक संदर्भ *अग्निदग्ध* (जिनका दाह संस्कार किया गया) और *अनग्निदग्ध* (जिनका दाह संस्कार नहीं किया गया) पूर्वजों का आह्वान करता है।[25] भारत के ऋग्वैदिक लोगों का यह विश्वास था कि मृत्यु के बाद शरीर अग्नि में दाह संस्कार के माध्यम से दूसरी दुनिया में जाता है, जिससे मृतक दूसरी दुनिया में एक नया शरीर प्राप्त करता है और पूर्वजों (*पितरों*) में शामिल हो जाता है।[26] दूसरी दुनिया में परिवहन की इस प्रक्रिया के दौरान, किसी भी पक्षी या जानवर द्वारा शरीर को पहुंचाई गई क्षति को अग्नि द्वारा पूरी तरह से ठीक कर दिया जाता है।[27] एक दुष्ट व्यक्ति को भी यमलोक में भेजने के लिये उसे अग्नि में जलाना पड़ता है क्योंकि यदि ऐसे व्यक्ति को दफना दिया जाता है, तो उसकी आत्मा विपत्तियों का कारण बनने के लिये पृथ्वी से बाहर आती है।[28]

---

[24]देखें P.T. Shrinivas Iyenger, *Pre-Āryan Tamil Culture*, reprint, New Delhi: Asian Education Services, 1985 (1928): 18. अग्नि और यज्ञ संस्कार के महत्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि ब्रह्मांड की उत्पत्ति पर उपनिषद् दृष्टिकोण (उदाहरण के लिये, *छांदोग्य उपनिषद्.* ४-८; *बृहद् आरण्यक.* ६.२.९) यह है कि इसकी उत्पत्ति 'सर्व-बलिदान' (*सर्व-हुतः यज्ञात्*) से हुई थी। इसमें, वेदी को नारी रचनात्मक ऊर्जा के रूप में और दैवीय बलिदान या अग्नि को पुरुष रचनात्मक ऊर्जा के रूप में, इन दोनों के ब्रह्मांड को जन्म देने वाले रहस्यवादी मिलन और उसमें मौजूद सभी चीजों का प्रतीक माना गया है। (देखें Sharma, B.R., "Symbolism of Fire-Altar in the Vedas: A Study with Special Reference to Āpaḥ," *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, vol. 33, no. ¼, 1952: 190).

[25]Jamison and Brereton, *पूर्व उद्धृत*,14, 15, 103.

[26]*पूर्वोक्त*.x.16.1, 2; 17.3.

[27]*पूर्वोक्त*.x.16.6.

[28]देखें Macdonell, *पूर्व उद्धृत,* 1898: 70.

आकृति संख्या १– अग्नि देव, तमिलनाडु के तिरुचिरापल्ली की लगभग १८३० ईस्वी की एक लघु जलवर्ण पेंटिंग में एक बकरी की सवारी करते हुए। अब ब्रिटिश संग्रहालय, लंदन में। स्रोत– https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Agni_god_of_fire.jpg

संस्कृत शब्द *होम*, जो वैदिक धर्म में निहित है, मूल *√हु* से लिया गया है, जिसका अर्थ है "अग्नि में डालना, भेंट, बलिदान।" कुछ स्रोत *होम*/*होमम्* और *हवन* शब्दों को पर्यायवाची मानते हैं। *होम* शब्द संस्कृत में एक अनुष्ठान को संदर्भित करता है, जिसमें एक आहुति या कोई धार्मिक भेंट अग्नि में दी जाती है। इसे कभी-कभी "बलिदान अनुष्ठान" कहा जाता है क्योंकि अग्नि भेंट को नष्ट कर देती है, लेकिन एक *होम* अधिक सटीक रूप से "मन्नत अनुष्ठान" [29] होता

[29]Richard K. Payne and Witzel, Michael (eds.), *Homa Variations: The Study of Ritual Change across the Longue Durée*, New York: Oxford University Press, 2015: 2.

है। अग्नि एक प्रतिनिधि है और भेंट में वे वस्तुएं शामिल हैं जो भौतिक और प्रतीकात्मक हैं जैसे अनाज, घी, दूध, धूप, और बीज।[30] आधुनिक समय में, एक *होम* या *हवन* अनेकों हिंदू धर्मक्रियाओं का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और एक प्रतीकात्मक अग्नि के पास यह एक निजी अनुष्ठान को *उद्धृत* करता है, जैसे कि एक विवाह।[31] होम अनुष्ठान को वैकल्पिक नामों से जाना जाता है, जैसा कि हिंदू धर्म में *यज्ञ* के रूप में बड़ा *सार्वजनिक अग्नि अनुष्ठान* या बौद्ध धर्म में *यज्ञविधान* और *गोम*।[32] होम में, अग्नि के माध्यम से देवताओं को एक तरह से अभारोक्ति,प्रतिदान, व व्युत्क्रमण (*quid pro quo*) की उम्मीद में भेंट दी जाती है। अग्नि किसी यज्ञ का केंद्र है क्योंकि भेंट के सेवन से अग्नि उन्हें शुद्ध बनाता है और उसके बाद ही उन्हें देवताओं तक पहुंचाता है।

वैदिक काल के दौरान, यज्ञ में पशु बलि शामिल थी, लेकिन बाद की अवधि में अनुष्ठानों की उत्तरोत्तर पुनर्व्याख्या की गई, भेंट को प्रतिस्थापित किया गया और इसे अहिंसक या प्रतीकात्मक बनाया गया, भौतिक भेंट की जगह ज्ञान की श्रेष्ठता और उसके साथ मंत्र की ध्वनि का अनुष्ठान मनाया गया।[33] *शतपथ ब्राह्मण* एक यज्ञ को किसी ऐसी चीज के त्याग के रूप में परिभाषित करता है जिसे कोई मूल्यवान मानता है, जैसे कि यज्ञ के दौरान दी जाने वाली आहुति और दक्षिणा। आहुति के लिये, यह ग्रंथ गाय का दूध, घी, बीज, अनाज, फूल, और खाद्य पिंडिकाएं (जैसे, चावल पिंडिक) की सिफारिश करता है। दक्षिणा के लिये, गाय, कपड़े, घोड़े या सोने की पेशकश की सिफारिश की जाती है।[34] प्रारंभिक वैदिक ग्रंथों में उल्लेख है कि यज्ञ करने वाला व्यक्ति वेदी बनाकर अमरत्व प्राप्त करता है।

> "जो वेदी बनाता है वह अग्नि देवता बन जाता है, और अग्नि वास्तव में अमर है। देवता वैभव हैं - वह वैभव में प्रवेश करता है। देवता महिमा हैं। जो कोई यह जानता है वह गौरवशाली हो जाता है।"[35]

---

[30]Payne and Witzel, *पूर्व उद्धृत*,1-3; Michaels, *पूर्व उद्धृत*, 237–248.

[31]Michaels, *पूर्व उद्धृत*, 246.

[32]पूर्वोक्त.237–248; Payne and Witzel, पूर्व उद्धृत, 30, 51, 341–342.

[33]Tadeusz Skorupski, "Buddhist Permutations and Symbolism of Fire" in R.K. Paine and Michael Witzel (eds.). *Homa Variations: The Study of Ritual Change across the Longue Durée,* New York: Oxford University Press, 2015: 78–81.

[34]देखें Skorupski, पूर्व उद्धृत, 78–81; Madan Gopal, *India through the Ages*, ed. by K.S. Gautam, New Delhi: Publications Division, Government of India, 1990: 79.

[35]Julius Eggling (trans.) *Śatapatha Brāhmaṇa*, 5 vols., 12, 26, 41, 43, 46, London: Clarendon Press, 1882: x.1, 4, 14.

अब प्रचुर मात्रा में साक्ष्य उपलब्ध हैं जो इंगित करते हैं कि पिछले ३००० वर्षों से पूरे एशिया में होम परंपराएं मौजूद रहीं हैं।[36] एक होम, अपने सभी एशियाई रूपों में, एक औपचारिक अनुष्ठान है जिसमें अग्नि को भेंट प्रदान की जाती है और जो अंततः वैदिक धर्म में निहित परंपराओं से जुड़ा होता है।[37] परंपरा अग्नि और पके हुए भोजन (*पाक-यज्ञ*) के प्रति सम्मान को दर्शाती है जो भारत में विकसित हुई, और वेदों की ब्राह्मण परतें इस अनुष्ठान श्रद्धा के शुरुआती प्रलेख हैं।[38]

ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि पूजा की प्रथा भारत में उत्पन्न हुई है। विभिन्न यूरोपीय लोगों द्वारा अग्नि के लिये इस्तेमाल किया जाने वाला सामान्य शब्द (उदाहरण के लिये, लैटिन में *इग्निस*, स्लावोनिक में *ओगनी*, रूसी में *ओगॉन* और लिथुआनियाई में *उगनिस*) भारतीय उपमहाद्वीप से ओरिएंट और यूरोप में अग्नि पूजा की प्रथा के प्रसार की ओर इशारा करता है।[39] *ऋग्वेद* के आरंभिक स्तोत्र एक युद्ध का उल्लेख करते हैं जो आर्य जनजातियों, पंजाब के द्रुहु और उनके पूर्वी पड़ोसियों हरियाणा के पौरव व कश्मीर के आनवों, के बीच हुआ था। इसके परिणामस्वरूप, अधिकांश द्रुह्युओं का पश्चिम की ओर निष्कासन हुआ।[40] पश्चिमी पंजाब में उनका स्थान आनवों ने ले लिया था। द्रुह्यु पंजाब से पश्चिम में ईरान की ओर गए और उन्होंने वहां अपने राज्य स्थापित किये। पौरव जनजाति खुद को आर्य और ईरानियों को अनार्य मानते

---

[36]Timothy Lubin, "The Vedic Homa and the Standardization of Hindu Pūjā," in R.K. Paine and Michael Witzel (eds.). *Homa Variations: The Study of Ritual Change across the Longue Durée*, New York: Oxford University Press, 2015: 143–166.

[37]पूर्वोक्त. 143–166.

[38]पूर्वोक्त. 143–145; Ganganath Jha, *Chāndogyopanishad*, Poona: Oriental Book Agency, 1942: 5.19.1-2.

[39]उदाहरण के लिये, अल्बानियाई मिथिक कथाओं में, अग्नि की इल्लिरियनों (Illyrians) द्वारा एक देवता के रूप में पूजा की जाती थी जिसे एन्जी (Enji) कहा जाता था। योरूबा मिथिक कथाओं में, अग्नि का देवता ओगुन, लोहारों और धातु के औजारों के संरक्षक के रूप में जाना जाता था। मंगोलियाई मिथिक कथाओं में, वह एक भूरे रंग की बकरी पर सवार अग्नि के लाल देवता ओडगन (Odgan) बन गए। स्लाव मिथिक कथाओं में, अग्नि की देवी ओग्नेना मारिया (Ognyena Maria), गड़गड़ाहट, बारिश, और युद्ध के गगन देवता, पेरुन (Perun), की बहन और सहायक हैं। इन सभी का वैदिक अग्नि से संबंध है। (देखें Joseph Slabey Rouček, *Slavonic Encyclopaedia*, Philosophical Library, 1949: 905; Manfred Lurker, *The Routledge Dictionary of Gods and Goddesses, Devils and Demons*, London: Routledge, Taylor & Francis, 2005: 57). भी देखें Payne and Witzel, *पूर्व उद्धृत*, 2.

[40]P.L. Bhargava, *India in the Vedic Age*, Lucknow: Upper India Publishing House, 1956: 99; Shrikant Talageri, *The Rigveda, an Historical Analysis*, Delhi: Aditya Prakashan, 2000: 260; F.E. Pargiter, 1962: *Ancient Indian Historical Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1962: 298. आर्यों के संबंध में इन संदर्भों और अन्य विवरणों को मैंने कोएनराड एल्स्ट से लिया है (Koenraad Elst, "The Conflict between Vedic Aryans and Iranians," *Indian Journal of History and Culture*, Chennai, Autumn 2015) (http://koenraadelst.blogspot.com/2016/01/the-conflict-between-vedic-aryans-and.html)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

थे, जबकि ईरानी खुद को आर्य और पौरव जनजाति को अनार्य मानते थे।[41] ऐसा प्रतीत होता है कि पश्चिम की ओर कुछ आर्य जनजातियों का अगला प्रवासगमन दस राजाओं के युद्ध (*दाशराज्ञ युद्ध*) के परिणामस्वरूप हुआ, जिसका उल्लेख *ऋग्वेद* (VII.18, 33, 83.4-8) में किया गया है।[42] इस युद्ध में वैदिक राजा सुदास अपने *अनिन्द्र* (इन्द्र-विहीन) शत्रुओं, जिनमें आनव और द्रुह्यु शामिल थे, के विरुद्ध विजयी हुए।[43] इस युद्ध के परिणामस्वरूप, जो मुख्य रूप से भूमि के लिये लड़ा गया था,[44] कुछ आर्य जनजातियां जैसे कि अलिन, भलन, पर्शु, और पणि ने विशाल ईरान (ईरानज़मिं या ईरान-ए-बोज़ोर्ग) के रूप में जाने गए क्षेत्र की ओर पलायन किया। जबकि व्यावहारिक रूप से सुदास के दुश्मन जनजाति-नेताओं के सभी नाम ईरानी हैं या ग्रीको-रोमन स्त्रोतों में ईरानियों के रूप में जानी जाने वाली जनजातियों से संबंधित हैं, सुदास के वैदिक आर्यों का जोर गंगा-यमुना दोआब की ओर था।[45] यह क्षणभंगुर पौरव युद्ध मनोविज्ञान के अनुरूप है, क्योंकि आनवों ने अपनी हार के बाद गहरी अप्रसन्नता दिखाई थी। “यह बिल्कुल निश्चित हो गया है कि ईरानियों को *ऋग्वेद* में प्रमुखता से दिखाया गया है। वैदिक आर्यों के साथ उनके संघर्ष का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है, जिस के कारण वैदिक आर्यों ने एक बड़े क्षेत्र में प्रमुखता प्राप् कर ली और ईरानी मुख्य तौर पर अफगानिस्तान और उससे आगे के देशों में स्थानांतरित हो गए।”[46]

पारसी धर्म[47] में आग की उपासना की उत्पत्ति वैदिक धार्मिक पद्धति की गृहस्थ-अग्नि में हुई थी, जिससे पारसियों[48] ने अपने विश्वास के तत्वों को ग्रहण किया था। इसे तैंतीस

---

[41]Benjamin Fortson, *Indo-European Language and Culture. An Introduction*, Oxford: Blackwell, 2004:187.

[42]Radha Kumud Mookerji, *Chandragupta Maurya and His Times*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1966: 1; Hans-Peter Schmidt, “Notes on Ṛgveda 7.18.5–10,” *Indica*, March 1980: 17, 41–47.

[43]देखें Elst, *पूर्व* उद्धृत।

[44] Talageri, *पूर्व उद्धृत;* Elst, *पूर्व उद्धृत*।

[45]देखें *पूर्वोक्त*।

[46] *पूर्वोक्त।*

[47]यह उल्लेखनीय है कि ज़रथुश्त्र (ज़रथुश्त्र स्पितामा के रूप में भी जाना जाता है) जिसकी तिथि आम तौर पर लगभग १००० ईसा पूर्व की मानी जाती है, वास्तव में पारसी धर्म का संस्थापक नहीं था। वह मूल रूप से अपने स्तोत्रों के माध्यम से, एक उस विश्वदृष्टि का प्रसिद्ध प्रवक्ता बना, जो कुछ वैदिक भाषी लोगों के बीच फली-फूली, जिसने अपने नेतृत्व में अहुर को अपना सर्वोच्च देवता घोषित किया।

[48]प्रारंभिक ईरानी धर्म में, जो बहुदेववादी था, अहुर देवताओं के राजा थे। इन देवताओं में, सबसे महत्वपूर्ण मिथ्र (उगते सूरज और ब्रह्मांडीय व्यवस्था के देवता), आतर् (अग्नि), अनाहिता (उर्वरता, ज्ञान, और स्वास्थ्य की देवी), तिश्त्र्य (कृषि के देवता), हाओम (फसल और स्वास्थ्य के देवता), वेरेथ्रग्न (अच्छाई के रक्षक देवता), और हवार् क्षत (पूर्ण सूर्य के देवता) थे। इन अच्छे देवताओं के विपरीत, बुरे देवता थे जो बुराई, अंधकार, और अराजकता का प्रतिनिधित्व करते थे जैसे अंग्र मैन्यु और उनके राक्षसों की सेना। ज़रथुश्त्र ने अहुर को प्रमुख देवता बनाया जिससे अन्य सभी देवता उत्पन्न हुए। दूसरे शब्दों में, कोई अभी भी आतर् या अनाहिता से प्रार्थना कर सकता है लेकिन इस समझ के साथ कि वे एक ही दिव्य अस्तित्व के प्रतिनिधि थे। इस अर्थ में, ये देवता सर्वोच्च निर्माता, अहुर मज़्द के विभिन्न

देवताओं की अवधारणा, *होतृ* या *ज़ोतर्* द्वारा यज्ञ का निष्पादन, और *आहुति* या *आज़ुति* की भेंट में देखा जा सकता है जो वेद और अवेस्ता के धर्म की अग्नि पूजा की कुछ विशिष्ट समरूप विशेषताएं हैं।[49] पारसी सर्वोच्च देवता अहुर मज़्द (सर्वोच्च निर्माता),[50] वैदिक अर्ध-देवता असुर (अर्थात् दानव) है।[51] वैदिक आर्य मूलतः असुरों की पूजा करते थे लेकिन अंततः उन्हें राक्षसों में परिवर्तित कर दिया था।[52] उसी तरह, वैदिक देव पारसी लोगों के लिये राक्षस बन गए क्योंकि, मानव जाति के साथ-साथ खुद को भी धोखा देने के कारन, पारसियों ने उन्हें पूजा के योग्य नहीं

पहलुओं और विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। दिलचस्प बात यह है कि पारसी पवित्र पुस्तक, *अवेस्ता*, में अग्नि मंदिरों का उल्लेख नहीं है और न ही प्राचीन फ़ारसी में कोई शब्द अग्नि-मंदिर के लिये उपलब्ध है। अग्नि के माध्यम से सर्वोच्च निर्माता का सम्मान करते हुए ही *अवेस्ता* इसका उल्लेख करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पारसी धर्म में अग्नि-मंदिर की उपासना पद्धति केवल चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास एकीमेनियन (Achaemenian) काल के उत्तरार्ध में स्थापित हुई थी (Mary Boyce, "Ātaškada," *Encyclopædia Iranica*, 1987, vol. III, fasc. 1: 9-10) and "no actual ruins of a fire temple have been identified from before the Parthian period" (Mary Boyce, "On the Zoroastrian Temple Cult of Fire," *Journal of the American Oriental Society,* vol. 95, part 3, 1975: 454)। ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि मंदिर का विकास पारसी धर्म में वेदी की आग और अखंड लौ के चारों ओर एक इमारत के निर्माण के माध्यम से हुआ था, जो स्वयं गृहस्थाग्नि से उत्पन्न हुई थी। बाद के *बुंदहिस्न्* जैसे ज़रथुश्त्री ग्रंथ, अग्नि अनुष्ठानों, अग्नि के प्रकार, और अग्नि मंदिर के बारे में जानकारी के आरंभिक स्रोत हैं। ईरानी अग्नि मंदिरों *आतशकद* (आग का घर) के रूप में जानते थे, लेकिन अब यूनानियों द्वारा दिये गए शब्द *पायरोथेआ* (अग्नि मंदिर) द्वारा बेहतर जाने जाते हैं।

[49]P.L. Bhargava, *India in the Vedic Age: A History of Āryan Expansion in India*, Lucknow: Upper India Publishing House, 1956: 267.

[50]मज़्द शब्द वैदिक *मेधा* से लिया गया है जिसका अर्थ है "ज्ञान, बुद्धि।" कुइपर (Kuiper) और मलांद्रा (Malandra) जैसे विद्वानों ने सुझाव दिया है कि अहुर मज़्द की उत्पत्ति वैदिक देवता वरुण से हुई थी और ये दोनों देवता बुद्धिमान और सर्वज्ञ सर्वोच्च होने की एक ही अवधारणा का प्रतिनिधित्व करते हैं (देखें F.B.J. Kuiper, "Ahura Mazdā 'Lord Wisdom'?," *Indo-Iranian Journal*, vol. I8, pt. 1-2, 1957: 25-42; William W. Malandra (ed. and trans.), *An Introduction to Ancient Iranian Religion: Readings from the Avesta and the Achaemenid Inscriptions*, Minnesota: University of Minnesota Press, 1983: 46)।

[51]*ऋग्वेद* के शुरुआती हिस्सों में, *असुर* और *देव* शब्द अक्सर एक दूसरे के स्थान पर उपयोग किये गए हैं। उदाहरण के लिये, भगवान इंद्र को नौ बार असुर कहा गया है जहां इस शब्द का प्रयोग शक्तिशाली या सत्तासंपन्न के अर्थ में किया गया है। इसी तरह, अग्नि (बारह बार), वरुण (दस बार), मित्र (आठ बार), रुद्र (छः बार), और सवितृ (एक बार) को ऋग्वेद में असुर कहा गया है। (असुरों और देवों के विस्तृत अध्ययन के लिये देखें P.L. Bhargava, *Vedic Religion and Culture*, Delhi: South Asia Book, 1994)। पारसी धर्म और हिंदू धर्म दोनों में, पूर्व-पारसी धर्म के अहुर, वोरुन, व दैव और हिंदू धर्म के असुर, वरुण, देव जैसे देवता पाए जाते हैं, लेकिन उनकी भूमिकाएं विपरीत पक्षों की होती है (Wash E. Hale, *Ásura in Early Vedic Religion*, Delhi: Motilal Banarsidass,1986: 5-8, 23-31. यह भी देखें F.B.J. Kuiper, *Ancient Indian Cosmogony*, New Delhi: Vikas Publishing House, 1983: 48-110). ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओं की ये विपरीत भूमिकाएं दो समूहों के बीच हुए युद्धों के कारण हुईं, जिसके परिणामस्वरूप, ऐसा प्रतीत होता है कि ईरान-ए-बोजोर्ग क्षेत्र में रहने वाले अग्नि-पूजक आर्यों ने क्रमशः सकारात्मक और नकारात्मक अर्थों में असुर और देव शब्द का उपयोग करना शुरू कर दिया, जो कि सप्त-सिंधु क्षेत्र में रहने वाले आर्यों के ठीक विपरीत था।

[52]Wash Edward Hale, *Asura in Early Vedic Religion*, Motilal Banarsidass, Delhi,1986.

माना गया था।[53] इसी तरह, “हम अनुमान लगा सकते हैं कि पहले के एक टकराव में, इंद्र ने उन्हें विजय नहीं दी थी, इसलिये उन्होंने उसे “क्रोधित आत्मा, अंग्र मैन्यु”[54] में बदल दिया। *ऋग्वेद* में मन्यु[55] क्रोध और जुनून के रूप में इंद्र का एक नाम है। अंगिरस् के कुल के पुजारियों, पर *अंग्र*

[53]जबकि बाद के पारसी धर्म में, दैव राक्षस हैं, प्रारंभिक पारसी धर्म में वे काफी वास्तविक देवताओं की एक अलग श्रेणी थे, हालांकि, अंत में उन्हें खारिज कर दिया गया था (देखें Émile Benveniste, *Hommes et dieux dans l'Avesta*, Festschrift für Wilhelm Eilers, Wiesbaden: Otto Harrassowitz, 1967: 144-147). (Clarice Hellenschmidt and Jean Kellens. 1993. “Daiva,” *Encyclopaedia Iranica*, vol. 6, Costa Mesa: Mazda, 1993: 599–602). वे अभी भी विशाल ईरानी क्षेत्र के नेताओं द्वारा पूजे जाते थे और पूर्व में गाथाओं के धर्म को स्वीकार करने वाले लोगों द्वारा भी उनकी पूजा की जाती थी; इस प्रकार वे माज़दीन (Mazdean) सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का हिस्सा थे (Clarice Hellenschmidt and Jean Kellens. 1993. “Daiva,” *Encyclopaedia Iranica*, vol. 6, Costa Mesa: Mazda, 1993: 599–602)। यह कि वे राष्ट्रीय देवता थे, इस तथ्य से स्थापित होता है कि वे अभिव्यक्ति के ईरानी संस्करणों के माध्यम से उनका आह्वान किया जाता था जिन में वैदिक आलंकारिक झलक बहुत दिखाई पड़ती है। गाथाओं में, ज़ोरोस्टर ने घोषणा की थी कि वे “गलत देवता” या “झूठे देवता” थे और उन्हें अस्वीकार कर दिया गया था क्योंकि उनके अंधेपन के कारण, उन्हें उचित दैवीय समझ में असमर्थ के रूप में देखा गया और जिन्होंने दुनिया की कार्यविधि, मानव स्वास्थ्य, और धार्मिक जीवन की नियमितता को विक्षुब्ध कर दिया था। लेकिन अभी भी उन्हें राक्षस का दर्जा नहीं दिया गया था (Hellenschmidt and Kellens, पूर्व उद्धृत, 599–602). किंतु वाइयु (वायु) और मिथ्र (मित्र) “न्याय और सच्ची श्रद्धा का देवता” अभी भी अपनी वैदिक भीमिकाओं में बने रहे (देखें Mary Boyce, “On Mithra's Part in Zoroastrianism,” *Bulletin of the School of Oriental and African Studies, vol.* 32, 1969: 17). यह भी प्रस्तावित किया गया है कि अंग्र मैन्यु और ऋग्वेद के ऋषि अंगिरा (या अंगिरस) एक ही हैं (Shrikant G. Talageri, *The Rigveda: A Historical Analysis,* Delhi: Aditya Prakashan, 2000: 179)। यह सब अग्नि-पूजक आर्यों के दो समूहों अर्थात् देव-पूजा करने वाले वैदिक भारतीयों और असुर-पूजा करने वाले ईरानियों के बीच धार्मिक रूप से अलग होने की ओर इशारा करता है।

[54]*मन्यु*, जिसका अर्थ है “गुस्सा, जुनून, क्रोध,” ऋग्वेद वैदिक युद्ध देवता हैं जो आकाशीय बिजली के नियंत्रणकर्ता हैं, भयंकर, स्वयंभू और शत्रुओं का संहार करने वाले हैं (ऋग्वेद X.83 व 84)।

[55]*ऋग्वेद* X.83 व 84 का संबोध्य।

एक शाब्दिक खिलवाड़ के रूप में प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है।"[56] इसी तरह, अनाहिता,[57] मिथ्र,[58] तिश्त्र्य,[59] वाइयु[60] और आप[61] जैसे देवी-देवताओं के नाम स्पष्ट रूप से ऋग्वैदिक देव-समूह से लिये गए हैं।

पारसी धर्म में, चार सबसे पुराने पवित्र अग्नि-मंदिर पहाड़ियों पर स्थापित किये गए थे, जिससे उच्च स्थानों में पूजा की परंपरा विशाल ईरान के प्रत्येक चौथाई में अपनी महान आग के

---

[56]Koenraad Elst, "The Conflict between Vedic Aryans and Iranians," *Indian Journal of History and Culture*, Chennai, Autumn 2015 (http://koenraadelst.blogspot.com/2016/01/the-conflict-between-vedic-aryans-and.html)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[57]अवेस्ता भाषा में *अनाहीत* शब्द का अर्थ है *शुद्ध* (Mary Boyce, *A History of Zoroastrianism,* vol. II, Leiden/Köln: Brill, 1982: 202; Herman Lommel, *Die Yašts des Awesta,* Göttingen-Leipzig: Vandenhoeck & Ruprecht/JC Hinrichs, 1927: 29) और यह मूल रूप से एक वैदिक संस्कृत शब्द है (देखें Monier-Williams, *A Sanskrit-English Dictionary*, New York: Oxford University Press, 1898)। *जल (अबान) की दिव्यता के रूप में, इसकी उत्पत्ति संस्कृत में हुई है और सरस्वती से संबंधित है, जो कि इसकी आद्य-ईरानी समकक्ष हरह्वती की तरह, सरस्वती से निकली है* (देखें, Herman Lommel, "Anahita-Sarasvati," in Johannes Schubert, Ulrich Schneider (eds.), *Asiatica: Festschrift Friedrich Weller Zum 66,* Geburtstag, Leipzig: Otto Harrassowitz, 1954: 405–413; Mary Boyce, "Anāhīd," *Encyclopædia Iranica,* 1, New York: Routledge & Kegan Paul, 1983: 1003–1009; Mary Boyce, *A History of Zoroastrianism,* पूर्व उद्धृत, 71)। अपने पुराने ईरानी रूप में, हरह्वती नाम, "उस क्षेत्र को दिया गया था, जो नदियों में समृद्ध था, जिसकी आधुनिक राजधानी दिल्ली है" (Mary Boyce, "Anāhīd," *पूर्व उद्धृत,* 1003)। "देवी सरस्वती की तरह [*अरेद्वि सूर अनाहिता*], फसलों और पशु-समूहों का पालन-पोषण करती है; और जिसका एक देवी व पौराणिक नदी दोनों के रूप में अभिवादन किया जाता है, जो 'इतनी विशल है जितने ये सभी जल जो पृथ्वी पर बहते हैं'" (Mary Boyce, *"Anāhīd," पूर्व उद्धृत,* 1003)। अनाहिता आर्य मूल की है और स्वर्गीय नदी की अवधारणा का प्रतिनिधित्व करती है, जिसका वेदों में देवी सरस्वती द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है (J.C. Heesterman, Albert Van den Hoek, Dirk Kolff, and M.S. Oort, *Ritual, State, and History in South Asia: Essays in Honour of J.C. Heesterman*. Leiden: BRILL, 1992: 795)।

[58]ऋग्वैदिक देव मित्र (देखें Mary Boyce, "On Mithra's part in Zoroastrianism," *Bulletin of the School of Oriental and African Studies,* vol. 32, 1969: 10-34; Mary Boyce, "Mithra, Lord of Fire," in *Monumentum H.S. Nyberg* I, Acta Iranica 4, Leiden, 1975: 69-76; Hanns-Peter Schmidt, "Mithra," https://www.iranicaonline.org/articles/mithra).

[59]तिश्त्र्य ऋग्वैदिक तिष्य है (*Ṛg Veda* V.54.13; X.64.8)। वैदिक साहित्य में उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि मृग नक्षत्र (Orion's Belt) को एक तीर के रूप में दर्शाया गया था जिसे *इषुस् त्रिकाण्डा* (*iṣus trikāṇḍā*) कहा जाता था, जो तिष्य (या रुद्र) द्वारा प्रजापति की ओर छोड़ा गया तीर था ताकि उसे अपनी बेटी के खिलाफ किये गए यौन पाप का दंण्ड दिया जा सके (Antonio Panaino, "Tištrya," *Encyclopedia Iranica*, 1987 www.iranicaonlinee.org; B. Forssman, "Apaoša der Gegner des Tištrya," *Zeitschrift für Indologie und Iranistik,* vol. 82, 1968: 37-61)।

[60]हवा के पुराने ईरानी देवता।

[61]वैदिक संस्कृत और अवेस्ता दोनों ग्रंथों में, जल (न केवल लहरों या बूंदों के रूप में बल्कि सामूहिक रूप से कुओं, तालाबों, या धाराओं के रूप में) का प्रतिनिधित्व जल के देवताओं के समूह, आप द्वारा किया जाता है। जल से देवत्व की पहचान दोनों में पूर्ण है: ऋग्वेद में देवता पीने योग्य हैं और अवेस्ता में स्नान करने के लिये अच्छे हैं (Mary Boyce, "On the Zoroastrian Temple Cult of Fire," पूर्व उद्धृत, 71)।

साथ शुरू हुई थी।[62] इस तरह की आग को केवल एक निष्कलंक पारसी चूल्हे की आग से लिये गए अंगारों से स्थापित किया जा सकता है, और आवश्यकता के अनुसार, एक साधारण व्यक्ति द्वारा इसकी देखभाल की जा सकती है, बशर्ते कि वह पवित्रता दशा में हो। यह उल्लेखनीय है कि जैसा कि उनके आध्यात्मिक अग्रणी ने आदेश दिया था, पारसी लोग खुद को अग्नि उपासक नहीं मानते हैं।[63] वे केवल अग्नि को पवित्रता का साधन और सत्य और धार्मिकता का प्रतीक मानते हैं और इस कारण से अग्नि की पूजा नहीं करते हैं कि उनके लिये यह केवल एक प्रतीक से अधिक कुछ नहीं है जो उन्हें अपने विचारों को ईश्वर पर केंद्रित करने में मदद करता है।[64] यह शायद इस तरह के जीवनदर्शन के कारण था कि पारसी धर्म में दाह संस्कार को अस्वीकार कर दिया गया था जबकि हिंदू धर्म में यह एक सार्वभौमिक तथ्य बन गया था। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि जहां पारसी धर्म में दाह संस्कार को अस्वीकार कर दिया गया था, वहीं ब्राह्मणीय-हिंदू धर्म में यह सर्वव्यापी हो गया।

वैदिक परंपरा में दो धाराएं शामिल थीं, श्रौत (श्रुति-आधारित) और स्मार्त (स्मृति-आधारित) और वैदिक अग्नि यज्ञ अनुष्ठान प्रारंभिक श्रौत अनुष्ठानों की एक विशिष्ट विशेषता थी।[65] श्रौत अनुष्ठान एक सममित आदान-प्रदान (*quid pro quo*) है, जहां अग्नि के माध्यम से, एक यज्ञकर्ता ने देवी-देवताओं को कुछ भेंट किया, उनसे बदले में कुछ की उम्मीद की।[66] इस अनुष्ठान में, अग्नि पुजारियों की मदद से दूध, घी, दही, चीनी, केसर, चावल, जौ, नारियल, धूप, एक जानवर, या किसी भी मूल्यवान वस्तु, जैसे खाने या पीने योग्य वस्तुओं, की बलि चढ़ायी जाती थी।[67] वेदी (या होम/हवन कुण्ड) हमेशा वर्गाकार होती है और आम तौर पर ईंट, पत्थर, या तांबे से बनी होती है, और लगभग हमेशा इस अवसर के लिये विशेष रूप से बनाई जाती है, जिसे तुरंत बाद में ढाह दिया जाता है। जबकि बहुत बड़ी वेदियां कभी-कभी सार्वजनिक होम के लिये बनाई जाती हैं, सामान्य वेदी १x१ फुट वर्ग जितनी छोटी हो सकती है और शायद ही कभी ३x३ फीट वर्ग से अधिक होती है।[68] एक होम अनुष्ठान में पहला कदम अनुष्ठान मण्डप का निर्माण और अंतिम चरण इसकी विसंरचना होती है।[69] वेदी और मण्डप का अभिषेक एक

---

[62]देखें Mary Boyce, "Ātaš," *Encyclopedia Iranica*, 1987 (www.iranicaonline.org)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[63]पारसियों के अग्नि उपासक होने की धारणा वास्तव में पारसी विरोधी विवाद में उत्पन्न हुई जिसमें अग्नि-पूजा को नीचा दिखाया गया है। पारसी आतेशगाह (अग्नि मंदिर) का सीधा सा अर्थ है अग्नि-घर और बाकी कुछ नहीं।

[64]जैसे आग हमेशा ऊपर की ओर जलती है, वह स्वयं प्रदूषित नहीं हो सकती।

[65]Michaels, पूर्व उद्धृत, 237-248; Lubin, पूर्व उद्धृत, 143–166.

[66]Payne and Witzel 2015: 2-3, 78; Michaels, पूर्व उद्धृत, 231; Gavin Flood, (ed.) *The Blackwell Companion to Hinduism*, Delhi: John Wiley & Sons, 2008: 78.

[67]Payne and Witzel 2015: 78-79; Hillary Rodrigues, *Ritual Worship of the Great Goddess: The Liturgy of the Durgā Pūjā with Interpretations,* State University of New York Press, 2003: 224–231; Natalia Lidova, *Drama and Ritual of Early Hinduism*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1994: 51–52.

[68]Payne and Witzel, *पूर्व उद्धृत,* 1-3.

[69] *पूर्वोक्त।*

पुजारी द्वारा किया जाता है, जो मंत्रों के पाठ के साथ अनुष्ठान समारोह के लिये एक पवित्र स्थान बनाता है। स्तोत्र-गायन के साथ, अग्नि प्रज्ज्वलित की जाती है, और चढ़ावा एकत्र किया जाता है। यज्ञ करने वाला प्रवेश करता है, प्रतीकात्मक रूप से स्वयं को पानी से साफ करता है, होम अनुष्ठान में शामिल होता है, देवताओं को आमंत्रित किया जाता है, प्रार्थना की जाती है, और शंख[70] बजाया जाता है। जब ऋचाएं गाई जाती हैं, तो अक्सर स्वाहा के स्वर के साथ यज्ञ करने वाला अग्नि में प्रसाद और तर्पण डालता है।[71] वेदी और अनुष्ठान हिंदू ब्रह्मांड विज्ञान का एक प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व है, जो देवताओं की दुनिया और जीवित प्राणियों की दुनिया के बीच एक कड़ी है।[72] विभिन्न बौद्ध और जैन परंपराओं द्वारा भी होम अनुष्ठान प्रथाओं का पालन किया जाता था और उनके ग्रंथों में हिंदू परंपराओं के "अनुष्ठान संकलनवृत्ति" को हालांकि मध्ययुगीन काल के दौरान विकसित होने वाली विविधताओं के साथ विनियोजित करते हुए देखा गया है।[73]

ऋग्वेद के अनुसार, अग्नि अंधकार, शोक, बुरी आत्माओं, और शत्रुतापूर्ण जादू को हटाता है।[74] कोई उनसे न केवल पाप से शुद्धि और अपने शत्रुओं से सुरक्षा के लिये प्रार्थना कर सकता है बल्कि धन, अच्छा घर, मवेशी, महिमा, और सुख प्राप्त करने के लिये भी प्रार्थना कर सकता है। अग्नि जो लोगों के नेता (*विश्पति*) हैं और हर घर में अतिथि के साथ-साथ उसके स्वामी (*गृहपति*) के रूप में रहते हैं, उसकी पूजा करने वाले के एक पिता, भाई, सहयोगी, और मित्र हैं।[75] उसकी इक्कीस चिंगारियां जहर के बढ़ते प्रभाव का प्रतिकार करती है।[76] वास्तव में, अग्नि दुधारू गाय की भाँति लाभकारी है, जिसके उपासक उसके घर जाते ही उसके पास पहुँचते हैं और उसके उपासक उसकी खोज ऐसे करते हैं जैसे गुमशुदा गाय का पता उसके पदचिन्हों को

---

[70]अनुष्ठानों में एक तुरही के रूप में इस्तेमाल किये जाने वाले शंख को न केवल पाप के शुद्धिकरण के रूप में देखा जाता है, बल्कि इसे प्रसिद्धि, दीर्घायु, और समृद्धि प्रदान करने वाला भी माना जाता है। उसके कुंडलन की दिशा के आधार पर, शंख दो प्रकार के होते हैं- वामावर्ती (बाएं मुड़े हुए) और दक्षिणावर्ती (दाएं मुड़े हुए)। वामावर्ती सबसे अधिक पाए जाते हैं। जब खोल के शीर्ष से देखा जाता है तो इसमें खोल के चक्कर एक दक्षिणावर्ती सर्पिल में फैलते हैं। इस प्रकार का शंख प्रकृति के नियमों के उलट होने का प्रतिनिधित्व करता है और भगवान शिव से जुड़ा हुआ है। दक्षिणावर्ती शंख, जो बहुत ही दुर्लभ है, जब खोल के शीर्ष से देखा जाता है, तो खोल के चक्कर एक वामावर्ती कुंडली में फैलते हैं। यह दक्षिणावर्ती शंख अनंत ब्रह्माण्ड का प्रतीक है और भगवान विष्णु से जुड़ा है। दक्षिणावर्ती शंख को देवी लक्ष्मी का निवास माना जाता है। *वराह* और *स्कंद पुराणों* के अनुसार, दक्षिणावर्ती शंख के साथ स्नान करने से व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है (देखें V.A.K. Aiyar, *Symbolism in Hinduism,* Mumbai: Central Chinmaya Mission Trust, 2019: 283-286; K.V. Singh, *Hindu Rites and Rituals: Origins and Meanings*, London: Penguin, 2015).

[71]John S. Hawley and Vasudha Narayanan, *The Life of Hinduism*, University of California Press, 2006: 84.

[72]Michaels, *पूर्व उद्धृत*, 231.

[73]Granoff 2000: 399-424; Lubin, *पूर्व उद्धृत*, 143–166.

[74]Jamison and Brereton, *पूर्व उद्धृत*,i.12.7; iv.1.9; iii.1.7.

[75]*पूर्वोक्त*.i.1.19, 26.3, 75.4; ii.1.2, 1.8; vi.1.5; vii.15.2; viii.43.16; x.7.3, 91.2.

[76]*पूर्वोक्त*.x.18.4.

देखकर लगाया जाता है।[77] वे न केवल देवताओं और पुरुषों के बीच एक दूत और मध्यस्थ हैं, बल्कि अपनी लाख बेबंद आंखों के माध्यम से मनुष्यों के कर्मों, जैसे कि उनके विवाह समारोह, के साक्षी भी हैं।[78] वह यज्ञ को देवताओं के पास ले जाते हैं (*होता प्रथम: देवजुष्ट:*), केवल यज्ञ (*होता विक्षु माननीषु*) में दिखाई देते हैं, और उनके बिना कोई यज्ञ नहीं किया जा सकता (*होता विश्वेषाम् यज्ञानाम्*)।[79] सर्वोपरि, वह एक कार्यवाहक पुजारी (*अध्वर्यु*), पुरोहित, अनुष्ठानकर्ता (*ऋत्विज्*) और एक आह्वानकर्ता (*होतृ*) है।[80] वेदों के ब्राह्मण भाग में,[81] अग्नि न केवल सभी देवताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं, बल्कि आध्यात्मिक ऊर्जा, जो ब्रह्मांड में हर चीज में व्याप्त है, की सभी अवधारणाओं का भी प्रतिनिधित्व करते हैं।[82] वास्तव में, अग्नि इस हद तक महत्वपूर्ण है कि अन्य देवताओं की पूजा ज्यादातर अग्नि अनुष्ठानों के माध्यम से होती है और इसलिये देवताओं को दी गई भेंट भी अग्नि में ही रखी जाने से उन तक पहुंचती है।[83] उदाहरण के लिये, वज्र देवता इंद्र भी आंशिक रूप से आग के देवता हैं, जो अंधेरे *(वृत्र)* पर काबू पाने के लिये अपने वज्र या विद्युत-बंडल से युद्ध लड़ते हैं।

उपनिषदों और उत्तर-वैदिक साहित्य में, अग्नि मनुष्य में अमर सिद्धांत तथा किसी भी ऊर्जा या ज्ञान जो अंधेरे की स्थिति को दूर करता है, रूपांतरित करता है, और अस्तित्व की एक प्रबुद्ध अवस्था को जन्म देता है, के लिये एक रूपक बन गया।[84] इसके अतिरिक्त, अग्नि, जो देवताओं का मुख *(मुखम् देवानाम्)* है और जिसमें आहुति प्रवाहित होती है, उसकी सात ज्वालाएँ *(सप्तार्चिर् ज्वलन:),* सात मुख, सात लाल जीह्वाएं *(सप्तजिह्वानन),* सात लाल घोड़े और सात हथियार *(सप्तहेति)* हैं।[85] वह न केवल "ब्रह्मन् द्वारा सृजित अंधेरे का पहला विसर्जक" है,[86] बल्कि शोधक *(पावक, पावन),* शुद्ध *(शुचि, शुक्र),* नुकीला *(शिखिन्),* स्वर्ग के दरवाजे पर चमकने वाला *(स्वर्गद्वारस्पृश),* सब भोगों को खाने वाला (सर्वभक्ष, सर्वभुज) है, निर्माता और स्वामी *(सुरेश्वर, भूतपति, भूतभावन, कर्तृ),* सोने के निर्माता *(हिरण्यकृत),* सार्वभौमिक *(वैश्वानर, पंचजनिय),* पथों के निर्माता *(पथिकृत),* वेदों के निर्माता *(वेदकर्तृ),* देवताओं के प्रमुख *(देवाग्रिय:),*

---

[77] *पूर्वोक्त*.i.66.2, 66.5; x.46.2.

[78] *पूर्वोक्त*.i.13.2, 128.3; ii.2.4; iv.2.3, 7.8; v.8.6; x.21.7, 46.10, 85.38.

[79] *पूर्वोक्त*.ii.7.6; vi.16.11; x.1.4.

[80] *पूर्वोक्त*.i.1.1; iii.5.4; iv.9.4.

[81] उदाहरण के लिये, Eggling, *पूर्व उद्धृत*,ix.5.2.3.

[82] N.J. Shende, "Agni in the Brāhmaṇas of the Ṛgveda," *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, vol. 46, no. ¼, 1965: 1-28; Jan Gonda, "Deities and their Position and Function," *Handbuch Der Orientalistik: Indien*, Zweite Abteilung, Leiden: Brill Academic, 1980: 301-302.

[83] E.W. Hopkins, *Epic Mythology*, Strassburg: Verlag von Karl J. Trübner, 1915: 14.

[84] पूर्वोक्त, 97-98. Bettina Baumer and Kapila Vatsyayan, *Kālatattvakośa: A Lexican of Fundamental Concepts of the Indian Arts*, Delhi: Motilal Banarsidass 1988: 203-204 को भी देखें; S. Agrawala, "Fire in the Ṛgveda," *East and West*, vol. 11, no. 1, March 1960: 28-32.

[85] देखें Hopkins, *पूर्व उद्धृत,* 97-106.

[86] *पूर्वोक्त,* 97.

देवताओं के दूत *(देवदूत),* दैत्यों का तख्ता पलटने वाले, पापियों को जलाने वाले (*पापान् दहति*), पृथ्वी, वायु और आकाश में तीनों जगह *(त्रिविध),* और उसके कार्यों में बहुवृत्त *(बहुत्वं कर्मसु)* है।[87] संस्कृत महाकाव्य साहित्य में सात पवित्र अग्नियों (सप्तार्चिर् ज्वलन:) का वर्णन किया गया है, जिसमें तीन यज्ञ *(अग्नित्रेता, त्रेताग्नय:)* शामिल हैं, जिनमें पिता की गार्हपत्य अग्नि से, माता की दक्षिणा से, और गुरु की आहवनीय के साथ-साथ सभ्य, आवसथ्य, स्मार्त, और लौकिक से पहचान की जाती है।[88] एक अशुद्ध व्यक्ति अग्नि को स्पर्श नहीं कर सकता क्योंकि अग्नि ऐसे व्यक्ति की आहुति को स्वीकार नहीं करता जो बहिष्कृत है। जागने पर राजा अपने स्नानागार में जाता है, कपड़े पहनता है, सूर्य से प्रार्थना करता है, और फिर अग्नि-कक्ष *(अग्निशरण)* में प्रवेश करता है, जहाँ वह अग्नि का मंत्रों के साथ सम्मान करता है। प्रारंभिक वैदिक ग्रंथों के अनुसार, एक ऋषि के आश्रम का अपना अग्नि-कक्ष *(अग्निशाला, अग्नि-आगार, अग्निशरण, अग्निगृह)* होना चाहिए।[89] सबसे बढ़कर, अग्नि मनुष्य के सत्य का परीक्षण करता है, साक्षी के रूप में कार्य करता है, और अग्नि के बिना कोई भी यज्ञ नहीं किया जा सकता है *(नष्टं हुतम् अनग्निकम्)*।[90]

कुछ बौद्ध ग्रंथों में, विशेष रूप से *पालि तिपिटक* और इसकी अट्ठकथाओं में, अग्नि को *अग्गि भगवा* (भगवान अग्नि) कहा गया है।[91] वे एक बच्चे के जन्म के दिन एक पवित्र अग्नि को जलाने और जीवन भर इसे बनाए रखने के प्राचीन भारतीय समारोह का भी उल्लेख करते हैं।[92] अग्नि पूजा (*अग्गिपरिचरिया*)[93] और अग्नि उपासकों (*अग्गिपरिचारिक/ अग्गिक*),[94] जैसे कि तीन अग्नि-पूजक तेभातिक जटिलों[95] का पवित्र अग्नि के प्रमुख उपासकों के रूप में उल्लेख किया

---

[87]देखें पूर्वोक्त. 97-106.

[88]पूर्वोक्त. 98.

[89]पूर्वोक्त. 99.

[90]देखें पूर्वोक्त. 106.

[91]V. Fausböll, (ed.), *The Jātakas*, London: Trübner, 1877–1897: i.285, 494, ii.44.

[92]पूर्वोक्त. i.285, ii.43.

[93]T.W. Rhys Davids, J.E. Carpentier, and W. Stede, W. (eds.), *The Sumaṅgalavilāsinī, Buddhaghosa's Aṭṭhakathā on the Dīgha Nikāya*, London: Pali Text Society, 1886-1971: ii.232; H. Smith (ed.), *Sutta-Nipāta Aṭṭhakathā being Paramatthajjotikā II,* London: Pali Text Society, 1966-1972: 291.

[94]H. Olderberg (ed.), *The Vinaya Piṭakaṃ*, London: Pali Text Society, 1879-1883: i.71; T.W. Rhys Davids, and J.E. Carpenter (eds.), *The Dīgha Nikāya*, London: Pali Text Society, 1890-1891: ii.339; M.L. Feer (ed.), *The Saṃyutta Nikāya*, London: Pali Text Society, 1884–1898: i.166.

[95]गया धर्मक्षेत्र के तीन कश्यप भाई उरुविल्वा काश्यप, नदी कश्यप, और गया काश्यप जिन्हें बुद्ध द्वारा अग्नि के कई चमत्कारों के प्रदर्शन के माध्यम से बौद्ध धर्म के दायरे में लाया गया था। बाद में, बुद्ध ने उन्हें *आदित्तपरियाय सुत्त* (अग्नि देशना) का उपदेश दिया।

गया है *(जटिला अग्गी परिचारितुकामा,*[96] *अग्गिहुत्तं परिचारितुकामा)*[97] जो अग्नि को ऐसे उद्देश्य के लिये निर्धारित स्थानों पर (*अग्गिपरिचरणट्ठान*) *भेंट* (*अग्गिहोम,*[98] *अग्गिहुत्त/ अग्गिहोत्त /अग्गिहुत्तक*)[99] देते थे।[100] बौद्ध धर्म के पालि साहित्य में विभिन्न उपमाओं, कहावतों, और आध्यात्मिक अभिव्यक्तियों में बड़े पैमाने पर अग्नि (अग्गी) का उपयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये, तीन आग का मानक सेट, *रागअग्गि, दोसअग्गि,* और *मोहअग्गि* (काम, क्रोध और मोह की आग) और सात आग का मानक सेट, जिसमें अंतिम चार *आहुनेय्यग्गि* (यज्ञ अग्नि), *गहपत्'अग्गि* (एक गृहस्थ द्वारा रखी जाने वाली पवित्र अग्नि), *दक्खिणेय्यग्गि* (उपहारों के एक अच्छे प्राप्तकर्ता की आग), *कट्ठग्गि* (लकड़ी की आग) का उपयोग पालि सहित्य में किया गया है।[101] इस के साथ-साथ, *दुक्खग्गि* (दु:ख की आग)[102] *सोकाग्गि* (शोक की आग),[103] *भवदुक्खग्गि* (अस्तित्व की आग),[104] *इंदग्गि* (इंद्रियों की आग),[105] *विप्पटिसारग्गि* (पश्चाताप की आग),[106] और *अग्गिगत* (अग्नि के समान हो जाना) जैसी अग्नि उपमाएं पालि सहित्य में भरपूर हैं।[107]

---

[96]Olderberg, *The Vinaya Piṭakaṃ*, *पूर्व उद्धृत,* i.3. R. Morris and E. Hardy (eds.), *The Aṅguttara Nikāya*, London: Pali Text Society, 1885–1900: v.263, 266; K.R. Norman (trans.), *Elders' Verses I: Theragāthā*, translated with Introduction and Notes, Oxford: Pali Text Society, 1990: 2, 143; K.T.S. Sarao (trans.), *The Dhammapada: A Translator's Guide,* New Delhi: Munshiram Manoharlal, 2009: 107; V. Fausböll, (ed.), *The Jātakas*, London: Trübner, 1877–1897: i.494; DhA ii.232.

[97]M.L. Feer (ed.), *The Saṃyutta Nikāya*, London: Pali Text Society, 1884–1898: i.166; Woodward, F.L. (ed.), *Paramattha-Dīpanī: Theragāthā-Aṭṭhakathā, The Aṭṭhakathā of Dhammapālācariya*, London: Pali Text Society, 1940-49:136. D. Andersen and H. Smith, *The Sutta-Nipāta*, London: Pali Text Society, 1913: 79.

[98]*The Aṅguttara Nikāya*, London: Pali Text Society, 1885–1900: ii.207; T.W. Rhys Davids, and J.E. Carpenter (eds.), *The Dīgha Nikāya*, London: Pali Text Society, 1890-1891: i.9.

[99]H. Smith (ed.), *Sutta-Nipāta Aṭṭhakathā being Paramatthajjotikā II,* London: Pali Text Society, 1966-1972: 456; V. Fausböll, (ed.), *The Jātakas*, London: Trübner, 1877–1897: vi.522.

[100]H.C. Norman (ed.), *The Aṭṭhakathā on the Dhammapada,* London: Pali Text Society,1906-15: i.199.

[101]T.W. Rhys Davids and J.E. Carpenter, J.E. (eds.) *The Dīgha Nikāya,* London: Pali Text Society, 1890-1911: iii.217; E. Windish (ed.), *The Itivuttaka*, London: Pali Text Society, 1889: 92, C.A.F. Rhys Davids (ed.), *The Vibhaṅgha*, London: Pali Text Society, 1904: 368.

[102]U Ba Kyaw, (trans.), *Elucidation of the Intrinsic Meaning, So Named the Commentary on the Peta-Stories,* ed and Annotated by P. Masefield, London: Pali Text Society, 1980: 60.

[103]Kyaw, *पूर्व उद्धृत,* 41.

[104]A.A. Hazlewood, *Saddhammopayana*, A Master's Thesis Submitted to the Australian National University, 1983: 552.

[105]Kyaw, पूर्व उद्धृत, 56.

[106] *पूर्वोक्त,* 60.

[107]V. Trenckner, (ed.), *The Milindapañho*, London: Williams and Norgate, 1880: 302.

अध्याय ३
ज्वाला जी की पुराकथा

लगभग एक दर्जन पुराणों के अतिरिक्त,[108] ज्वाला जी की कथा भारत के अनेक प्राचीन ग्रंथों में मिलती है। इनमें से तीन मुख्य ग्रंथ हैं– *महाभागवत उपपुराण, महाभारत,* और कालिदास का काव्यात्मक *कुमारसंभव,* जो मुख्य रूप से कार्तिकेय के जन्म से संबंधित है। यह कथा उस समय की बात करती है जब असुरों का हिमालय पर आधिपत्य था और वे देवताओं को परेशान कर रहे थे।[109] भगवान विष्णु के नेतृत्व में, देवताओं ने उनके उपद्रवी व्यवहार को समाप्त करने का फैसला किया। उन्होंने अपना ध्यान केंद्रित किया और सारी शक्तियों को एक साथ मिला दिया जिससे जमीन से बड़ी लपटें उठने लगीं। फलस्वरूप, इन लपटों से सती[110] नामक एक युवा लड़की अस्तित्व में आई। उन्हें आदि-पराशक्ति[111] की साक्षात् वंशज माना जाता है। आदि-पराशक्ति की साक्षात् वंशज होने के नाते, सती शिव की पहली पत्नी हैं, दूसरी पत्नी पार्वती हैं जो सती का पुनर्जन्म हैं। हिंदू पौराणिक कथाओं में, सती और पार्वती दोनों की विशेष रूप से

---

[108] *वायु पुराण, विष्णु पुराण, स्कंद पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, लिंग पुराण, शिव पुराण, पद्म पुराण, हरिवंश पुराण, कालिका पुराण,* और *बृहद्धर्म पुराण।*

[109]भारतीय पौराणिक कथाओं में असुर अच्छे और बुरे गुणों वाले शक्तिशाली देवता हैं जो लगातार अधिक परोपकारी देवताओं के खिलाफ युद्ध छेड़ते हैं (देखें Wash E. Hale, *Ásura in Early Vedic Religion*, Delhi: Motilal Banarsidass,1986: 2-4)। जबकि वरुण के नेतृत्व में अच्छे असुरों को आदित्य कहा जाता है, वृत्र के नेतृत्व वाले बुरे असुरों को *दानव* कहा जाता है। (*पूर्वोक्त*.4). ऋग्वेद के प्राचीनतम भागों में, असुर भी वे आध्यात्मिक, दिव्य प्राणी हैं, जिनमें अच्छे या बुरे इरादों वाले और रचनात्मक या विनाशकारी झुकाव या प्रकृति वाले प्राणी शामिल हैं (देखें Monier Monier-Williams, *A Sanskrit-English Dictionary: Etymologically and Philologically Arranged*, Oxford: Clarendon Press, 1872: 121)। इस प्रकार, इंद्र और अग्नि जैसे देवताओं को भी इस अर्थ में असुर कहा गया है जब उन्हें उनके संबंधित कार्यक्षेत्रों, क्षमताओं, और ज्ञान के स्वामियों के रूप में दिखाया गया है। लेकिन, वैदिक साहित्य के बाद के भागों में, देवताओं को स्पष्ट तरह से परोपकारी-रूप में दिखाया गया है और असुरों को आमतौर पर द्रोही और देवताओं के दुश्मन के रूप में दिखाया गया है (पूर्वोक्त.5–11, 22, 99–102)।

[110]सती को हिंदू धर्म में शक्ति, वैवाहिक सुख और दीर्घायु की देवी के रूप में पूजा जाता है।

[111] *देवी भागवत पुराण* के अनुसार, आदि पराशक्ति या आदि-शक्ति को *परम आत्मन्* या *परम सत्य* के साथ-साथ ब्रह्मांड की मूल निर्माता, संरक्षक, और संहारक माना जाता है। वे एक प्रकट, अव्यक्त, और पारलौकिक देवी हैं। देवी पार्वती ने कुष्मण्ड के रूप में उस ब्रह्मांडीय अंडे को जन्म दिया जिससे ब्रह्मांड प्रकट हुआ। अंततः, आदि शक्ति स्वयं शून्य ऊर्जा हैं जो ब्रह्मांड के विनाश के बाद और इसके निर्माण से पहले भी मौजूद हैं। *स्कंद पुराण* और *मार्कंडेय पुराण* के अनुसार, दुर्गा या चण्डी संपूर्ण सृष्टि की ईश्वरीय मातृक शक्ति हैं और आदि शक्ति का यथार्थ भौतिक रूप हैं। आदि पराशक्ति को रूपहीन (निर्गुण) और रूपसहित (सगुण) दोनों के साथ वास्तव में सर्वोच्च आत्मा माना जाता है। सिख धर्म भी आदि शक्ति की अवधारणा को चित्रित करता है जहां खण्ड वाहिगुरु की अनंत शक्ति का प्रतीक है और दुर्गा, पार्वती, या चण्डी राक्षसों को नष्ट करने के लिये आदि-शक्ति की एक अभिव्यक्ति है जैसा कि *चण्डी-दी-वार* में वर्णित है।

इस लिये प्रशंसा की जाती है, क्योंकि इन्होंने शिव को उनके तपस्वी एकांतवास से दुनिया के साथ रचनात्मक भागीदारी में लाने की भूमिका निभाई थी।[112]

यह कथा रानी प्रसूति[113] और उनके पति राजा प्रजापति दक्ष[114] से आरम्भ होती है, जो अपनी खुद की एक बेटी होने की तीव्र इच्छा व्यक्त करते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये, वे भगवान ब्रह्मा के पास जाते हैं, जिन्होंने उन दोनों को देवी आदि-पराशक्ति की साधना करने की सलाह दी। ब्रह्मा की इस सलाह के बाद, उन्होंने अपने शाही वस्त्र त्याग दिये, तपस्वियों का वेश धारण किया, वन में निवास किया, और देवी आदि-पराशक्ति का ध्यान करने लगे। लंबे समय तक की गई उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर, देवी आदि-पराशक्ति ने दक्ष और प्रसूति को उनकी गहरी समाधि से जगाया और उन्हें वरदान मांगने के लिये आमंत्रित किया। उन्होंने देवी से अपनी बेटी के रूप में जन्म लेने का अनुरोध किया। उसने तुरंत एक शर्त के अधीन ऐसा करने के लिये अपनी सहमति दे दी। शर्त, एक चेतावनी के रूप में, यह थी कि यदि उन्हें कभी भी उनके द्वारा अनादर दिखाया गया, तो वह अपना दिव्य रूप धारण कर लेगी और उन्हें अस्वीकार कर देगी। दक्ष और प्रसूति इस शर्त के लिये सहमत हो गए और परिणामस्वरूप, आदि-पराशक्ति ने उनकी बेटी के रूप में मानव जन्म लिया। उन्होंने उसका नाम सती रखा। दक्ष की पुत्री होने के कारण वह दाक्षायणी के नाम से भी जानी जाने लगी। आदि-पराशक्ति के मानव जन्म लेने के लिये ब्रह्मा की योजना यह थी कि वे अपनी विनम्र भक्ति से शिव पर अप्रतिरोध्य प्रभाव पैदा करेंगी और उनसे विवाह करने में सफल होंगी।

किंवदंतियों में ज्यादातर सती को दक्ष और प्रसूति की सबसे छोटी बेटी के रूप में दिखाया गया है। यह स्वाभाविक था कि सती, एक बच्चे के रूप में, ऋषि नारद द्वारा बताई गई शिव से जुड़ी कहानियों और किंवदंतियों को पसंद करती थीं और उनकी एक उत्साही भक्त के रूप में बड़ी हुईं। दक्ष को पता था कि उनकी बेटी सती देवी शक्ति का अवतार थीं और उन्होंने भगवान शिव से शादी करने के लिये जन्म लिया था। जैसे-जैसे वह नारीत्व की ओर बढ़ीं, उनके पिता की मंशा के अनुसार किसी और से शादी करने का विचार उसके द्वारा अन्यायपूर्ण देखा गया। तपस्वी शिव का ध्यान आकर्षित करने के लिये, सती ने अपने पिता के महल की विलासिता को त्याग दिया और तपस्या और शिव की पूजा के लिये खुद को समर्पित कर एक जंगल में चली गईं। उनकी तपस्या इतनी कठोर थी कि उन्होंने धीरे-धीरे भोजन का त्याग कर दिया, पहले

---

[112]David Kinsley, *Hindu Goddesses: Visions of the Divine Feminine in the Hindu Religious Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986: 35-38.

[113]प्रसूति (अर्थात् *मातृत्व*), जिसे *पंचजनी* या *वीरानी* के नाम से भी जाना जाता है, स्वयंभू मनु (आत्म-जन्मे और ब्रह्मा के आध्यात्मिक पुत्र) और शतरूपा (ब्रह्मा द्वारा बनाई गई पहली महिला) की सबसे छोटी बेटी थी। दक्ष और प्रसूति का विवाह हिंदू धर्म में पहला विवाह था, जिसके परिणामस्वरूप सती, स्वाहा (अग्नि की पत्नी), स्वधा (पितरों की पत्नी), ख्याति (भृगु की पत्नी और लक्ष्मी की मां) सहित चौबीस बेटियों का जन्म हुआ।

[114]दक्ष (अर्थात् कुशल) भगवान ब्रह्मा के दस मानस (दिमाग से पैदा हुए) पुत्रों में से एक थे। इन दस में से दक्ष, धर्म, कामदेव और अग्नि का निर्माण ब्रह्मा ने क्रमशः अपने दाहिने अंगूठे, छाती, हृदय और भौहों से किया था।

एक दिन में एक पत्ते पर निर्वाह और फिर उस पोषण को भी छोड़ दिया। इस विशेष संयम के कारण उनका नाम अपर्णा पड़ा। उनकी प्रार्थना आखिरकार फलीभूत हुई, जब उनके संकल्प की परीक्षा लेने के बाद, शिव ने आखिरकार उनकी इच्छा को स्वीकार कर लिया और उन्हें अपनी दुल्हन बनाने के लिये सहमति दे दी। तत्पश्चात, हर्षोन्माद में लीन सती अपने पिता के घर लौट आईं।

आकृति संख्या २–शिव, पार्वती और नंदी। राजा रवि वर्मा की पेंटिंग (https://en.wikipedia.org/wiki/Parvati#/media)। १६ जनवरी २०१७ को एक्सेस किया गया।

दक्ष की बड़ी संख्या में दत्तक पुत्रियाँ थीं और उनमें एक रोहिणी थी। रोहिणी, जो बहुत सुंदर थी, चंद्र (चंद्रमा) से प्यार करती थी और उसने अपने पिता को इसकी जानकारी दी। दक्ष

ने इसे एक अच्छा वैवाहिक संबंध माना। उसने चन्द्र को अपने महल में आने का निमंत्रण दिया और रोहिणी को अपनी अन्य दत्तक पुत्रियों में से छब्बीस के साथ विवाह में देने की पेशकश की। दक्ष की सभी सत्ताईस दत्तक पुत्रियों से विवाह करने के लिये चन्द्र ने खुशी-खुशी हां कर दी।[115] दक्ष ने अपनी पुत्रियों के विवाह में सभी देवताओं, अर्ध-देवताओं, और ऋषियों को आमंत्रित किया। शादी के जश्न के बाद सभी मेहमान अपने-अपने घर लौट आए। लेकिन शादी के बाद, दक्ष ने शिव से चार दिनों तक रुकने का अनुरोध किया, जिस दौरान शिव ने सती को नाट्यम् (नृत्य) और भावम् (नृत्य करते हुए भाव) दोनों सिखाए। तत्पश्चात शिव अपने निवास कैलाश पर लौट आए।

चन्द्र, जो पूरी तरह से रोहिणी पर आसक्त था, अपनी अन्य सभी छब्बीस पत्नियों की उपेक्षा करने लगा। उपेक्षित पत्नियों ने अपने पिता दक्ष के पास जाकर चन्द्र के पक्षपात की शिकायत की। अपनी पुत्रियों के दुःख को सुनकर दक्ष ने चन्द्र को अपने महल में बुलया और उनके अशोभनीय व्यवहार के लिये उन्हें फटकार लगाई। चंद्र ने दक्ष से माफी मांगी और भविष्य में उनकी पत्नियों के बीच पक्षपात न करने का वादा किया। लेकिन, यह झूठा वादा निकला। एक बार फिर, छब्बीस बेटियों ने दक्ष से चन्द्र के व्यवहार के बारे में शिकायत की। इस बार, क्रोधित दक्ष ने चंद्रलोक का दौरा किया और आपतित कटुता के परिणामस्वरूप, दक्ष ने चंद्र को अपनी सुंदरता खोने का श्राप दिया। श्राप के परिणामस्वरूप, चंद्र की सुंदरता दैनिक आधार पर क्षीण होने लगी।

एक दिन, जब ऋषि नारद चंद्रलोक की यात्रा पर थे, चंद्र ने नारद से श्राप से छुटकारा पाने में मदद करने का अनुरोध किया। नारद ने सुझाव दिया कि दक्ष के श्राप से खुद को बचाने के लिये चंद्र को भगवान शिव के पास जाना चाहिए। हालाँकि, चंद्र को पता था कि शिव दक्ष की बेटी सती से शादी करने वाले थे और इसलिये चंद्र इतने निश्चित नहीं थे कि उन्हें श्राप से बचाने के लिये शिव दक्ष के खिलाफ जाएंगे। नारद ने चन्द्र को सलाह दी कि पहले वे शिव से वरदान प्राप्त करें और उसके बाद ही शिव को दक्ष का नाम बताएं। इसका कारण यह था कि शिव अपने वादे से कभी भी पीछे न हटने के लिये जाने जाते थे, चाहे परिणाम कुछ भी हो। नारद की सलाह के बाद, चंद्र शिव के पास उनके निवास स्थान कैलास पर गए और उनसे श्राप से छुटकारा पाने का वरदान प्राप्त किया। इसके बाद, नारद दक्ष के पास गए और उन्हें सूचित किया कि उनके होने वाले दामाद शिव द्वारा चंद्र को श्राप से बचाने के लिये वचन दे दिया गया है। शिव के व्यवहार से पूरी तरह से क्रोधित होकर, दक्ष कैलाश पहुंचे और शिव के खिलाफ परस्पर युद्ध में अंत:ग्रस्त हो गए। यह देवताओं के लिये बहुत चिंता का विषय बन गया और उन्होंने ब्रह्मा व विष्णु से इसके बारे में कुछ करने का अनुरोध किया। फलस्वरूप, ब्रह्मा और विष्णु ने युद्ध को रोकने के लिये एक योजना तैयार की और कैलाश गए। ब्रह्मा ने चंद्र के शरीर से चंद्र का एक प्रतिरूप बनाया। विष्णु ने मूल चंद्र को वरदान दिया कि शिव के वरदान के अनुसार चंद्र भगवान

---

[115]वे सत्ताईस नक्षत्रों के रूप में जाने जाते हैं जो प्रत्येक क्रांतिवृत्त के १३°२०’ को समाविष्ट करते हैं।

शिव के संरक्षण में होगा और अपनी सुंदरता को नहीं खोएगा। हालाँकि, दूसरा चंद्र दक्ष के श्राप का पालन करेगा, जिससे उसकी सुंदरता में दिन-प्रतिदिन कमी आएगी और इसके विपरीत भी होगा। इसके अलावा, वह अपनी सभी पत्नियों को भी एक-दूसरे के समान मानेगा। यही वजह है कि हमारे पास अमावस्या और पूर्णिमा के दिन हैं और दैनिक आधार पर कैलेंडर में अलग-अलग नक्षत्र देखे जा सकते हैं। हालाँकि अब शिव और दक्ष के बीच शांति बहाल हो गई थी, लेकिन दक्ष ने, विशेष रूप से अपनी बेटी सती का विवाह शिव के साथ करने के संबंध में, शिव को तिरस्कार की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया ।

एक दिन, दक्ष ने सती के स्वयंवर[116] की व्यवस्था की जिसमें उन्होंने देवताओं, गंधर्वों[117] और यक्षों[118] सहित सभी अविवाहित योग्य प्रत्याशियों को आमंत्रित किया। लेकिन, शिव को कोई निमंत्रण नहीं दिया गया। जब नारद ने दक्ष से प्रश्न किया कि शिव, जो एक अविवाहित योग्य प्रत्याशी भी थे, को आमंत्रित क्यों नहीं किया गया, तो दक्ष ने उत्तर दिया कि उन्होंने आंगन के प्रवेश द्वार के पास शिव की एक मूर्ति लगाने की व्यवस्था की है। लेकिन, सती ने इस बातचीत को सुन लिया और जब वर चुनने का समय आया, तो वह शिव की मूर्ति के पास दौड़ीं और उसके गले में माला डाल दी। मूर्ति तुरंत जीवित हो गई और शिव सती को अपने साथ अपने निवास स्थान कैलाश पर्वत पर ले गए। इसने दक्ष को और क्रोधित कर दिया और उनके प्रति उनकी घृणा को बढ़ा दिया।

किंवदंती के अधिकांश संस्करणों में, दक्ष को एक अभिमानी राजा के रूप में चित्रित किया गया है, जो अपने दामाद को न केवल इसलिये कि उसने उनके खिलाफ चंद्र की मदद की थी बल्कि उनकी त्यागी जीवन शैली के लिये भी बिल्कुल पसंद नहीं करता था। कुल मिलाकर, वह अपनी बेटी से बेहद नाराज था और उसने उसे उसके जैविक परिवार से पूरी तरह से काट दिया था। शिव के लिये दक्ष की घृणा तब और तेज हो गई जब सती के शिव से विवाह के कुछ समय बाद, ब्रह्मा ने एक विशाल यज्ञ किया, जिसमें ब्रह्मांड के सभी देवताओं और राजाओं को आमंत्रित किया गया था। शिव और सती को भी यज्ञ में भाग लेने के लिये बुलाया गया था। वे सब यज्ञ में भाग लेने के लिये आए और औपचारिक स्थान पर बैठ गए। दक्ष आने वाले अंतिम

---

[116]स्वयंवर [*स्वयं+वर* (दूल्हा)] एक प्राचीन भारतीय प्रथा थी जिसमें विवाह योग्य उम्र की एक महिला अपने पति को विवाहार्थियों के एक समूह में से चुनती थी। प्रथा के अनुसार, लड़की के पिता शुभ समय और स्थान पर उसका स्वयंवर रखते थे। राजा आमतौर पर राज्य के अंदर और बाहर पात्र व्यक्तियों को निमंत्रण भेजते थे, जबकि आम लोग स्थानीय समुदाय के भीतर समाचार प्रसारित करने की व्यवस्था करते थे। नियत दिन और स्थान पर, महिला उन विवाहार्थियों की सभा में से एक को चुनती थी, जिन्हें कभी-कभी प्रदर्शन करने के लिये एक कार्य दिया जाता था। जब लड़की अपनी पसंद के व्यक्ति की पहचान कर लेती थी, तो उसे माला पहना देती थी और तुरंत एक विवाह समारोह आयोजित किया जाता था।

[117]विशिष्ट स्वर्गीय प्राणी जो पुरुष प्रकृति की आत्माएं हैं और अप्सराओं (बादलों और जल की आत्माएं) के पति हैं।

[118]जंगल से जुड़ी सहजवृति आत्माओं का एक व्यापक वर्ग जो आमतौर पर उदार, लेकिन कभी-कभी सनकी या शरारती, होता है।

थे। जब वे पहुंचे, तो ब्रह्मा, शिव, और सती को छोड़कर, सभा में सभी लोग सम्मान में खड़े हो गए। दक्ष के पिता होने के कारण ब्रह्मा और दक्ष के दामाद होने के कारण शिव को दक्ष की तुलना में श्रेष्ठ माना जाता था। दक्ष ने शिव के व्यवहार को अधिकृत शिष्टाचार (प्रोटोकॉल) का उल्लंघन और अपमान माना। इसके परिणामस्वरूप, दक्ष ने शिव को बहुत नापसंद करना शुरू कर दिया, उन्हें एक गंदा, जड़हीन तपस्वी कहा और महान योगी की भूतों और पिशाचों के साथ संबंध बनाने के लिये निंदा की। दक्ष ने बदला लेने की कसम खाई और इस उद्देश्य के लिये उन्होंने स्वयं एक विशाल यज्ञ आयोजित करने का फैसला किया जिसमें सती और शिव को छोड़कर सभी देवी-देवताओं, ऋषियों, और राजकुमारों को आमंत्रित किया गया था।

जब सती को अपने पिता द्वारा आयोजित किये जाने वाले भव्य यज्ञ के बारे में पता चला, तो उसने शिव को यज्ञ में भाग लेने के लिये कहा। शिव ने यह कहते हुए उनके अनुरोध को मानने से इनकार कर दिया कि बिना आमंत्रण के किसी समारोह में शामिल होना उचित नहीं है।[119] लेकिन, सती के लिये अपने माता-पिता के प्रति बंधन की भावना अप्रतिरोध्य थी। इसके अलावा, अपने माता-पिता, रिश्तेदारों, और बचपन के साथियों से मिलने की इच्छा रखते हुए, सती ने अपने पिता की इस चूक को युक्तिसंगत बनाने की कोशिश की। उसने अपने भीतर तर्क किया कि उसके माता-पिता ने उसे और उसके पति को केवल इसलिये औपचारिक निमंत्रण नहीं दिया था, क्योंकि परिवार के रूप में ऐसी औपचारिकता अनावश्यक थी। उसने महसूस किया कि उसे अपने जैविक परिवार से मिलने के लिये निमंत्रण की आवश्यकता नहीं है और इसलिये वैसे भी जा सकती है, हालाँकि शिव ने उसे याद दिलाया कि वह अब दक्ष की बेटी से अधिक उनकी पत्नी थी और विवाह के बाद, दक्ष की बजाय उनके परिवार की सदस्य थी। लेकिन अपने माता-पिता के प्रति उसके बंधन की भावनाओं ने उस अधिकृत सामाजिक शिष्टाचार पर काबू पा लिया जिसका उससे पालन करने की उम्मीद थी। इसके अलावा, दक्ष की मुंहलगी बेटी होने के नाते, उसने सोचा, उनके बीच कोई औपचारिकता नहीं थी। उसने लगातार शिव से आग्रह किया कि वह उसे समारोह में शामिल होने दें, और शिव द्वारा समारोह में शामिल न होने के कारणों को सुने बिना अपनी मांगों पर अड़ी रही।[120] अंततः, हालांकि उन्होंने सती को समारोह में

---

[119] *वायु पुराण* ऋषि दधीचि और दक्ष के बीच संवाद की चर्चा करता है। बारह आदित्य देवताओं को बलि और स्तोत्र की भेंट के बाद, दधीचि ने देखा कि शिव और उनकी पत्नी को कोई अनुष्ठान भोजन (हविस्) आवंटित नहीं किया गया था, और शिव, जो वैदिक स्तोत्रों का हिस्सा थे, को संबोधित करने वाले यज्ञ में किसी भी वैदिक स्तोत्र का उपयोग नहीं किया गया था । उन्होंने दक्ष को यह कहते हुए चेतावनी दी कि उन्हें व्यक्तिगत कारणों से पवित्र वेदों को नहीं बदलना चाहिए। उपस्थित पुजारी और ऋषि भी दधीचि से सहमत थे। लेकिन, दक्ष ने इस पर ध्यान देने से इनकार कर दिया और इस प्रकार शिव का अपमान किया। परिणामस्वरूप, दक्ष के व्यवहार से निराश दधीचि ने यज्ञ छोड़ दिया (देखें H.H. Wilson, *Vāyu Purāṇa,* London: Trübner and Co, 1840: 62–69)।

[120] कुछ तांत्रिक ग्रंथों से संकेत मिलता है कि सती अपने पिता के यज्ञ में जाने की उनकी योजना को विफल करने की हिम्मत करने के लिये शिव से नाराज थीं क्योंकि वह जानती थीं कि वह देवी माँ थीं और शिव वास्तव में उनके समर्थक थे (देखें Anway Mukhopadhyay, *The Goddess in Hindu-Tantric Traditions: Devi as Corpse*, New York: Routledge, 2018)।

शामिल होने के लिये उसके माता-पिता के घर जाने की अनुमति दी, स्वयं उसके साथ जाने से इनकार कर दिया। लेकिन, उन्होंने नंदी और भूतगणों की मंडली को उसके साथ जाने का निर्देश दिया।

आगमन पर, साती बहुत उत्साहित थी और उसने अपने माता-पिता और बहनों से मिलने की कोशिश की। इसके विपरीत, दक्ष ने अपने अहंकार में मेहमानों के सामने सती को विशेष रूप से यह संकेत दिया कि उसका स्वागत नहीं है। वास्तव में, वह सती पर चिल्लाया और शिव के लिये बेहद असभ्य शब्दावली का इस्तेमाल किया, यहां तक कि उसे अशिष्ट और श्मशान-निवासी कहा। जल्द ही वे दोनों शिव के गुणों (और उनकी स्पष्ट कमी) के बारे में एक गर्म बहस में उलझ गए। हर गुजरते पल के साथ सती को यह एहसास होने लगा कि उसके पिता उसके पति, जो स्वयं एक देवता थे, के कई सराहनीय गुणों की सराहना करने में पूरी तरह असमर्थ हैं। इसके अलावा, उसे यह एहसास हुआ कि शिव पर यह दुर्व्यवहार केवल इसलिये किया जा रहा था क्योंकि उसने उससे शादी की थी और परिणामस्वरूप, वह अपने पति के इस अपमान का कारण थी। इस प्रकार, उसे अपने पति की बात न मानने का गहरा पछतावा हुआ। दूसरे शब्दों में, मेहमानों के सामने दक्ष और विशेष रूप से उसके पति की अवमानना ने उसे इतना परेशान कर दिया कि उसे लगा कि दक्ष ने पिता की दहलीज को पार कर लिया है और इसलिये वह उस वादे पर खरा नहीं उतरा जो उसने शुरू में उससे किया था जब वह उसकी बेटी के रूप में अवतार लेने के लिये सहमत हुई थी। उसने दक्ष को उसके और शिव के प्रति इतना अत्याचार करने के लिये श्राप दिया, और उसे याद दिलाया कि उसके अभिमानी व्यवहार ने उसकी बुद्धि को अंधकारमय कर दिया था। आदि पराशक्ति ने खुद को दक्ष के सामने शाश्वत शक्ति के रूप में पेश किया और उन्हें शिव द्वारा मारे जाने लायक दोषी घोषित किया। उसने घोषणा की कि उस क्षण से, वह नश्वर संबंधों से परे हो गई है। उसने अपने पति भगवान शिव और अपने नश्वर शरीर की माता प्रसूति को अंतिम प्रणाम किया। फिर उसने प्रार्थना की और आशा की कि वह एक ऐसे पिता के घर में जन्म लेगी जिसका वह आदर कर सके। आगे के अपमान को सहन करने में असमर्थ, सती ने आत्मदाह कर लिया। प्रेक्षकों ने उसे बचाने की कोशिश की लेकिन तब तक देर हो चुकी थी। वे केवल उसके आधे जले हुए शरीर को ही निकाल पाए। प्रतिभागियों को कोसने के बाद, नंदी और उनके साथ आए भूतगण घटना के बाद यज्ञ स्थल से चले गए। भृगु[121] ने बदले में नंदी और भूतगणों को शाप देकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

जब शिव ने अपनी पत्नी की मृत्यु के बारे में सुना, तो उनके दुःख और क्रोध की कोई सीमा नहीं थी, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि उन्हें लगा कि दक्ष ने उनके खिलाफ शातिर साजिश रची थी जिसके परिणामस्वरूप उनकी निर्दोष पत्नी की जान चली गई। शिव ने बालों के दो लट खींचे जिन्हें उन्होंने जमीन पर फेंक दिया। एक से काले रंग के वीरभद्र, शिव के विनाशकारी अवतार, आठ हाथों से पूरी तरह हथियारबंद, दृष्टिगोचर हुए। दूसरे से भद्रकाली, सर्वोच्च देवी

[121]सप्तर्षियों में से एक और दक्ष के यज्ञ के पीठासीन पुजारी।

की हिंसक और तीव्र अवतार प्रकट हुईं, जिनके अठारह हाथों में चक्र, खंजर, त्रिशूल, भाला, गदा, कैंची, तलवार, वज्र, शंख, अंकुश, विदारक, ढाल, धनुष और बाण जैसे हथियार थे। शिव ने उन्हें कहर बरसाने का आदेश दिया। काली, कात्यायनी, चामुण्डा, ईशानी, मुण्डमर्दिनी, भद्रा, वैष्णवी, और त्वरिता नाम की आठ अन्य देवियाँ भी वीरभद्र और भद्रकाली की सहायता करने के लिये प्रकट हुईं। किंवदंती के कुछ संस्करणों के अनुसार, वीरभद्र सबसे पहले पैदा हुए थे। लेकिन उन्हें विष्णु, जो दक्ष की रक्षा कर रहे थे, द्वारा बंदी बना लिया गया था क्योंकि दक्ष विष्णु का भक्त था, जिसे उन्होंने जरूरत के समय सुरक्षा का वादा किया था। इसके बाद, शिव ने भद्रकाली की रचना की जिसने वीरभद्र को मुक्त कर दिया और उसमें समाहित होकर उसे और भी अधिक शक्तिशाली बना दिया। भृगु की सेना को नष्ट कर दिया गया और यज्ञ परिसर को तबाह कर दिया गया, अधिकांश अतिथि गंभीर रूप से घायल हो गए।

आकृति संख्या ३– वीरभद्र दक्ष के यज्ञ को नष्ट करते हुए। *रज़्मनामा* (महाभारत का फारसी अनुवाद) की एक सचित्र पांडुलिपि से। कलाकार– जमशेद दिनांक– १५९८-१६००। (https://commons.wikimedia.org/wiki/File: The_Destruction_of_Dakṣa.jpg)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।
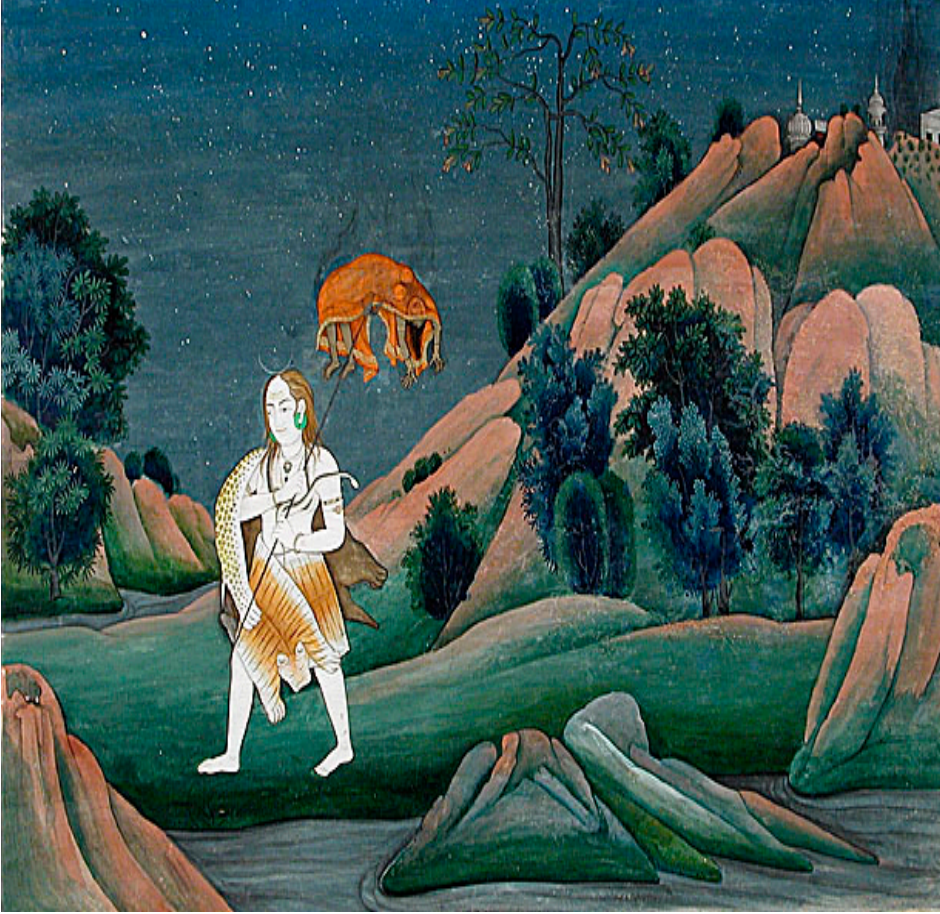
आकृति संख्या ४– शिव अपने त्रिशूल पर दाक्षानी की लाश को ले जाते हुए, लगभग १८०० ई., कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)। अब लॉस एंजिल्स काउंटी संग्रहालय कला में (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Dakṣayani.jpg)। १६ जनवरी २०१७ को एक्सेस किया गया।

दक्ष ने एक मृग के रूप में आकाश की ओर उड़ान भरी, लेकिन उसे पकड़ लिया गया और उसका सिर काट दिया गया। भूतगणों ने जीत के स्मृति-चिन्ह के रूप में भृगु की सफेद दाढ़ी को नोचने की कोशिश में की। दक्ष ने परब्रह्मन् (सर्वोच्च ब्रह्मन्),[122] जो यज्ञ की आग से उठे, के सामने क्षमा के लिये प्रार्थना की, जो परब्रह्मन् द्वारा उसे दे दी गई। उसने अपना जीवन वापस तो

[122]परब्रह्मन् (सर्वोच्च ब्रह्मन्) "वह जो सभी विवरणों और अवधारणाओं से परे है" को हिंदू ग्रंथों में निराकार आत्मा के रूप में समझाया गया है जो ब्रह्मांड में हर जगह और जो कुछ भी परे है उसमें अनन्तकाल तक व्याप्त है (Pratapaditya Pal (ed.), *Puja and Piety: Hindu, Jain, and Buddhist Art from the Indian Subcontinent,* Berkeley: University of California Press, 2016: 55-56)। इसकी अवधारणा हिंदुओं ने विविध तरीकों से की है। अद्वैत वेदांतिक परंपरा में यह निर्गुण ब्रह्मन् (निराकार ब्राह्मन्) और द्वैत और विशिष्टाद्वैत वेदांत परंपराओं में, सगुण ब्रह्मन् (साकार ब्रह्मन्) है। वैष्णव, शैव, और शाक्त परंपराओं में, यह क्रमशः विष्णु, शिव और शक्ति है (C.S.J. White, "Kṛṣṇa as Divine Child," *History of Religions*, 10 (2)l 1970: 156).

पा लिया लेकिन कंधों पर एक भेड़े के सिर के साथ। परब्रह्मन् ने दक्ष को सूचित किया कि शिव वास्तव में परब्रह्मन् का एक रूप हैं। इसके बाद, दक्ष शिव का बहुत बड़ा भक्त बन गया।

अभी भी गहरे दुःख में डूबे हुए, शिव ने सती की लाश को ले कर, तीनों लोकों में भटकना शुरू कर दिया और तांडव, विनाश के ब्रह्मांडीय नृत्य का प्रदर्शन किया। अन्य देवता उनके क्रोध के सामने कांपने लगे और भगवान विष्णु से मदद की गुहार लगाई। शिव को शांत करने के लिये, विष्णु ने सुदर्शन चक्र का उपयोग किया, जिसने सती के शरीर पर प्रहार किया और उसके इक्यावन टुकड़े कर दिये।[123] वे सभी स्थान जहाँ सती देवी के शरीर के अंग गिरे थे, वहां इक्यावन पवित्र शक्तिपीठ अस्तित्व में आए।[124] जिन स्थानों पर ज्वलनशील जीभ के टुकड़े गिरे थे, उसके परिणामस्वरूप देवी छोटी-छोटी ज्वालाओं के माध्यम से प्रकट हुईं।[125] ज्वालामुखी (कांगड़ा, हिमाचल), शक्तिनगर (सोनभद्र, उत्तर प्रदेश), सुरखानी (बाकू, अजरबैजान), बाबा गुड़गुड़ (किरकुक, इराक) और मुक्तिनाथ (मुस्ताङ, नेपाल) जैसे स्थानों पर ज्वाला जी या ज्वालामुखी के विशिष्ट दुर्लभ मंदिर इसके उदाहरण हैं। ज्वलंत चेहरे की देवी, ज्वाला जी, सार्वभौमिक मातृ-शक्ति के रूप में अपने भक्तों की ज़रूरत में मदद करती हुई *मधुरानिरुद्ध* जैसी कई साहित्यिक रचनाओं की विषय-वस्तु का आधार हैं।[126]

---

[123]कुछ अन्य परंपराओं में टुकड़ों की संथ्या १०८ दी गई है।

[124]विभिन्न परंपराएं आमतौर पर शक्ति पीठों की संख्या को ५१ या १०८ के रूप में देती हैं। शरीर के अंगों के अलावा, बिंदुधाम जैसे कुछ पीठ उन जगहों पर अस्तित्व में आए जहां सती के खून की बूंदें गिरी थीं। इनमें से ४ से १८ की महा शक्ति पीठों के रूप में पूजा की जाती है। देवी पूजा के इन ऐतिहासिक स्थानों में से अधिकांश दक्षिण एशिया (भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, अफगानिस्तान, और श्रीलंका) में हैं, और दो मध्य एशिया (तिब्बत में कैलाश और अजरबैजान में सुरखानी) में हैं (Vanamali, *Shakti: Realm of the Divine Mother*, New York: Simon and Schuster, 2008: 83-84, 143-144; Kunal Chakrabarti and Shubhra Chakrabarti, *Historical Dictionary of the Bengalis*, Maryland: Scarecrow Press 2013: 430; Dineschandra Sircar, *The Śākta Pīṭhas*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1998).

[125]किंवदंतियों का कहना है कि सात दिव्य बहनों के लिये सात लपटें हैं या नौ दुर्गाओं के नाम पर नौ लपटें हैं। नौ दुर्गाएं हैं– महाकाली, अन्नपूर्णा, चण्डी, हिंगलाज्, विंध्यवासिनी, महालक्ष्मी, सरस्वती, अंबिका, और अंजना देवी जो लगातार जलती रहती हैं। बौद्ध धर्म के कई सम्प्रदाय सात कांटे वाली पवित्र लौ के प्रतीकवाद को भी साझा करते हैं। शक्तिपीठों को बुरी शक्तियों से बचाने के लिये भगवान शिव ने भैरव के रूप में अवतार लिया था।

[126]चंद्र शेखर द्वारा सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में रचित यह नाटक, राक्षस बाण की बेटी ऊषा और भगवान कृष्ण के पोते अनिरुद्ध के गुप्त प्रेम की कहानी को दर्शाता है। जैसा कि दानव बाण का शहर अखण्ड अग्नि की दीवार से घिरा हुआ है, अनिरुद्ध तपस्या से ज्वालामुखी को प्रसन्न करते हैं ताकि बाण के शहर में प्रवेश करने का साधन प्राप्त हो सके। अनिरुद्ध ज्वालामुखी के मंदिर की मरम्मत करते हैं, और खुद को एक बलिदान के रूप में देवी को अर्पित करने के कगार पर, देवी द्वारा रोके जाते हैं, और उन्हें हवा में यात्रा करने की शक्ति प्राप्त होती है। जब बाण ने अपनी बेटी के विवाह की अनिरुद्ध से पेशकश की, तो भगवान शिव ने बाण को उन्नत करके उसे महाकाल नाम दिया और अपना निजी परिचारक बना लिया (देखें H.H. Wilson, *Select Specimens of the Theatre of the Hindus*, vol. 2, London: Parbury, Allen, and Co, 1835: 396-398).

अध्याय ४
त्रिशक्ति और पंचायतन

अग्नि मंदिर की देखभाल करने वाले उदासी त्रिशक्ति और पंचायतन के उपासक थे और इसलिये मंदिर में उन दोनों की भारी उपस्थिति विभिन्न रूपों में देखी जा सकती है।

त्रिशक्ति तीन शुभतम प्रतीकों से बनी है–त्रिशूल (🔱), ॐ ,और स्वस्तिक (卐)। संस्कृत शब्द *त्रिशूल*[127] [*त्रि* (तीन)+*शूल* (कांटा)] का अर्थ है एक तीन कांटों वाला भाला जो भारतीय वैदिक दर्शन में वर्णित तीन गुणों का प्रतिनिधित्व करता है, अर्थात् *सत्त्व* (पवित्रता, अच्छाई), *रजस्* (गतिविधि, अनुराग), और *तमस्* (अंधेरा, विनाश)।[128] त्रिशूल प्रतीकवाद बहुसंयोजक और समृद्ध है। कई हिंदू किंवदंतियों और कहानियों में, शिव पवित्र त्रिशूल को अपने हाथ में रखते हैं और इसे हर बुराई या नकारात्मक वस्तु को नष्ट करने के लिये अंतिम हथियार के रूप में उपयोग करते हैं। यह भी कहा जाता है कि गणेश के मूल सिर को अलग करने के लिये शिव द्वारा त्रिशूल का उपयोग किया गया था। दुर्गा भी अपने एक हाथ में त्रिशूल रखती हैं, जो उनके द्वारा चलाए जाने वाले कई हथियारों में से एक है। दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ देशों में, त्रिशूल *रामायण* के नायकों में से एक, भगवान हनुमान, का एक हथियार है।

---

[127]यूनानी और रोमीय दन्तकथाओं में, त्रिशूल को *ट्राइडेंट* (Trident) के नाम से समुद्र के देवता पोसायडन (Poseidon) या नेपच्यून (Neptune) का हथियार माना गया है। *ट्राइडेंट* शब्द की उत्पत्ति भी संस्कृत शब्द *त्रिदंत* [*त्रि* (तीन)+*दंत* (दांत)] से हुई है।

[128]भारतीय दर्शन में, संपूर्ण ब्रह्मांड दो घटकों से बना है– प्रकृति (माया या भ्रम) और पुरुष (वास्तविकता)। सब कुछ जो परिवर्तनशील है और अनंत नहीं है वह माया का हिस्सा है। इसकी तुलना में, पुरुष, एकमात्र वास्तविकता, जो ब्रह्मांड का एकमात्र अपरिवर्तनीय तत्व है, वह आत्मन् है। प्रकृति, मायावी दुनिया, के भीतर सब कुछ तीन गुणों से बना है– सत्त्व (पवित्रता, सद्भाव, अच्छाई), रजस् (अनुराग, गतिविधि), और तमस् (अंधेरा, अराजकता, विनाश)। ये तीन गुण सभी, जीवों व निर्जीवों, में अलग-अलग अनुपात में मौजूद हैं (एक गुण हमेशा अन्य दो की तुलना में अधिक प्रभावशाली होता है)। किसी का स्वभाव और व्यवहार तीनों गुणों की अलग-अलग मात्रा में एक जटिल परस्पर अन्योन्यक्रिया पर निर्भर करता है। अंतिम लक्ष्य प्रकृति (भ्रम, माया) और पुरुष (वास्तविक, आत्मन्) के बीच के अंतर को समझने में सक्षम होना है और प्रकृति से परे जाकर पुरुष को देखना है। तभी व्यक्ति को ज्ञान की प्राप्ति हो सकती

ॐ धर्म में, ब्रह्मन् का, जो परम वास्तविकता हैं, सबसे पवित्र शब्दांश प्रतीक और मंत्र है।[129] ॐ ध्वनि एक मौलिक ध्वनि है और इसलिये इसे *शब्द-ब्रह्मन्* भी कहा जाता है।[130] *ऋग्वेद* के *ऐतरेय ब्राह्मण*[131] से पता चलता है कि ॐ के तीन ध्वन्यात्मक घटक, अ-उ-म् (संस्कृत में, स्वर *अ* और *उ* मिल कर *ओ* बनाते है) ब्रह्मांडीय सृजन के तीन चरणों के अनुरूप हैं, और जब इसे पढ़ा या बोला जाता है, यह ब्रह्मांड की रचनात्मक शक्तियों का उत्सव मनाता है।[132] वास्तव में, तीन लोकों– पृथ्वी, वातावरण, और स्वर्ग– के अलावा, ॐ कई महत्वपूर्ण त्रयों जैसे विचार, भाषण, और क्रिया; तीन गुण; और तीन पवित्र वैदिक ग्रंथ (ऋग्वेद, सामवेद, और, यजुर्वेद) का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार, ॐ रहस्यमय रूप से पूरे ब्रह्मांड के सार का प्रतीक है। इसका उपयोग वेदों से लिये गए मंत्रों, राग आलापनों या उद्धरणों की शुरुआत में एक मानक उच्चारण के रूप में किया जाता है। उदाहरण के लिये, *गायत्री मंत्र*, जो *ऋग्वेद संहिता*[133] का एक श्लोक है, का न केवल आरम्भ ॐ से होता है बल्कि ॐ का अनुसरण *भूर् भुवः स्वः* के सूत का समापन भी ॐ से होता है। वास्तव में, ॐ हमेशा वेदों, उपनिषदों और अन्य धार्मिक हिंदू ग्रंथों में अध्यायों के आरंभ और अंत में पाया जाता है जहां यह आत्मन् और ब्रह्मन् (परम वास्तविकता) को संदर्भित करता है।[134] ॐ का उपयोग एक पवित्र आध्यात्मिक मंत्र के रूप में आध्यात्मिक ग्रंथों के पाठ से पहले और उसके दौरान, पूजा और निजी प्रार्थनाओं के दौरान, शादियों जैसे संस्कारों के समारोहों में, और अक्सर योग जैसी आध्यात्मिक गतिविधियों के दौरान किया जाता है।

वैदिक ग्रंथों के ब्राह्मण भाग ॐ के विभिन्न अर्थ प्रस्तुत करते हैं, जैसे कि यह "सूर्य से परे ब्रह्मांड है," "सांस, जीवन, और जो कुछ भी मौजूद है उसका सार है," "रहस्यमय और अक्षय है, "अनंत ज्ञान," तथा "मुक्ति दिलाता है।"[135] *उपनिषद्* ॐ को "कृत्रिम और संवेदनहीन" से

है। इस उद्देश्य के लिये, मनुष्य बाहरी वस्तुओं, जीवन शैली, और सोच की उपस्थिति और प्रभाव को बदलकर शरीर और मन में गुणों के स्तर को बदल सकते हैं। जैसा कि *भगवद् गीता* (१४.२०) में बताया गया है, "जब कोई शरीर में उत्पन्न होने वाले तीन गुणों से ऊपर उठता है; (तब वह) मनुष्य जन्म, बुढ़ापा, रोग, और मृत्यु से मुक्त हो जाता है; और ज्ञानोद्दीप्ति प्राप्त कर लेता है" (देखें, for details, James G. Lochtefeld, "Guṇa," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: A-M, vol. I, New York: Rosen Publishing Group Inc., 2001: 265; Alban Widgery, "The principles of Hindu Ethics," *International Journal of Ethics*, vol. 40, no. 2, 1930: 234-237; Theos Bernard, *Hindu Philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1999: 74–76).

[129]देखें Jan Gonda, "The Indian Mantra," *Oriens*, vol. 16, no. 1, 1963: 244-297; Julius Lipner, *Hindus: Their Religious Beliefs and Practices*, London: Routledge, 2010: 66-67; James Lochtefeld, "Om," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group, 2002: 482.

[130]Guy L. Beck, *Sonic Theology: Hinduism and Sacred Sound*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1995: 42-48.

[131]5.32.

[132]Arthur Berriedale Keith, *Rigveda Brahmanas: The Aitreya and Kauṣītaki Brāhmaṇas of the Rigveda*, London: Harvard University Press, 1920: 256.

[133]3.62.10.

[134]Hajime Nakamura, *A History of Early Vedānta Philosophy*, Part 2, Delhi: Motilal Banarsidass, 1983: 318.

[135]Annette Wilke and Oliver Moebus. 2011. *Sound and Communication: An Aesthetic Cultural History of Sanskrit Hinduism*, Berlin: De Gruyter, 2011: 435-456.

लेकर "ब्रह्मांड के कारण, जीवन के सार, ब्रह्मन्, आत्मन् और आत्म-ज्ञान जैसी उच्चतम अवधारणाओं के ध्यान के लिये एक उपकरण के रूप में सुझाते हैं।"[136] कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि शिव की नृत्य मुद्रा को "चेतना, ब्रह्मांड" की संपूर्णता और "ईश्वर एक व्यक्ति के भीतर और बाहर है" के संदेश के प्रतीक के रूप में ॐ का प्रतिनिधित्व माना जा सकता है।[137] इसी तरह, ॐ चिह्न को भगवान गणेश, जो सभी प्रकार की बाधाओं को दूर करते हैं, के पूर्ण भौतिक रूप में भी देखा जाता है– ऊपरी चाप उनका चेहरा, निचला चाप पेट, और ॐ के दायीं ओर का मुड़ा हुआ चाप उनकी सूंड़। इसलिये, यह प्रतीक किसी भी स्थान पर, जहां इसे प्रदर्शित किया जाता है, एक बहुत ही शुभ सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है।

स्वस्तिक, समान लंबाई की चार भुजाओं वाला योग चिह्न, प्रत्येक भुजा के सिरे समकोण पर मुड़े हुए, भारतीय धार्मिक परंपरा में देवत्व और आध्यात्मिकता का प्रतीक है और भारतीयों द्वारा भलाई, सौभाग्य, और समृद्धि के प्रतीक के रूप में उपयोग किया जाता है। स्वस्तिक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत में हुई है [*सु* (अच्छा)+*अस्ति* (होना)+निजर्थक प्रत्यय *क*] जहां इसका अर्थ *कल्याणकरी* है। हिंदू धर्म में, दक्षिणावर्त स्वस्तिक (卐), जैसा कि सुरखानी शिलालेखों में दिया गया है, सूर्य की गति को दर्शाता है। यह ब्रह्मांड के सर्वोच्च सिद्धांत की जीवंत भूमिका का प्रतीक है। यह दुनिया के निर्माण में ब्रह्मांड के सिद्धांत की सक्रियता का प्रतिनिधित्व करता है।[138] सिंधु-सरस्वती सभ्यता के आरम्भिक काल (लगभग ३,००० ईसा पूर्व) में मुहरों पर "परिपक्व और ज्यामितीय रूप से क्रमबद्ध" स्वस्तिक के पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं।[139]

पंचविन्यसी स्वरूप[140] में स्थापित पांच हिंदू देवता, शिव, विष्णु, सूर्य, देवी (दुर्गा/पार्वती), और एक इष्ट देवता (चुने हुए देवता) जैसे गणेश या भक्त की पसंद के कोई भी व्यक्तिगत देवता पंचायतन हैं।[141] यद्यपि स्मार्त[142] अपने व्यक्तिगत प्राथमिक देवता के रूप में

---

[136]Paul Deussen, *Sixty Upanishads of the Veda*, tr. V.M. Bedekar and G.B. Palsule, vol. 1, Delhi: Motilal Banarsidass 1980: 67-85, 227, 284, 308, 318, 361-366, 468, 600-601, 667, 772; F. Max Müller (trans.), *The Upanishads*, vol. I, Oxford: Claredon Press, 1879: 1-21.

[137]Joseph Campbell, *The Hero with a Thousand Faces*, New York: Pantheon Books, 1948: 108f.

[138]देखें René Guénon, *Symbols of Sacred Science*, tr. H.D. and S.D. Fohr, Hillsdale, NY: Sophia Perennis, 2004: 64–67, 113–117.

[139]Jonathan H.X.Lee and Kathleen M. Nadeau (eds.), *Encyclopedia of Asian American Folklore and Folklife,* Santa Barbara, CA: ABL-CLIO, 2010: 87; Janice Friedman, "Researchers find the Swastika predates the Indus Valley Civilization," *Ancient Code,* 2016. (https://www.ancient-code.com/researchers-find-the-swastika-predates-indus-valley-civilization/).

[140]आम तौर पर, हिंदू मंदिर पश्चिम-पूर्व अक्ष के साथ बनाए जाते हैं। तो चार सहायक मंदिर उत्तर-पूर्व, दक्षिण-पूर्व, दक्षिण-पश्चिम, उत्तर-पश्चिम अर्थात् पंचक (*क्विनकंक्स*) स्वरूप में होंगे।

[141]देखें James C. Harle, *The Art and Architecture of the Indian Subcontinent,* New Haven: Yale University Press 1994: 140-142, 191, 201-203; Gavin Flood, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996: 17; Diana L. Eck *Darśan: Seeing the Divine Image in India,* New York: Columbia University Press 1998: 49.

[142]स्मार्त परंपरा हिंदू धर्म में एक आंदोलन है जो चार दार्शनिक धाराओं अर्थात् मीमांसा, अद्वैत, योग, और आस्तिक के हिंदू संश्लेषण को दर्शाता है (Murray Milner, *Status and Sacredneess: A General Theory of Status*

इनमें से किसी को भी चुन सकते हैं, फिर भी इन सभी देवताओं को आनुष्ठानिक रूप से सम्मानित किया जाता है क्योंकि वे सभी ईश्वरीय अभिव्यक्ति माने जाते हैं। कभी-कभी इष्ट देवता मंडल में छठे देवता होते हैं।[143] यद्यपि पंचायतन पूजा के लोकप्रिय होने का श्रेय आठवीं शताब्दी ईस्वी में शंकराचार्य को दिया जाता है, जब यह प्रथा काफी लोकप्रिय हुई, पुरातात्विक साक्ष्य बताते हैं कि यह प्रथा शंकराचार्य से बहुत पहले की है। उदाहरण के लिये, कई पंचायतन मंडलों और मंदिरों को अनावृत किया गया है जो गुप्त काल (लगभग ३१९-५४० ई.) से हैं। ऐसे ही अजमेर (राजस्थान) के पास एक गांव में स्थापित एक पंचायतन को कुषाण काल (पूर्व ३०० ई.) से संबंधित माना गया है।[144] दार्शनिक रूप से, स्मार्त परंपरा इस बात पर जोर देती है कि सभी मूर्तियाँ सगुण ब्रह्मन् (अर्थात्, एक व्यक्तिगत भगवान जो साकार है) के प्रतीक हैं, जो निर्गुण ब्रह्मन् (अर्थात्, एक व्यक्तिगत भगवान जो निराकार है) नामक अमूर्त परम वास्तविकता को प्रत्यक्ष करने का एक साधन है। स्मार्तों द्वारा पांच या छह प्रतीकों को अलग-अलग प्राणियों के बजाय एक सगुण ब्रह्मन् के कई प्रतिनिधियों के रूप में देखा जाता है। इस पद्धति में अंतिम लक्ष्य प्रतीकों के उपयोग से गुजरते हुए पारगमन करना है, फिर आत्मन् और ब्रह्मन् की एकता को, "वही है तू" के रूप में समझने के लिये एक दार्शनिक और ध्यानपूर्ण मार्ग का अनुसरण करना है। स्मार्त परिवारों द्वारा पालन की जाने वाली परंपरा के आधार पर, इनमें एक देवता को केंद्र में और अन्य चार को उसके चारों ओर एक वर्ग के कोनों में रखा जाता है। या तो प्रतिष्ठित मूर्ति(यों) या मूर्तिविहीन प्रतिनिधि(यों) या प्रत्येक देवता के लिये एक संयोजन का उपयोग किया जाता है।[145] पाँचों को पाँच प्रकार के पत्थरों के रूप में दर्शाया जा सकता है या फर्श पर सिर्फ पाँच निशान खींचे जाते हैं, जिन्हें *पंचायतन पूजा कुलक* कहा जाता है। इस व्यवस्था का प्रतिनिधित्व भारत में पाए जाने वाले स्मार्त पंचायतन मंदिरों में भी किया जाता है, जिसमें एक केंद्रीय मंदिर और एक वर्ग के कोनों पर चार छोटे मंदिर होते हैं। पंचायतन पूजा मुख्य रूप से

Relations and an Analyiis of Indian Culture, New York: Oxford University Press, 1994: 194-195)। यह आस्तिक संप्रदायवाद को खारिज करता है और पांच देवताओं, जिन्हें यह समान मानता है, की घरेलू पूजा के लिये उल्लेखनीय है। स्मार्त परंपरा पुरानी श्रौत परंपरा के विपरीत थी जो विस्तृत अनुष्ठानों और संस्कारों पर आधारित थी (Gavin Flood, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996: 113; David M. Knipe, *Vedic Voices: Intimate Narratives of a Living Andhra Tradition,* Oxford: Oxford University Press, 2015: 36-37)।

[143]Gudrun Bühnemann, *Maṇḍalas and Yantras in the Hindu Tradition,* Leiden: Brill Academic, 2003: 60.

[144]Frederic Asher, "Pañcāyatana Liṅgas: Sources and Meaning," in Joanna Gottfried Williams (ed.), *Kalādarśana: American Studies in the Art of India,* Leiden: E.J. Brill, 1981: 1–5.

[145]Bühnemann, पूर्व उद्धृत, 60।

हिंदू धर्म के भीतर एक परंपरा रही है। लेकिन, सिख धर्म के गुरु ग्रंथ साहिब का सम्मान करने वाले उदासी पंचायतन देवताओं की भी पूजा करते हैं।[146]

शिव एक अखिल हिंदू देवता हैं, जिन्हें ब्रह्मा और विष्णु के साथ, हिंदू धर्म की पवित्र त्रिमूर्ति का सदस्य माना जाता है। शैव परंपरा में, उन्हें उन सर्वोच्च देवों में एक के रूप में देखा जाता है जो ब्रह्मांड की रचना, रक्षा, और परिवर्तन करते हैं।[147] उनके सामान्य विशेषणों में शंभु (सौम्य), शंकर (परोपकारी), महेश (महान स्वामी), त्रिलोकीनाथ (तीन लोकों के स्वामी), महादेव (महान भगवान), नटराज (ब्रह्मांडीय नर्तक), पशुपति (जानवरों के अधिपति), भैरव (भयावह), गंगाधारा (गंगा नदी के वाहक), नीलकंठ (नीले गले वाले),[148] शंकर (परोपकारी), शंभु (स्व-चमकदार) और अर्धनारीश्वर (आधा पुरुष और आधा-महिला भगवान) हैं।[149]

---

[146]Pashaura Singh and Louis E. Fenech, *The Oxford Handbook of Sikh Studies*, Oxford: Oxford University Press, 2014: 376; James Lochtefeld, "Asceticism," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: A-M, vol. 1, New York: The Rosen Publishing Group: 60-61; "Panchayatana," पूर्वोक्त, 494.

[147]Arvind Sharma, *Classical Hindu Thought: An Introduction,* Oxford University Press, 2000: 65.

[148]समुद्र मंथन से उत्पन्न हलाहल विष को पीकर उसकी विनाशकारी क्षमता को समाप्त करने के लिये शिव को यह उपाधि मिली। उनके कृत्य से हैरान उनकी पत्नी पार्वती ने उनकी गर्दन को दबाया और विष को गले में ही रोक लिया, जहर इस हद तक शक्तिशाली था कि उसने उनकी गर्दन का रंग बदलकर नीला कर दिया (Ram Karan Sharma, *Śivasahasranāmāṣṭakam: Eight Collections of Hymns Containing One Thousand and Eight Names of Śiva*, Delhi: Nag Publishers, 1996: 290; Gavin Flood, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996: 78)।

[149]एक शरीर में खुद का और उनकी पत्नी का उभयलिंगी मिलन।

आकृति संख्या ५– एक गणेश-केंद्रित पंचायतन– गणेश (बीच में) के साथ शिव (ऊपर बाएं), पार्वती (ऊपर दाएं), विष्णु (नीचे बाएं) और सूर्य (नीचे दाएं) (https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Ganesha_pachayatana.jpg)। १६ जनवरी २०१७ को एक्सेस किया गया।

शिव को अक्सर नाग को माला के रूप में पहने हुए दिखाया जाता है।[150] मवेशियों के साथ उनका संबंध उनके पशुपति नाम से परिलक्षित होता है।[151] कभी-कभी वह अपने वाहन नंदी की सवारी भी करते हैं, एक चांदी का धनुष (पिनाक) रखते हैं, उनके साथ में एक मृग होता है, और वे बाघ या हाथी की खाल पहनते हैं, जो एक शिकारी के रूप में उनकी प्रसिद्ध निपुणता का प्रतीक है।[152] वह आम तौर पर एक त्रिशूल रखते हैं जो शिव के "निर्माता, संरक्षक, और विध्वंसक" के तीन पहलुओं का प्रतिनिधित्व करता है या वैकल्पिक रूप से यह "सत्त्व, रजस्, और तमस्" के तीन गुणों के संतुलन का प्रतिनिधित्व करता है।"[153] महाकाल के रूप में, वह ब्रह्मांड को नष्ट करने के लिये चतुर्युग के अंत में तांडव (मृत्यु का ब्रह्मांडीय नृत्य) करते हैं।[154] रेतघड़ी जैसा एक छोटा डमरू, नटराज के रूप में उनके प्रसिद्ध नृत्यरत प्रतिनिधित्व में शिव की विशेषताओं में एक है।[155] इसी तरह, भैरव के रूप में वह राक्षसों के वध से जुड़े हैं। इसकी तुलना में, शंकर और शंभु के रूप में वह अपने सबसे सौम्य रूप में कार्य करते हैं।[156] वह महान तपस्वी भी हैं, जो सभी प्रकार के भोग और आनंद से दूर रहते हैं, पूर्ण सुख पाने के साधन के रूप में समाधि पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उनके परोपकारी पहलुओं में, उन्हें एक सर्वज्ञ योगी के रूप में चित्रित किया गया है, जो एक तपस्वी जीवन जीने के साथ-साथ अपनी पत्नी पार्वती के साथ एक गृहस्थ भी हैं। कहा जाता है कि दिव्य युगल, अपने पुत्रों, छः सिर वाले स्कंद[157] और हाथी के सिर वाले गणेश[158] के साथ, कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं, जिसे ब्रह्मांड का केंद्र माना

---

[150]देखें Gavin Flood, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996: 151.

[151]देखें Sitansu S. Chakravarti, *Hinduism, a Way of Life*, Delhi: Motilal Banarsidass 1991: 51; Ram Karan Sharma, *Śivasahasranāmāṣṭakam: Eight Collections of Hymns Containing One Thousand and Eight Names of Śiva*, Delhi: Nag Publishers, 1996: 291.

[152]देखें Flood, पूर्व उद्धृत, 151.

[153]देखें Chakravarti, पूर्व उद्धृत, 1991: 51; Flood, पूर्व उद्धृत, 151; Suresh Chandra, *Encyclopedia of Hindu Gods and Goddesses,* Delhi: Sarup & Sons, 1998: 309.

[154]Stella Kramrisch, *The Presence of Śiva*, Princeton, New Jersey: Princeton University Press, 1985: 474.

[155]डमरू को पकड़ने के लिये एक विशिष्ट मुद्रा जिसे *डमरू-हस्त* कहा जाता है। डमरू विशेष रूप से कापालिक संप्रदाय का एक चिह्न है (Jansen 1993: 25, 44; Vaman Shivram Apte, *The Practical Sanskrit Dictionary*, 4th rev. edn, Delhi: Motilal Banarsidass Publishers, 1965: 461).

[156]देखें Apte, पूर्व उद्धृत, 727; Ram Karan Sharma, *Śivasahasranāmāṣṭakam: Eight Collections of Hymns Containing One Thousand and Eight Names of Śiva*, Delhi: Nag Publishers, 1996: 306; Stella Kramrisch, *The Presence of Śiva*, Princeton, New Jersey: Princeton University Press, 1985: 474-76; Mahadev Chakravarti, *The Concept of Rudra-Śiva Through the Ages*, 2nd rev. edn, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986: 171.

[157]उन्हें कार्त्तिकेय (कृत्तिकाओं का पुत्र) भी कहा जाता है, जिन्होंने अपनी छ: धानियों का दूध पीने के लिये अपने छह चेहरे विकसित किये थे।

[158]गणेश के जन्म के संबंध में विभिन्न मिथक मौजूद हैं। एक के अनुसार, पार्वती ने उन्हें कपड़े के एक टुकड़े से बनाया और फिर शिव से उसमें प्राण डालने को कहा। एक अन्य किंवदंती के अनुसार, जब शिव अपने ध्यानस्थ भ्रमण में व्यस्त होते थे, तब पार्वती ने अपने अकेलेपन को दूर करने और रक्षा के लिये उन्हें मिट्टी से बनाया था। हालांकि, सबसे लोकप्रिय मिथकों में एक के अनुसार, पार्वती की इच्छा थी कि जब वह स्नान कर रही हों तो कोई उनके स्नानघर की

जाता है। शिव को योग, ध्यान, और कला के संरक्षक देवता आदियोगी के रूप में भी जाना जाता है।[159] सबसे बढ़कर, उनकी पूजा लिंगम्– प्रजनन क्षमता या दैवीय ऊर्जा के प्रतीक– के रूप में की जाती है।[160]

शिव को आमतौर पर चित्र और मूर्तिकला में उनके उलझे हुए बालों के लच्छे (जटामकुट) में, अर्धचंद्र[161] और गंगा से सुशोभित रूप में चित्रित किया जाता है।[162] शिव की विशिष्ट बाल शैली है, जिसके कारण उन्हें जटिन् (उलझे हुए बालों वाले) और कपर्दिन् (उलझे हुए बालों से संपन्न) के रूप में जाना जाता है, जो अपने बालों को एक कपर्द (खोल) की तरह पहनते हैं।[163] उनके दाहिने हाथ में आमतौर पर रुद्राक्ष से बनी हुई माला होती है जो अनुग्रह, संन्यासी जीवन, और ध्यान की प्रतीक है।[164] प्रतिमाओं में, शिव के शरीर को भस्म/विभूति से

रखवाली करे। जब वह नहा रही थीं, उन्होंने अपने शरीर की मैल को एक बच्चे के आकार में गूंथ लिया, जो जीवित हो गया। जब अकस्मात् शिव घर लौटे और उस लड़के द्वारा पार्वती का पुत्र होने का दावा करने के हठ पर क्रोधित होकर, शिव ने अपने भूतगणों को ढीठ युवक को दंडित करने का आदेश दिया। हालाँकि भूतगण लड़के के साथ उग्र रूप से लड़े, युवा व्यक्ति ने ऐसे भयानक प्रतिद्वंद्वियों को आसानी से पछाड़ दिया। परिणामस्वरूप, विष्णु को माया के रूप में हस्तक्षेप करने पर बाध्य होना पड़ा और जब लड़का उसकी सुंदरता से विचलित हो गया, तो भूतगणों, या स्वयं शिव ने, उसके सिर को काट दिया। शोर सुनकर पार्वती बाथरूम से बाहर निकलीं और चिल्लाई कि उसके बेटे की हत्या कर दी गई है। अपनी गलती का एहसास करते हुए, शिव ने तुरंत एक नया सिर लाए जाने का आदेश दिया। लेकिन, उपलब्ध निकटतम सिर हाथी का था। जब शिव हाथी के सिर को काटते हैं, तो उनमें से एक दांत चकनाचूर हो जाता है, और इसीलिये गणेश को अपने हाथ में टूटे हुए दांत को पकड़े हुए दिखाया जाता है। फलस्वरूप, गणेश हाथी के सिर वाले देवता बन गए। अन्य कहानियों में एक कहती है कि गणेश की रचना सीधे शिव की हँसी से हुई थी। चूँकि शिव ने उन्हें अत्यंत आकर्षक पाया, उन्होंने उन्हें एक हाथी का सिर और एक तोंद दे दी (देखें Robert Brown, *Ganesh: Studies of an Asian God*, Albany, NY: SUNY Press, 1991: 77). मिथक के इस संस्करण के अनुसार, गणेश अकेले पार्वती की संतान हैं, हालांकि परंपरागत रूप से, उन्हें शिव और पार्वती दोनों की संतान माना जाता है।

[159] Flood, पूर्व उद्धृत, 151.

[160]देखें पूर्वोक्त; Ram Karan Sharma, *Śivasahasranāmāṣṭakam: Eight Collections of Hymns Containing One Thousand and Eight Names of Śiva*, Delhi: Nag Publishers, 1996: 281.

[161]संकेतपद चंद्रशेखर ("चंद्रमा को अपने शिखा के रूप में रखते हुए") शिव की इस विशेषता को संदर्भित करता है (देखें Kramrisch, पूर्व उद्धृत, 472; Coutright 1978; Robert Brown, *Ganesh: Studies of an Asian God*, Albany, NY: SUNY Press, 1991: 71).

[162]किंवदंती के अनुसार, वे गंगा नदी को आकाश से पृथ्वी पर ले कर आए। उन्होंने अपने बालों से बहने की इजाजत देकर आकाशगंगा के गिरने को हलका कर दिया। उन्हें *गंगाधर* कहा जाता है क्योंकि गंगा उनके उलझे हुए बालों से बहती है जहाँ कहा जाता है कि उन्होंने अपना निवास स्थान बनाया था (देखें Stella Kramrisch, *The Presence of Śiva*, Princeton, New Jersey: Princeton University Press, 1985: 473; Mahadev Chakravarti, *The Concept of Rudra-Śiva Through the Ages*, 2nd rev. edn, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986: 59; C. Sivaramamurti, *Śatarudrīya: Vibhūti of Śiva's Iconography*, Delhi: Abhinav Publications, 1976: 8)।

[114]Kramrisch, पूर्व उद्धृत, 475; Ram Karan Sharma, Śivasahasranāmāṣṭakam: Eight Collections of Hymns Containing One Thousand and Eight Names of Śiva, Delhi: Nag Publishers, 1996: 279.

[164]देखें Flood, पूर्व उद्धृत, 151; John A. Grimes, *A Concise Dictionary of Indian Philosophy: Sanskrit Terms Defined in English,* Albany, NY: SUNY Press, 1996: 257.

ढका हुआ दिखाया गया है।[165] भस्म इस अनुस्मारक की प्रतिनिधि है कि संपूर्ण भौतिक अस्तित्व अनित्य है, अंततः राख में बदल जाता है।[166] गण शिव के परिचारक हैं और कैलाश पर रहते हैं। उनके स्वभाव के कारण उन्हें अक्सर भूतगण (भूतों की सेना) के रूप में जाना जाता है। आम तौर पर सौम्य, सिवाय जब उनके स्वामी का उल्लंघन किया जाता है, वे अक्सर भगवान से सिफ़ारिश हेतु भक्त द्वारा सहायतार्थ बुलाए जाते हैं। शिव ने अपने पुत्र गणेश को उनके नेता के रूप में चुना, इसलिये उनकी उपाधि गणेश (गण+ईश) या गणपति (गणों के भगवान) है।[167]

शिव को अक्सर तीसरी आंख (*त्र्यंबकम्*) के साथ चित्रित किया जाता है जो आंतरिक दृष्टि प्रदान करती है, लेकिन बाहर की ओर ध्यान केंद्रित करने पर जलाकर राख कर सकती है। उदाहरण के लिये, उन्होंने एक बार काम (कामुकता के देवता) को अपने तीसरे नेत्र से जलाकर राख कर दिया था।[168] वह खोपड़ियों की एक माला पहनते हैं और एक हाथ में एक खोपड़ी वाला मुद्गर रखते हैं। इस खोपड़ी के कारण शिव को कापालिक (खोपड़ी-वाहक) के रूप में पहचाना जाता है और यह घटना उस समय को संदर्भित करती है जब उन्होंने ब्रह्मा के पांचवें सिर को काट दिया था। सिर उनके हाथ में तब तक लगा रहा जब तक कि वह अपने पवित्र शहर वाराणसी तक नहीं पहुंच गए। जिस जगह सिर गिरा वहां सभी पापों की शुद्धता के लिये कपाल-मोचन नामक एक मंदिर स्थापित किया गया।[169]

गणेश, जिन्हें *गणपति* (लोगों/ यजमानों के भगवान), *विघ्नेश्वर* (बाधाओं के भगवान), *विनायक* (सर्वोच्च नेता), *एकदंत* (एक-दांत वाले), *लम्बोदर* (उभरे पेट वाला), *हेरम्ब* (कमजोर के रक्षक), और *गजानन* (हाथी के चेहरे वाले) के रूप में भी जाना जाता है, हिंदू देवताओं में सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक पूजे जाने वाले देवताओं में से एक हैं। गणेश व्यापक रूप से बाधाओं के निवारक[170] के रूप में प्रतिष्ठित हैं, आदिपूज्य के देवता के रूप में, उन्हें संस्कारों और समारोहों की शुरुआत में सम्मानित किया जाता है और लेखन सत्रों के दौरान कला और विज्ञान के संरक्षक, और वाणिज्य के देवता, नई शुरुआत, सफलता, और ज्ञान के संरक्षक के रूपों में

---

[165]माथे पर प्रयुक्त विभूति या भस्म, अग्नि से जुड़े पवित्र पूजा संस्कारों से प्राप्त पवित्र राख है। अग्नि से उत्पादित होने के कारण इसे आंतरिक रूप से शुद्ध माना जाता है और यह दर्शाती है कि शरीर की उत्पत्ति धूल और राख से हुई है और यह अंततः वापस वहीं जाएगा। जब इसे माथे पर लगाया जाता है, तो यह नकारात्मकता के विनाश का भी प्रतीक है।

[166]Antonio Rigopoulos, "Vibhūti," in Knut A. Jacobsen (ed.), *Brill's Encyclopedia of Hinduism*, vol. 5, Leiden: Brill Academic, 2013: 182-183; Flood, पूर्व उद्धृत, 161.

[167]Anna L. Dallapiccola, *Dictionary of Hindu Lore and Legend*, London: Thames and Hudson, 2002.

[168]Mahadev Chakravarti, *The Concept of Rudra-Śiva Through the Ages*, 2nd rev. edn, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986: 37-39; Gavin Flood, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996: 151.

[169]John Keay, *India: A History*, New York: Grove Press, 2000: 242.

[170]उनका वाहन, बड़ा भारतीय चूहा (मूषक), गणेश की हर जगह तक पहुंच और वे जो चाहते हैं उसे पाने के लिये किसी भी चीज पर काबू पाने की क्षमता का प्रतीक है। मूषक और हाथी की तरह, गणेश विघ्नों को दूर करते है।

भी माना जाता है।[171] जैसा कि गणेश को आदिम मंत्र ॐ के साथ पहचाना जाता है, शब्द *ओंकारस्वरूप* (ॐ उनका रूप है), तो जो इस धारणा को संदर्भित करता है कि वे मौलिक ध्वनि का प्रतिनिधित्व करते हैं।[172] इस संबंध का स्पष्ट रूप से *गणपत्यथर्वशीर्ष* में उल्लेख किया गया है–

> (हे भगवान गणपति!) आप (त्रिमूर्ति) ब्रह्मा, विष्णु, और महेश हैं। आप इंद्र हैं। आप अग्नि और वायु हैं। आप सूर्य और चंद्रमा हैं। आप ब्रह्मन् हैं। आप (तीनों लोक) भूलोक, अंतरिक्षलोक, और स्वर्गलोक हैं। आप ॐ हैं। (अर्थात्, आप यह सब है)।[173]

भगवान गणेश के भक्त प्रतिमा में गणेश के शरीर के आकार और देवनागरी लिपि में ॐ के आकार के बीच समानता देखते हैं।

प्रतीकात्मक रूप से, गणेश को आम तौर पर हाथी के सिर, बड़े पेट,[174] और चार भुजाओं के साथ दिखाया जाता है। वह अपने निचले-दाएँ हाथ में अपना टूटा हुआ दाँत[175] पकड़ते हैं और अपने निचले-बाएँ हाथ में एक पकवान रखते हैं जिसे वह अपनी सूंड को बाईं ओर घुमा कर चखते हैं। मानक विन्यास में, वह आम तौर पर एक ऊपरी हाथ में एक कुल्हाड़ी और युक्त अंकुश और दूसरे ऊपरी हाथ में एक पाश (फंदा) रखते हैं।[176] लोकप्रिय रूप से, उन्हें खड़े होकर

---

[171]देखें Swami Tattvavidanananda Saraswati, *Gaṇapati Upaniṣad*, Delhi: D.K. Printworld Ltd, 2004: 80; H. Heras, *The Problem of Gaṇapati*, Delhi: Indological Book House, 1972: 58.

[172]John A. Grimes, *Gaṇapati: Song of the Self*, Albany, NY: SUNY Press,1995: 77.

[173]Swami Chinmayananda, *Glory of Ganesha*, Bombay: Central Chinmaya Mission Trust, 1987: 127.

[174]किंवदंती के अनुसार, एक दिन, बहुत अधिक मोदक (मीठे नारियल और चीनी से भरे चावल के आटे के भाप से पके पकौड़े) खाने के बाद, गणेश ने भारी भोजन को पचाने के लिये अपने विशाल चूहे पर सवारी की। लेकिन, जब चूहा एक बड़े नाग के सामने आया तो डर के मारे पीछे उछल पड़ा। फलस्वरूप, गणेश अपने वाहन से गिर गए और उनका पेट जमीन से टकरा कर फट गया। इससे मोदक चारों ओर बिखर गए। लेकिन, बेफिक्र होकर, गणेश ने सावधानी से उन सभी को इकट्ठा किया, वापस अपने पेट में भरा, और नाग को पेट के चारों ओर बांध लिया ताकि पेट बंद रहे। सभी बाधाओं को दूर करने वाले गणेश के कौशल के प्रतीक स्वरूप, नाग, जो दुर्घटना का कारण बना खुद ही उस समस्या का समाधान बन गया जो उसने पैदा की थी।

[175]एक किवदंती के अनुसार, एक बार चंद्रमा ने गणेश को अपनी कमरबंद के रूप में नाग का उपयोग करते हुए देखकर अट्टहास करते हुए उनका मजाक उड़ाया। क्रोधित होकर गणेश ने अपने दाँत का सिरा तोड़ा और हंसते हुए चंद्रमा पर फेंक दिया। एक अन्य किंवदंती कहती है कि गणेश का दांत तब टूटा जब कृष्ण ने गणेश पर कुल्हाड़ी फेंकी क्योंकि गणेश ने उनके लिये अपने माता-पिता शिव और पार्वती के निजी कक्ष में प्रवेश को अवरुद्ध कर दिया था। गणेश ने यह दिखाने के लिये कि कुल्हाड़ी, जो वास्तव में उसके पिता की थी, एक भयानक हथियार है कुल्हाड़ी को अपने दांत को तोड़ने से नहीं रोका। एक और किंवदंती कहती है कि गणेश ने महाकाव्य *महाभारत* को लिखने के लिये अपने दांत की नोक तोड़ दी जब ऋषि व्यास ने इसके लेखन हेतु उनसे संपर्क किया ताकि इसे हमेशा के लिये संरक्षित किया जा सके। किंवदंती के इस संस्करण में विद्वानों और लेखकों के साथ गणेश के घनिष्ठ संबंध की भी व्याख्या की गई है।

[176]Robert Brown, *Ganesh: Studies of an Asian God*, Albany, NY: SUNY Press, 1991: 176.

नाचते हुए, राक्षसों के खिलाफ वीरतापूर्वक लड़ते हुए, अपने परिवार के साथ एक लड़के के रूप में खेलते हुए, या बैठे हुए चित्रित किया गया है।

पार्वती[177] दिव्य शक्ति, उर्वरता, प्रेम, सौंदर्य, सद्भाव, विवाह, संतान, और भक्ति की देवी हैं।[178] उमा, गौरी, दुर्गा, सती, ज्वाला, काली, तारा, और देवी जैसे कई अन्य नामों से जानी जाने वाली, वे सर्वोच्च हिंदू देवी आदि-पराशक्ति का कोमल और पोषण करने वाला रूप हैं और देवी-आधारित शाक्त परंपरा के केंद्रीय देवताओं में एक है। वे कई विशेषताओं और पहलुओं वाली देवी माँ हैं। लक्ष्मी और सरस्वती के साथ, वे हिंदू देवियों का त्रिक बनाती हैं। वे शिव की मनोरंजक ऊर्जा और शक्ति हैं, और वे एक से बंधन का कारण हैं जो सभी प्राणियों को जोड़ता है और उनकी आध्यात्मिक मुक्ति का साधन है।[179]

देवी शक्ति के सौम्य पहलू में पार्वती को आमतौर पर निष्पक्ष, सुंदर, और परोपकारी के रूप में दर्शाया जाता है।[180] वह आम तौर पर एक लाल पोशाक (अक्सर साड़ी) पहनती हैं, और कभी-कभी उनके सिर पर मुकुट भी होता है। जब शिव के साथ चित्रित किया जाता है तो वे आम तौर पर दो भुजाओं के साथ दिखाई देती हैं, लेकिन अकेले होने पर उन्हें अक्सर चार भुजाओं के साथ दर्शाया जाता है। इन हाथों में त्रिशूल, दर्पण, माला, घंटी, थाली, अंकुश, गन्ने का डंठल या फूल (जैसे कमल) हो सकते हैं।[181] उनकी एक भुजा अभय मुद्रा में हो सकती है, उनका एक बच्चा, आमतौर पर गणेश, उसके घुटने पर होता है, जबकि उनका छोटा बेटा स्कंद उनकी देखरेख में उनके पास खेल रहा होता है। प्रतीकात्मक रूप से, उन्हें अक्सर सुनहरे या पीले रंग की त्वचा के साथ दिखाया जाता है, जो उन्हें पकने वाली फसल की देवी के रूप में दर्शाती है।[182]

पार्वती को ब्रह्मांड की शिव-शक्ति की एक सक्रिय प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है। वे पोषण और परोपकारी पहलुओं के साथ-साथ विनाशकारी और उग्र पहलुओं में भी व्यक्त की जाती हैं। वे प्रोत्साहन, विवेक, स्वतंत्रता, और शक्ति के साथ-साथ प्रतिरोध, सामर्थ्य, कार्रवाई, और प्रतिशोधी न्याय की आवाज हैं। यह विरोधाभास वास्तविकता के साथ तालमेल बिठाने

---

[177]विवरण के लिये ज्वाला जी की कथा पर अध्याय ३ देखें।

[178]देखें Suresh Chandra, *Encyclopedia of Hindu Gods and Goddesses,* Delhi: Sarup & Sons, 1998: 245-246; Harsha V. Dehejia, *Pārvatī: Goddess of Love*, Middletown, NJ: Mapin Publishing Pvt Ltd, 1999: 39.

[179]Stella Kramrisch, "The Indian Great Goddess," *History of Religions*, vol. 14, no. 4, 1975: 261; James D. Holt, *Religious Education in the Secondary School: An Introduction to Teaching, Learning and the World Religions,* London: Routledge, 2014: 180; Rita M. Gross, "Hindu Female Deities as a Resource for the Contemporary Rediscovery of the Goddess," *Journal of the American Academy of Religion*, vol. 46, no. 3, September, 1978.

[180]Harry Judge, "Devī," *Oxford Illustrated Encyclopedia*, Oxford: Oxford University Press, 1993: 10.

[181]Suresh Chandra, *Encyclopedia of Hindu Gods and Goddesses,* Delhi: Sarup & Sons, 1998: 245-246.

[182]A.E. Payne, *The Shaktas: An Introduction and Comparative Study*, Calcutta: YMCA Publishing House, 1933: 7, 83.

और सार्वभौमिक मां के रूप में अपनी भूमिका में परिस्थितियों की जरूरतों के अनुकूल होने की उनकी इच्छा का प्रतीक है। मानव रूप में जन्म लेकर, शिव (जो एक तपस्वी होना पसंद करते थे) से विवाह करने में दृढ़ संकल्प और अध्यवसाय दिखाते हुए, अपनी वास्तविक शक्ति और क्षमता को साकार करने के लिये, स्वयं में आदिशक्ति को जागृत करके, और साथ ही साथ त्रिमूर्ति व शेष ब्रह्मांड द्वारा पूजित देवी बन कर, पार्वती एक व्यक्ति को उसकी मानवीय शक्तियों और दोषों को अपना कर अपनी उच्चतम क्षमता को प्राप्त करके अपना सिर उठा कर जीवन जीने के लिये प्रेरित करती हैं।[183] जिस प्रकार शिव अकेले विनाश और उत्थान के अधिष्ठाता देवता हैं, उसी तरह युगल रूप में त्याग और तप की शक्ति और वैवाहिक सुख के आशीर्वाद दोनों के प्रतीक हैं। पार्वती हिंदू परंपरा द्वारा सम्मानित कई अलग-अलग गुणों की प्रतीक हैं जैसे प्रजनन क्षमता, वैवाहिक सुख, जीवनसाथी के प्रति समर्पण, तप, और शक्ति। हिंदू धर्म में गृहस्थ आदर्श और तपस्वी आदर्श के बीच बारहमासी तनाव में, पार्वती गृहस्थ आदर्श का प्रतिनिधित्व करती हैं, जब कि शिव तपस्वी आदर्श का प्रतिनिधित्व करते हैं।[184] वह पानी से लेकर पहाड़ों तक, कला से लेकर प्रेरक योद्धाओं तक, कृषि से लेकर नृत्य तक हर गतिविधि में प्रकट होती हैं। ग्रॉस (Gross) का कहना है कि पार्वती के विभिन्न पहलू इस हिंदू विश्वास को दर्शाते हैं कि नारी की उद्योगिताएं, लिंग तक सीमित न हो कर, सार्वभौमिक हैं।[185]

सर्वव्यापी विष्णु, जो पवित्र त्रिमूर्ति के एक सदस्य हैं, हिंदू धर्म के प्रमुख देवताओं में से एक हैं। वे पुरुषों के संरक्षक और संरक्षक (नारायण) हैं। वे विशेष रूप से राम, कृष्ण, और बुद्ध जैसे अवतारों के रूप में खुद के एक हिस्से (अंश) को प्रकट करने के लिये उल्लेखनीय हैं। जब भी उन्हें बुराई से लड़ने और धर्म की रक्षा करने की आवश्यकता होती है तभी वे ऐसा करते हैं और ब्रह्मांडीय सद्भाव बनाए रखते हैं। दूसरे शब्दों में, विष्णु का मुख्य कर्तव्य उनके कई रूपों और अवतारों से संबंधित लगभग सभी मिथकों में मानव जाति की रक्षा करना है। यह विशेषकर तब दिखाया गया है जब उन्होंने जलप्रलय से पहले मनु की सहायता की, और जब उन्होंने राम और कृष्ण दोनों के रूप में राक्षसों से लड़ाई की। नए सतयुग की शुरुआत के लिए वर्तमान दुनिया के अंत के समय वे अपने अंतिम अवतार में एक सफेद घोड़े की सवारी करते हुए कल्कि के रूप में प्रकट होंगे। *भगवद् गीता* से अक्सर उद्धृत अंश विष्णु के अवतारों की विशिष्ट भूमिका की व्याख्या करता है– "जब भी धार्मिकता कम हो जाती है और अधर्म बढ़ता है तो मैं खुद को प्रकट करता हूं।/ अच्छाई की सुरक्षा और बुराई के विनाश के लिये, और धर्म की स्थापना के लिये, मैं हर युग में जन्म लेता हूँ।"[186]

---

[183]देखें Ellen Goldberg, *The Lord Who is Half Woman: Ardhanārīśvara in Indian and Feminist Perspective*, Albany, NY: SUNY Press, 2002: 133-153.

[184]देखें David Kinsley, *Hindu Goddesses: Visions of the Divine Feminine in the Hindu Religious Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986: 46.

[185]देखें Gross, पूर्व उद्धृत, 269-291.

[186]4.7-8.

विष्णु के उपासकों द्वारा भक्ति के कार्य के रूप में दोहराए गए उनके १,००० नामों में वासुदेव, नारायण, और हरि हैं। हिंदू पौराणिक कथाओं में, विष्णु को गहरे नीले से काले रंग, गर्दन से लटकी हुई एक फूल-माला (वैजयंती), बालों के छल्ले के रूप में उनकी छाती पर श्रीवत्स चिह्न (❖), छाती पर कौस्तुभ रत्न, और पीले रंग के रेशमी अधोवस्त्र रूप में सज्जा दिखाया गया है। मंदिर की मूर्तियों में, वे ज्यादातर चार भुजाओं के साथ दिखाई देते हैं– ऊपरी-बाएँ हाथ में पांचजन्य शंख, निचले-बाएँ हाथ में कमल का फूल, ऊपरी-दाएँ हाथ में सुदर्शन चक्र, और निचले-दाएँ हाथ में कौमोदकी गदा। विष्णु के धनुष और तलवार को क्रमशः शारंग और नंदक के नाम से जाना जाता है। विष्णु का वाहन गरुड़ है और उनके स्वर्ग को वैकुंठ के नाम से जाना जाता है। विष्णु को एक पारंपरिक चित्रण में उनकी पत्नी लक्ष्मी के साथ शेषनाग की कुंडलियों पर लेटे हुए "ब्रह्मांड को सपने के द्वारा वास्तविकता में बदलते हुए" दिखाया गया है।[187]

हिंदू धर्म की चिरस्थायी पौराणिक कथाओं में एक विष्णु का वह शक्तिशाली कार्य है जिसे *त्रिविक्रम* कहा जाता है जो उनके प्रसिद्ध तीन डगों[188] को संदर्भित करता है। त्रिविक्रम, उनके अद्‌भुत बुद्धिसंपन्न प्रयास और बलिदान का वह उदाहरण है जिसके द्वारा विशिष्ट शक्तियों को बनाया और हासिल कर उस बुराई को हराया गया जो असुरों द्वारा तीनों लोकों को हड़प लिये जाने के बाद उत्पन्न हुई थी। इस प्रकार उन्हें नश्वर और अमर (देवों) दोनों के उद्धारकर्ता के रूप में देखा जाता है।[189] वास्तव में, कुछ कथाओं में, विष्णु की श्रेष्ठ स्थिति का वर्णन करने के लिये, ब्रह्मा को विष्णु की नाभि से उगे कमल के फूल से पैदा होते दिखाया गया है।

सूर्य, जिन्हें आदित्य के रूप में भी जाना जाता है और स्मार्त परंपरा के अनुसार, जो उन पंचायतन में एक हैं जिनके द्वारा ब्रह्मन् को प्राप्त किया जा सकता है।[190] वे पूरे ब्रह्मांड को प्रकाश और जीवन प्रदान करते हैं। भोर में *गायत्री मंत्र* के दैनिक पाठ के माध्यम से अधिकांश हिंदुओं द्वारा सूर्य का आह्वान किया जाता है। अपनी निर्निमेष सर्वदर्शी आंख के कारण, उन्हें न्याय के कठोर प्रत्याभूतिदाता के रूप में देखा जाता है। प्रकाश के हमेशा प्रबोधन और ज्ञान से जुड़ा होने

---

[187]देखें Fred S. Kleiner, *Gardner's Art Through the Ages: Non-Western Perspectives*, Belmont, CA: Wadsworth, 2007: 22.

[188]दुनिया के नियंत्रण के लिये देवों और असुरों के बीच लड़ाई में देव हार रहे थे। देवता विष्णु के पास पहुंचे और उन्हें अपने ध्यान को बाधित करने और असुरों के नेता बलि का सामना करने के लिये मनाने में कामयाब रहे। ऐसा उन्होंने वामन नामक एक बौने ब्राह्मण के रूप में किया था। विष्णु ने असुरों से एक समझौता किया कि यदि वे लड़ना बंद कर देते हैं, तो देवता वामन के तीन चरणों से ढके क्षेत्र के एक छोटे से टुकड़े को स्वीकार कर लेंगे और असुर शेष ब्रह्मांड को रख सकते हैं। बौने के नन्हे-नन्हे पैरों को देखकर, बलि तुरंत सहमत हो गया। अपने पहले कदम के साथ उन्होंने पृथ्वी को घेर लिया, दूसरे से वायु, और तीसरे से पूरे ब्रह्मांड को। पहले दो नश्वर लोगों को दिखाई देते हैं लेकिन तीसरा अमर का क्षेत्र है। इससे बेचारे असुरों के लिये कुछ नहीं बचा। इस कारण से, विष्णु को *त्रिविक्रम* भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है 'तीन चरणों का'। कहानी सूर्य की तीन गतियों का भी प्रतिनिधित्व करती है, अर्थात उदय, शिरोबिन्दु, और अस्त।

[189]Klaus K. Klostermaier, *Hinduism: A Short History*, London: Oneworld Publications, 2000: 84-85.

[190]Flood, पूर्व उद्धृत, 13.

के कारण, उन्हें ज्ञान का स्रोत भी माना जाता है। दूसरे शब्दों में, सूर्य को समस्त जीवन के स्रोत के रूप में देखा जाता है। प्रतीकात्मक रूप से, सूर्य को अक्सर सात घोड़ों या सात सिर वाले एक घोड़े के रथ की सवारी करते हुए दिखाया जाता है, जो उनके द्वारा उत्सर्जित दृश्य प्रकाश के सात रंगों का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अलावा, सूर्य को एक मुकुट पहने और कभी-कभी दो और अक्सर चार हाथों के साथ, दो हाथों में फूल, तीसरे में एक दण्ड, और चौथे में लेखन उपकरण कुण्डी (ताड़-पत्र और कलम जो ज्ञान का प्रतीक है) धारण किये दिखाया जाता है। उनका सारथी लाल अरुण है जो उषाकाल का अवतार है। अँधेरे को दूर करने के लिये विशेष रूप से उनके बगल में तीर चलाने वाली देवियों उषा और प्रत्युषा होती हैं। सूर्य के प्रतिमाविहीन प्रतीकों में स्वस्तिक और वलय-प्रस्तर शामिल हैं।[191]

सूर्य मनु (मानव जाति के पूर्वज), अश्विन (देवताओं के जुड़वां चिकित्सक), सुग्रीव (*रामायण* के वानर-राजा), कर्ण (*महाभारत* के महान योद्धा), और यम (मृत्यु के देवता) सहित कई उल्लेखनीय पुत्रों के पौराणिक पिता हैं। पुराणों में उल्लेख है कि देवताओं के हथियार सूर्य से काटे गए टुकड़ों से बनाए गए थे, जिनकी पूरी रोशनी इतनी तेज थी कि उन्हें सहन नहीं किया जा सकता था। राजाओं ने सूर्य की शक्ति से शासन किया और उनसे वंश का दावा किया। विभिन्न सौर देवता, जो सूर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं, संप्रभु और सर्वदर्शी हैं। सूर्य अक्सर सर्वोच्च देवता का एक प्रमुख गुण है या उससे उसकी खुद की पहचान की जाती है। सूर्य को कई वैकल्पिक नामों और विशेषणों से जाना जाता है जिनमें *विवस्वत्* (शानदार), *सवित* (पोषक), *भास्कर* (प्रकाश-निर्माता), *दिनकर* (दिन-निर्माता), *लोकचक्षु:* (विश्व की आंख), *गृहराजा* (नक्षत्रों के राजा), और *सहस्त्रकिरण* (हजार किरणों वाला) शामिल हैं। यह दुनिया सूर्य से ही जीवन प्राप्त करती है। वह “जीवन-श्वास और प्राण-शक्ति” का दाता है।[192]

---

[191]देखें Heather Elgood, *Hinduism and the Religious Arts,* London: Bloomsbury Academic, 2000: 80-81; Roshen Dalal, *Hinduism: An Alphabetical Guide*, Delhi: Penguin Books India, 2010: 399-401.

[192] *ऋग्वेद*.१०,१२१.

अध्याय ५
अखंड-अग्नि मंदिर

बाकू का अखंड-अग्नि मंदिर, जिसे स्थानीय तौर पर बाकू *आतशगाह*[193] (फ़ारसी: آتشگاه) अर्थात '*अग्निगृह*' के रूप में जाना जाता है, एक महल जैसा मंदिर है जो समुद्र तल से बारह मीटर की ऊँचाई पर सुरखानी[194] (तात भाषा '*लाल/गर्म घर*') में 40°24′55″N 50°00′3″E पर स्थित है जो अब्शेरॉन प्रायद्वीप (Absheron Peninsula) में बृहद् बाकू का एक उपनगर है। अब्शेरॉन प्रायद्वीप प्राकृतिक गैस के लिये प्रसिद्ध है यहाँ ज़मीन से निकलती आग की लपटें हमेशा जलती रहती हैं, जैसा कि यानार दाग़ में चट्टान से निकलने वाले प्राकृतिक हाइड्रोकार्बन वाष्पों से उद्भव हुई अखंड आग।[195] इस मंदिर सहित, अबशेरोन प्रायद्वीप में कई जगहों पर प्राकृतिक गैस से सम्बंधित अग्नि के पूर्व-ऐतिहासिक अनुष्ठान बताए जाते हैं। इस मंदिर में मिले तेईस शिलालेखों में से अधिकांश में विशेष रूप से उल्लेख है कि यह मंदिर ज्वाला जी का है, जो अखंड अग्नि की हिंदू देवी हैं।[196]

---

[193]फारसी में *आतश* (آتش) शब्द का अर्थ *आग* और *गाह* (گاه), जैसे पालि में *गह* और संस्कृत में गृह, का अर्थ है *घर*। इस प्रकार, *आतशगाह* का अर्थ है *अग्निगृह।*

[194]سرخ (सोरख/सुरख = लाल/गर्म)+انی (आनी = घर) = लाल/गर्म घर। या फिर سرخ (सोरख/सुरख)+ ان (प्रत्यय जो किसी स्थान को संदर्भित करता है) = लाल/गर्म स्थान। या शायद سراخ (सुराख = छेद))+ انی (खानी = स्रोत/फव्वारा)= जलते हुए छेदनुमा फव्वारे (देखें Alakbarov Farid, "Azerbaijan- Land of Fire: Observations from the Ancients," *Azerbaijan International*, Summer, 11.2, 2003. (http://www.azeri.org/Azeri/az_latin/manuscripts/land_of_fire/english/112_observations_farid.html)। २७ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया)। *सुरखानी* संस्कृत का एक शब्द भी प्रतीत होता है और इसलिये *सुरखानी* [*सुर* (देवता)+*खानी* (स्त्रीलिंग)] = देवताओं का निवास।

[195]पुरातात्विक खोजों से संकेत मिलता है कि बसने वाले पहले मानव ऊपरी पुरापाषाण युग (Upper Palaeolithic Era) अर्थात लगभग २०,००० बीपी (BP वर्तमान से पहले) के आसपास अब्शेरॉन प्रायद्वीप में पहुंचे। यद्यपि मंदिर की वर्तमान संरचना मध्ययुगीन काल के दौरान बनाई गई थी, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह पहले की संरचना पर खड़ा है और अग्नि उपासक प्राचीन काल से यहां आग की पूजा कर रहे हैं। जब *दाशराज़ युद्ध* (Battle of the Ten Kings) के पश्चात, अग्नि-पूजक आर्यों ने इस जगह को अपना लिया और बाद में यहाँ पर महाज्वाला जी के मंदिर स्थापना की।

[196]"ज्वालामुखी दुर्गा का एक रूप है, जहाँ कहीं भी भूमिगत ज्वाला फूटती है, या जहाँ भी मिट्टी से कार्बोरेटेड हाइड्रोजन गैस के फुहारे निकलते हैं, वहाँ पूजा की जाती है" (H.H. Wilson, *Select Specimens of the Theatre of the Hindus*, vol. 2, London: Parbury, Allen, and Co, 1835: 397).
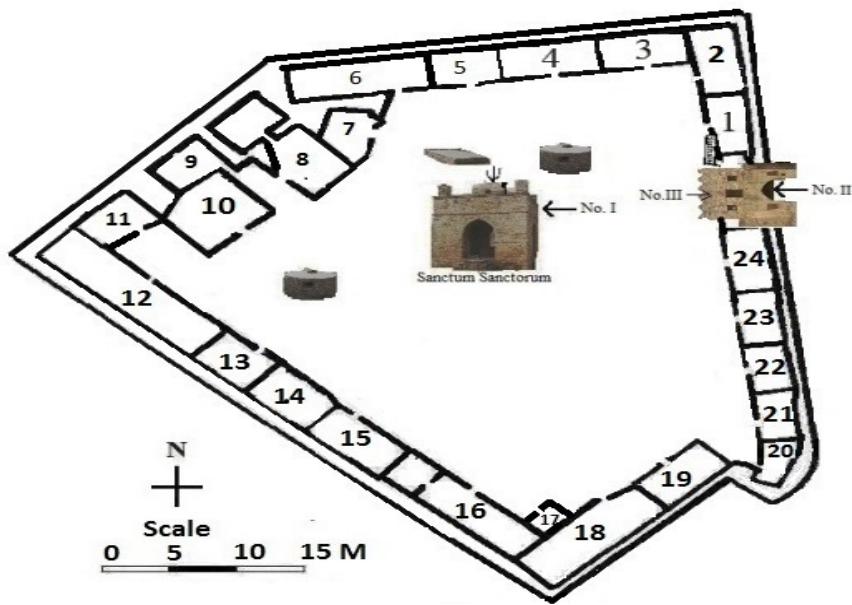
आकृति संख्या ७ – मंदिर का लेआउट

आकृति संख्या ७ – मंदिर के सामने का दृश्य

आकृति संख्या ८ – पूर्वी कोने से अंदर का दृश्य

आकृति संख्या ९ – पश्चिमी कोने से अंदर का दृश्य

शिलालेखों में उल्लिखित तिथियां संवत् १७६२ से लेकर संवत् १८७३ तक हैं, जो १७०५ ईस्वी से १८१६ ईस्वी तक की अवधि के अनुरूप हैं। इन तिथियों के साथ साथ इस आधार पर कि संरचना अपेक्षाकृत नई दिखती है, कुछ विद्वानों ने यह सुझाव दिया है कि मौजूदा मंदिर के पुनर्निर्माण की संभावित अवधि सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की है।[197] ऐसा प्रतीत होता है कि शिरवंशाह (Shirvanshah) वंश के पतन और १७२२-२३ ई. के रूसो-फ़ारसी युद्ध के परिणामस्वरूप रूसी साम्राज्य द्वारा इस क्षेत्र पर कब्जा करने के समय के आसपास मुल्तानी पृष्ठभूमि के पंजाब के बाकू-आधारित हिंदू खत्री व्यापारियों द्वारा गर्भगृह और अधिकांश कोठरियों का निर्माण किया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि मौजूदा परिसर का निर्माण पहले की संरचना पर किया गया था जो अग्नि पूजा के स्थल के रूप में कार्य कर रहा था। यह मंदिर १८८३ के बाद परित्यक्त हो गया जब स्थानीय ठगों द्वारा अंतिम भारतीय साधु की हत्या कर दी गई।[198]

---

[197]Alakbarov Farid, “Azerbaijan- Land of Fire: Observations from the Ancients,” *Azerbaijan International*, Summer, 11.2, 2003. (http://www.azeri.org/Azeri/az_latin/manuscripts/land_of_fire/english/112_observations_farid.html)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[198]स्थानीय गुंडे साधुओं को उनके सामान और उनके पास मौजूद थोड़ी सी नकदी से वंचित करने के लिये अक्सर हमला करते थे। स्थानीय रूढ़िवादी मुस्लिम मृतकों को आग में जलाने के लिये भारतीयों के प्रति काफी शत्रुतापूर्ण व्यवहार करते थे क्योंकि वे समझते थे कि मानव राख के धुएं के ऊपर जाने से वे प्रदूषित हो जाएंगे। वास्तव में, इस क्षेत्र के इस्लामीकरण के बाद, जब भी किसी शव का अंतिम संस्कार करना होता था, तो मध्य एशिया के कुछ हिस्सों में हिंदू प्रवासियों को पुलिस सुरक्षा लेनी पड़ती थी (Scott C. Levi, *Caravans: Punjabi Khatri Merchants on the Silk Road*, Gurgaon: Penguin Books India, 2015: 70)।

आकृति संख्या १० – एक भारतीय व्यापारी और एक स्थानीय व्यापारी के बीच एक व्यापार बैठक को दर्शाती एक झांकी जीवंत

ऐसा प्रतीत होता है कि अग्नि-पूजा की प्रथा को ऋग् वैदिक आर्य अब्शेरॉन प्रायद्वीप में उस समय लाए थे, जब उनकी कुछ अग्नि-पूजक जनजातियाँ इस क्षेत्र में दस राजाओं के युद्ध, जो मुख्य रूप से भूमि के लिये लड़ा गया था, के परिणामस्वरुप चली आई थीं।[199] उन्होंने सात ज्वालाओं की पूजा शुरू की और बाद में यहां एक मंदिर बनाया। तब से यह क्षेत्र सांस्कृतिक और व्यावसायिक रूप से भारत से जुड़ा हुआ है।[200] जब रेशम मार्ग कार्यात्मक हुआ, तो पंजाब

[199]देखें Shrikant Talageri, *The Rigveda, an Historical Analysis*, Delhi: Aditya Prakashan, 2000: 260; Koenraad Elst, “The Conflict between Vedic Aryans and Iranians,” *Indian Journal of History and Culture*, Chennai, Autumn 2015 (http://koenraadelst.blogspot.com/2016/01/the-conflict-between-vedic-aryans-and.html)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[200]सामान्य युग (Common Era) के आरम्भ से कई शताब्दियां पहले से प्राचीन काल में अज़रबैजान और भारत के बीच व्यापारिक संबंध मौजूद थे। माना जाता है कि अब्शेरॉन प्रायद्वीप में दफन स्थलों पर बड़ी मात्रा कौड़ियां पाई गई हैं जिन का उद्भव कांस्य युग (दूसरी सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के अंत और पहली सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के बीच) में माना जाता है। जैसा कि ज्ञात है, कौड़ी हिंद महासागर में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है और भुगतान के साधन (*मोनेटेरिया मोनेटा monetaria moneta*) के रूप में इसके उपयोग का प्रमाण शक्ति, प्रतिष्ठा, और धन के प्रतीक के रूप में दक्षिण एशिया में सुदूर अतीत से मिलता है। वस्तु विनिमय व्यापार की प्रक्रिया में, ये कौड़ियां आम मुद्रा के रूप में काम आती थीं, जिनके माध्यम से वस्तु विनिमय होता था (देखें Kamil Ibrahimov, “Indians in Azerbaijan: History and Facts,” *Visions of Azerbaijan*, September - October, 2010: 74-78; Glyn Davies, *A History of Money, from Ancient Times to the Present Day*, Cardiff: University of Wales Press, 1994).

से मुल्तान[201] के भारतीय हिंदू व्यापारियों के साथ-साथ सिंधियों[202] को आमतौर पर पूरे मध्य एशिया[203] में देखा जा सकता था, जो विभिन्न बौद्ध विहारों और हिंदू मंदिरों में रहते और पूजा करते थे। जब बाइज़ेंटाइन (Byzantine) साम्राज्य टूटा और इस्लाम का आगमन हुआ, अरब के इस्लाम-आधारित राजनीतिक अधिकारियों ने, व्यवस्थित रूप से लगभग सभी बौद्ध विहारों के साथ-साथ पारसी और हिंदू पूजा स्थलों को उनके उपासकों समेत एक अंधी गली में धकेल दिया।[204] प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के उत्तरार्ध के दौरान, जब दशा कुछ हद तक सुधरने लगी,

---

[201]कहा जाता है कि मुल्तान (मूलस्थान) को, जिसकी स्थापना हिंदू ऋषि कश्यप ने की थी, कश्यपपुर, आद्यस्थान, हंसपुर, और भागपुर जैसे विभिन्न नामों से जाना जाता था (Sanujit Ghose, *Legend of Ram: Antiquity to Janmabhumi Debate*, New Delhi: Bibliophile South Asia, 2004: 70-71)। यह प्राचीन काल में अपने प्रसिद्ध सूर्य मंदिर के लिये जाना जाता था, जो कि हेरोडोटस (चौथी शताब्दी ईसा पूर्व) जैसे यूनानी इतिहासकारों और चीनी तीर्थयात्रियों जैसे कि शुएनज़ांग (सातवीं शताब्दी ई.) द्वारा प्रशंसित हिंदू देवता सूर्य को समर्पित था। (Derryl N. MacLean, *Religion and Society in Arab Sind*, Leiden: E.J. Brill, 1989: 38-39; M.W. Pickthall and Muhammad Asad, *Islamic Culture,* vol. 43, Hyderabad: Islamic Culture Board, 1969: 14; Li Rongxi (trans.), *The Great Tang Dynasty Record of the Western Regions*, Berkeley: Numata Center for Buddhist Translation and Research, 1996: 347). जब कासिम ने ७११ ई. में सिंध पर आक्रमण किया, तो मुल्तान पहले से ही न केवल एक महत्वपूर्ण विनिर्माण केंद्र बन चुका था, बल्कि एक वाणिज्यिक उद्यम भी बन गया था। वास्तव में, मुल्तान के व्यापारी मध्य एशिया में फैले व्यापारिक संजाल के हिस्से के रूप में इस नगर को अपने प्रमुख निर्यात केंद्र के रूप में उपयोग कर रहे थे। जॉर्ज फोर्स्टर, अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ कार्यरत एक जनसेवक, १७८४ में कंधार, हेरात और दक्षिण-पश्चिमी कैस्पियन के बंदरगाह बाकू में मुल्तानी प्रवासियों (diaspora), "मुख्य रूप से मुल्तान के हिंदू व्यापारियों," के संपर्क में आया (देखें George Forster, *Journey from Bengal to England: Through the Northern Part of India, Kashmire, Afghanistan, and Persia and into Russia by the Caspian Sea*, vol. II, London: A. Faulder and Son, 1798: 103)। ठीक एक दशक बाद जब अफगानिस्तान में ब्रिटिश दूत माउंटस्टुअर्ट एलफिंस्टन (Mountstuart Elphinstone) ने काबुल का दौरा किया, तो उन्हें पता चला कि ये मुल्तानी व्यापारी पूरे अफगानिस्तान और पश्चिम में अस्त्रखान तक "बैंकरों, व्यापारियों, सुनारों, और अनाज के विक्रेताओं" के रूप में काम कर रहे थे (देखें Stephen F. Dale, *Indian Merchants and the Eurosian Trade, 1600-1750,* Cambridge: Cambridge University Press, 2002: 59)। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में बार-बार आक्रमणों से तबाह होंने तक, मुल्तान एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केंद्र बना रहा। १७३९ के नादिर शाह के कुख्यात आक्रमण के बाद, जब व्यापारियों ने शिकारपुर में स्थानांतरित होना शुरू कर दिया, इसका महत्व विशेष रूप से कम होने लगा (Scott C. Levi, *Caravans: Punjabi Khatri Merchants on the Silk Road, पूर्व उद्धृत*, 79-86; Gurcharan Das, "Introduction," *पूर्वोक्त*, ix-xxxii)।

[202]ये पंजाबी (और थोड़ी संख्या में सिंधी) व्यापारी जो पंचायतन (जिनके इष्ट देवता भगवान गणेश थे) और त्रिशक्ति पवित्र प्रतीकों की पूजा करते थे, बाबा नानक और उनके बड़े बेटे बाबा श्रीचंद, जो उदासी संप्रदाय के संस्थापक थे, के अनुयायी थे।

[203]जियाउद्दीन बरनी (१२८५-१३५८ ई) जैसे इतिहासकारों के लेखन के साथ-साथ बाकू के कई आगंतुक मध्यकाल के दौरान इस क्षेत्र में पंजाबियों और उनके कुछ कारवांसराय-सह-मंदिरों की उपस्थिति की बात करते हैं (देखें Stephen F. Dale, *Indian Merchants and the Eurosian Trade, 1600-1750,* Cambridge: Cambridge University Press, 2002: 56-57).

[204]आम तौर पर मुस्लिम बहुल देश में, गैर-मुस्लिम धिम्मियों ('संरक्षित' लोग) को मुसलमानों द्वारा निम्न धर्मों का पालन करने वालों के रूप में देखा जाता था और पूजा करने की स्वतंत्रता, यदि थी, वह केवल कारवांसराय के परिसर

हिंदू व्यापारी, जिन्होंने स्थानीय अर्थव्यवस्था में बहुत योगदान दिया, स्थानीय शासकों से कुछ कारवां सराय,[205] जिनमें भीतर का एक हिस्सा पूजा के लिये निर्धारित था, स्थापित करने की अनुमति लेने में सक्षम हुए। इस तरह की व्यवस्था के तहत, ये हिंदू व्यापारी सुरखानी में बाकू के अग्नि मंदिर और शायद एक या दो अन्य स्थानों पर,[206] अपने कारवां सराय-सह-मंदिरों का पुनर्निर्माण और कभी-कभी नवीनीकरण करने में कामयाब रहे।[207]

में ही उपलब्ध होती थी। अधिकांश इस्लामी समाजों में धिम्मियों को विशेष कपड़े पहनने के लिये मजबूर किया जाता था ताकि अधिकारियों द्वारा उन्हें आसानी से पहचाना जा सके। मलिक इब्न अनस (७११-७९५ ई) के लेख *मुवत्ता इमाम मलिक* के अनुसार, जजिया के अलावा, उन धिम्मियों पर अतिरिक्त कर लगाया गया जो व्यापार करते थे। उसके अनुसार, "अगर ... वे मुस्लिम देशों में आने-जाने से व्यापार करते हैं, तो व्यापार में निवेश किये गए धन का दसवां हिस्सा ले लिया जाता है" (पुस्तक १७, संख्या १७.२४.४६१ http://www.usc.edu/org/cmje/religious-texts/hadith/muwatta/ (१६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया))। धिम्मियों को उन मामलों में भी शिकार ही होना पड़ता था, जो उनके अपने समुदाय से भिन्न समुदाय से सम्बंधित होते थे, या फिर मृत्युदण्ड या सार्वजनिक व्यवस्था से सम्बंधित अपराध होते थे। इस प्रकार, इस्लाम में धर्मांतरण को समझने के लिये, अनिश्चितता, भय, भेदभाव, तनाव, और उन लोगों के प्रलोभन के समग्र वातावरण को ध्यान में रखा जाना चाहिए जिन्होंने वास्तव में रूपांतरण का अनुभव किया था। ऐसे माहौल में, राज्य की नीति चाहे जो भी हो, कुछ गैर-मुसलमानों ने मध्य एशिया की अरब विजय के फलस्वररूप छुट्टा छोड़ दी गई ताकतों से निपटने के लिये धर्मांतरण को एकमात्र समाधान के रूप में अवश्य महसूस किया होगा। अरब साम्राज्य के इस्लामी न्यायविदों ने यह रुख अपनाया कि केवल मुसलमान ही पूरी तरह से नैतिक हो सकते हैं और गैर-मुसलमानों को नीचा दिखाने और ताने मारने के लिये जजिया का इस्तेमाल हमेशा एक उपकरण के रूप में किया जाता था। दरअसल, ऐसा लगता है कि हिंदू साधुओं को परेशान करना गुंडों के मनोरंजन का एक लोकप्रिय साधन बन गया था। चूंकि "शक्ति और सांसारिक लाभ" स्पष्ट रूप से इस्लाम के अनुयायियों के पक्ष में थे, इसलिये धर्मांतरण के लिये हमेशा एक आहिस्ता लेकिन अटल सामाजिक और आर्थिक दबाव बना रहता था (देखें Richard W. Bulliet, *Conversion to Islam in the Medieval Period: An Essay in Quantitative History,* Cambridge: Harvard University Press, 1979: 37,138; Mary Boyce, *Zoroastrians: Their Religious Beliefs and Practices*, London: Routledge, 1979: 147).

[205]पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान, बाकू, शेमाखा, और तबरीज़ जैसे शहरों में भारतीय व्यापारियों के अपने कारवांसराय थे। मुल्ताना कारवांसेराय (كاروانسرای مولتانا, मुल्तानी कारवांसराय) ऐसा ही एक उदाहरण है। यह अभी भी बाकू के प्राचीन किले इचेरी शहर में स्थित है। यद्यपि यह नाम पंद्रहवीं शताब्दी में दिया गया प्रतीत होता है, इसे प्राचीन काल में हिंदुओं द्वारा सस्सानिद युग (Sassanid Era) के दौरान या शायद उससे भी पहले बनाया गया था। प्राचीन हिंदू संरचनाओं के अवशेषों के रूप में पुरातात्विक साक्ष्यों के अलावा, इस परिकल्पना को इस तथ्य से समर्थन मिलता है कि यह कल्पना करना मुश्किल है कि किसी भी इमारत को एक मूर्तिपूजक नाम दिया जा सकता था, जबकि इस क्षेत्र में इस्लाम का पूर्ण बोलबाला था (देखें Kamil Ibrahimov, "Indians in Azerbaijan: History and Facts," *Visions of Azerbaijan*, September - October, 2010: 74-78).

[206]A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 56.

[207]बाकू में कुछ लोगों की यह धारणा है कि बाकू के इचेरी शहर के भीतर स्थित जुमा मस्जिद, एक प्राचीन अग्नि मंदिर की जगह पर बनाई गई थी। १८७३ में बाकू की जुमा मस्जिद देखने वाले एक यात्री ने मस्जिद के बीच में चार तोरणों (arches) का वर्णन किया; उनके शीर्ष अतिव्याप्त (overlapped) नहीं थे। वे तोरण अग्नि उपासकों के प्राचीन मंदिर के थे; जिन्हें एक मुस्लिम मस्जिद में पुनर्निर्मित कर दिया गया था। इस प्रकार, मंदिर चारों तरफ से खुला था और इसके ऊपर एक गुंबद (cupola) था। बीच में एक छेद था, जहां आग लगातार जलती रहती थी।

आकृति संख्या ११– पैक-जानवरों के लिये अस्तबल का एक झांकी जीवंत

शिलालेखों में मंदिर परिसर को हमेशा ज्वाला-जी-का-मंदिर[208] कहा गया है। इसकी संरचना उस क्षेत्र के एक नियमित शहर कारवांसराय (यात्रियों की सराय) के समान है, जिसका अनियमित उत्तल पंचकोणीय[209] आकार का आंगन दीवारों से घिरा हुआ है। हालाँकि, इसके केंद्र में वेदी है, जिसके चारों ओर कोठरियां हैं, जिनका उपयोग भारतीय साधुओं द्वारा मूर्तियों को रखने के साथ-साथ तपस्या करने के लिये किया जाता था। यह एक सामान्य डेरे/अखाड़े की तरह बना हुआ है। अखाड़े में हिंदू और सिख तीर्थयात्रियों के आवास के लिये प्रवेश द्वार के ऊपर एक अतिथि कक्ष भी बनाया गया था।[210] ऐसा प्रतीत होता है कि यात्रा करने वाले व्यापारियों को अखाड़े के एक हिस्से को अपने मालवाही-जानवरों के साथ-साथ अन्य/स्थानीय व्यापारियों के साथ सौदा व लेनदेन करने के लिये उपयोग करने की अनुमति थी। विशेष रूप से, इस मंदिर की वेदी-शैली ज्वाला जी के मंदिरों जैसी है, चौकोनी, शीर्ष पर एक छोटा गुंबद और खोखला

१८८७ में जुमा मस्जिद का दौरा करने वाले एक अन्य यात्री ने इसकी तुलना सुरखानी के अग्नि मंदिर से की (देखें Kamil Ibrahimov, पूर्व उद्धृत)।

[208] *मंदिर* शब्द को अक्सर पंजाबी तरीके से (मंदर, ਮੰਦਰ) लिखा गया है।

[209]प्राचीन काल में, पंचकोण (pentagram) को कभी-कभी अच्छाई के प्रतीक के रूप में और बुराई से सुरक्षा के लिये इस्तेमाल किया जाता था और इसका सूर्य पूजा के साथ मजबूत संबंध था (देखें Éliphas Lévi, *Transcendental Magic, its Doctrine and Ritual* [*Dogme et rituel de la haute magie*], York Beach, Maine: Weiser, 1999).

[210]प्रवेश द्वार के ऊपर स्थित पारंपरिक अतिथि कक्ष को स्थानीय रूप से बालखाने (بالاخانه, अक्षरशः– *ऊपरी कक्ष*) के रूप में जाना जाता था।

किया हुआ पत्थर का एक केंद्रीय वर्गाकार गड्ढा जहां एक चट्टान से प्राकृतिक गैस दरार से निकल कर अखंड रूप से जलती हुई।

जब यह मंदिर क्रियाशील था, तब वेदी उस परिसर का केंद्रबिंदु थी जहां अग्नि अनुष्ठान किये जाते थे। वेदी-अभयारण्य अपने आप में एक चार-तरफा निर्माण है, जो सभी तरफ खुला है, और इसमें चार आयताकार स्तंभ हैं, जो तोरणों से जुड़े हुए हैं और सबसे ऊपर एक गुंबद (cupola) है। मंदिर की दीवारें सुंदरतापूर्वक मध्यम आकार के चूना पत्थर की प्लेटों से ढकी हुई हैं। वेदी के चारों ओर चौबीस कोठरियां हैं। प्रवेश कक्ष के ऊपर अतिथि चौबारा (बालखाने) है जो दो खिड़कियों वाला एक कमरा है जिसकी उत्तरी और दक्षिणी दीवारों के बीच एक दरवाजा है। आंतरिक आंगन के भीतर से बालखाने तक जाने वाली एक पत्थर की सीढ़ी है। कोठरियों में खिड़कियां नहीं हैं। कोठरियों के प्रवेश द्वार छोटे हैं और उनके तोरण तीर के आकार के हैं। लगभग हर कोठरी में, जहां भारतीय अग्नि उपासक रहते थे, बगल की दीवारों पर छोटे-छोटे चबूतरे हैं, जो सोने के लिये बनाए गए शिरानिक्षेप (ledges) प्रतीत होते हैं। कोठरी नं. १२ की अहाते की दीवार पर पत्यर के चार कड़े हैं, जो घोड़ों को बांधने के लिये बने हैं; कोठरी के अंदर विपरीत दीवार पर एक से छह छल्ले हैं और मालवाही जानवरों को खिलाने के लिये सात पत्थर की चरनियां (cribs) हैं। कोठरी नं. ६ की दीवार के भीतरी भाग यर लाल रंग में पौधे के रूपांकनों के निशान और हरे रंग में चित्रित एक छवि के निशान भी हैं। कोठरी नं. ६ की बाहरी दीवार के प्लस्टर पर लाल रंग की एक तस्वीर में छह हाथों वाली दुर्गा को एक बाघ पर खड़ा दिखाया गया है। कोठरी नं. १५ के प्लस्टर के विभिन्न स्थानों पर लाल रंग के निशान मिले हैं। वेदी के पास, उत्तर-पूर्व में, एक चौतरफा छेद है, जो अब पूरी तरह से चट्टानों से भर गया है, जहाँ पवित्र अग्नि पर शवों का अंतिम संस्कार किया जाता था। वेदी के दक्षिण-पूर्व में एक जल-कुआँ भी है, जो ऊपर तक चट्टानों से भरा हुआ है। मंदिर की बाहरी दीवार के ऊपरी हिस्से में दांतेंदार मुँडेर (parapet) है - जो भारतीय वास्तुकला की विशेषता है।

आकृति संख्या १२ – सत्रहवीं सदी के अंत में बाकू के अग्नि मंदिर में सात पवित्र अग्नियां (E. Kempfer द्वारा बनाई गई आकृति। Source: https://en.wikipedia.org/wiki/Ateshgah_of_Baku) । १६ जनवरी २०१७ को एक्सेस किया गया।

वेदी मूल रूप से परिसर के नीचे स्थित एक भूमिगत प्राकृतिक गैस क्षेत्र के शीर्ष पर स्थित थी और वहां से निकलने वाली प्राकृतिक गैस से सात[211] लपटें प्रज्वलित थीं– बड़ी वेदी-लौ, छत के कोनों पर चार छोटी लपटें, और आंगन में दो लपटें। लेकिन, सोवियत शासन के दौरान क्षेत्र में प्राकृतिक गैस के भंडार के भारी दोहन के परिणामस्वरूप १९६९ में लौ बुझ गई।[212] आज दिखाई देने वाली लपटों को बाकू से गैस पाइप द्वारा जलाया जाता है, और केवल आगंतुकों के लिये चालू किया जाता है।

---

[211]अग्नि, जो देवताओं का मुख है *(मुखम् देवानाम्)* जिसमें आहुति दी जाती है, की सात ज्वालाएँ *(सप्तार्चिर् ज्वलन:),* सात मुख, सात लाल जिह्वाएं *(सप्तजीह्वानन),* सात लाल घोड़े, और सात हथियार *(सप्तहेति)* हैं (E.W. Hopkins, *Epic Mythology*, Strassburg: Verlag von Karl J. Trübner, 1915: 97-106)। संस्कृत महाकाव्य साहित्य में सात पवित्र अग्नियों (*सप्तार्चिर ज्वलन:*) का वर्णन किया गया है, जिनमें तीन यज्ञ *(अग्नित्रेता, त्रेताग्नय:),* जिनमें पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणा, और गुरु आहवानीय के रूप में शामिल हैं और उनके साथ-साथ सभ्य, आवसथ्य, स्मार्त, और लौकिक हैं (पूर्वोक्त, 98)। विशेष रूप से, संख्या सात भारतीय परंपरा में एक विशेष पवित्र संख्या मानी जाती है। इसलिये, सप्तर्षि, सात चक्र, सात समुद्र, एक हिंदू विवाह में अग्नि के सात फेरे (*सप्तपदी*), सात स्वर *(सा रे गा मा पा धा नी)*, चाणक्य द्वारा परिभाषित सात अंगों *(सप्तांग)* का एक आदर्श राज्य, एक महापुरुष के शरीर पर सात प्रमुखताओं *(सप्त-उस्सद)* के संकेत, और बुद्ध के जन्म के समय उनके द्वारा उठाए गए सात कदम और दिलचस्प रूप से महात्मा गांधी के विश्व के सात विनाशकारी पाप जो हिंसा का कारण बनते हैं (देखें https://www.mkgandhi.org/mgnt.htm)– काम के बिना धन, विवेक के बिना सुख, चरित्र के बिना ज्ञान, नैतिकता के बिना व्यवसाय, मानवता के बिना विज्ञान, त्याग के बिना धर्म, और सिद्धांत के बिना राजनीति- सभी साक से संबद्ध हैं।

[212]१८६० के दशक तक, तेल निकालने के लिये इतनी बढ़ती माँग थी कि बाकू क्षेत्र से दुनिया के तेल के ९० प्रतिशत हिस्से की आपूर्ति होती थी (John Farndon, *DK Eyewitness Books: Oil*, Delhi: DK Publishing, 2012: 12) और इस जल्दबाजी में चिरस्थायी आग को बख्शने का विचार ही किसी के मन नहीं उठा।

प्रारंभ में, कुछ विद्वानों द्वारा यह सुझाव दिया गया था कि यह मंदिर पारसी परंपरा[213] का है जिसे ६४२ ई में फारस और उसके पड़ोसी क्षेत्रों की इस्लामी विजय के दौरान अरब लुटेरों द्वारा हमला करके नष्ट कर दिया गया था। आगे यह भी कहा गया है कि, "ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार, १७वीं शताब्दी के अंत में सुरखानी में भारतीय अग्नि मंदिर के निर्माण से पहले, स्थानीय लोग भी इस स्थल पर 'सात छेदों के साथ जलती हुई लौ' की पूजा करते थे।"[214] परिणामस्वरूप, कुछ अज़ेरी विद्वानों द्वारा यह गलत सुझाव दिया गया है कि यह समय के साथ मुख्य रूप से हिंदू पूजा स्थल में विकसित हुआ। फ्रांस के जेसुइट विलोत्त (Jesuit Villotte), जो १६८९ से अज़रबैजान में रह रहे थे और १८२० में मंदिर का दौरा करने वाले फ्रांसीसी वाणिज्य दूत जे.एफ. गाम्बा (J.F. Gamba) ने बताया कि आतशगाह को ग्यूब्रेस[215] और हिंदुओं[216] दोनों द्वारा सम्मानित किया गया था। पूरी गलतफहमी इस तथ्य से हुई प्रतीत होती है कि अधिकांश यूरोपीय और अज़ेरी विद्वानों को यह विश्वास करना मुश्किल हो गया था कि एक हिंदू अग्नि मंदिर भारत से इतनी दूर स्थित जगह पर मौजूद हो सकता था जहां एक वक़्त पारसी अग्नि उपासक प्रबल थे। इस विचारधारा का अनुसरण करते हुए, प्रमुख ब्राह्मणीय-हिंदू प्रमाणों को देखने के बाद भी, इन विद्वानों ने पारसी धर्म के संदर्भ में साक्ष्य की व्याख्या करने का प्रयास किया। इतना ही नहीं, यहां तक कि त्रिशूल की व्याख्या एक पारसी प्रतीक के रूप में की जाती थी और भारतीय हिंदू साधुओं को भारतीय पारसी के रूप में देखा जाता था। इसलिये, कोई आश्चर्य नहीं है कि ऑगस्टस मौन्से (Augustus Mounsey), जिन्होंने १९ जुलाई १८७१ को

---

[213]पारसी लोग उत्तरी भारत से एक उपनिवेश (colony) थे (देखें F. Max Müller, *Lectures on the Science of Language*, vol.1, London: Longmans, Green & Co, 1885: 246; George Erdösy, "Language, Material Culture and Ethnicity: Theorical Perspectives," in Erdösy, G. (ed.), *The Indo-Aryans of Ancient South Asia*, vol. 1, Berlin: De Gruyter, 1995: 42; M.K. Dhavalikar, "Archaeology of the Aryans," *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, vol. LXXXVII, 2006: 24)। चूंकि पारसी धर्म के धर्मविज्ञान में अस्तित्व और मन दोनों को आसन्न संस्थाओं के रूप में शामिल किया गया है, इसलिये इसे चेतना (consciousness) के साथ अपने विशेष गुण के रूप में एक आसन्न आत्म-निर्माण ब्रह्मांड में विश्वास के रूप में वर्णित किया जाता है। इस कारण से पारसी धर्म को सर्वेश्वरवादी माना जाता है जहां इसकी उत्पत्ति हिंदू धर्म से दिखाई पड़ती है। पैगंबर जोरोआस्टर खुद, हालांकि पारंपरिक रूप से छठी शताब्दी ईसा पूर्व के हैं, कई आधुनिक इतिहासकारों द्वारा माना जाता है कि वे दसवीं शताब्दी ईसा पूर्व में रहने वाले बहुदेववादी ईरानी धर्म के सुधारक थे (Patrick Karl O'Brien (ed.), *Atlas of World History*, concise edn. New York: Oxford University Press, 2002: 45)।

[214]Alakbarov Farid, "Azerbaijan- Land of Fire: Observations from the Ancients," *Azerbaijan International*, Summer, 11.2, 2003. (http://www.azeri.org/Azeri/az_latin/manuscripts/land_of_fire/english/112_observations_farid.html) । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[215]प्राचीन फारसियों के वंशज।

[216]J. Villotte, *Voyage d'une missionnaire de la Compagnie de Jésus en Turquie, en Perse, en Arménie, en Arabieet en Barbarie*, Paris: J. Vincent ,1730: 532; Jean Françoise Gamba, *Voyage dans la Russie meridionale*, vol. II, Paris: C.J. Trouvé, 1826: 299.

इस “दुनिया के सबसे प्राचीन मंदिरों में से एक”[217] का दौरा किया था, इस मंदिर के बारे में इस तरह बात करते हैं जैसे कि यह पारसी मूल का हो– “दिल्ली के एक दरवेश द्वारा संचालित इस मंदिर में... मुझे एक नीरस गीत गाकर, और प्रत्येक आग की लपट के सामने एक हाथ की घंटी बजाकर अपने धर्म के संस्कारों की, चाहे वह जो भी हों, एक झलकी पेश की गई।” [218] वह आगे कहता है कि “बारहवीं शताब्दी के अंत तक इसके लिये तीर्थयात्राएं की गईं। लेकिन अब यह किसी अस्पष्ट हिंदू अंधविश्वास में आस्था रखने वाले की देख-रेख में छोड़ दिया गया है।”[219]
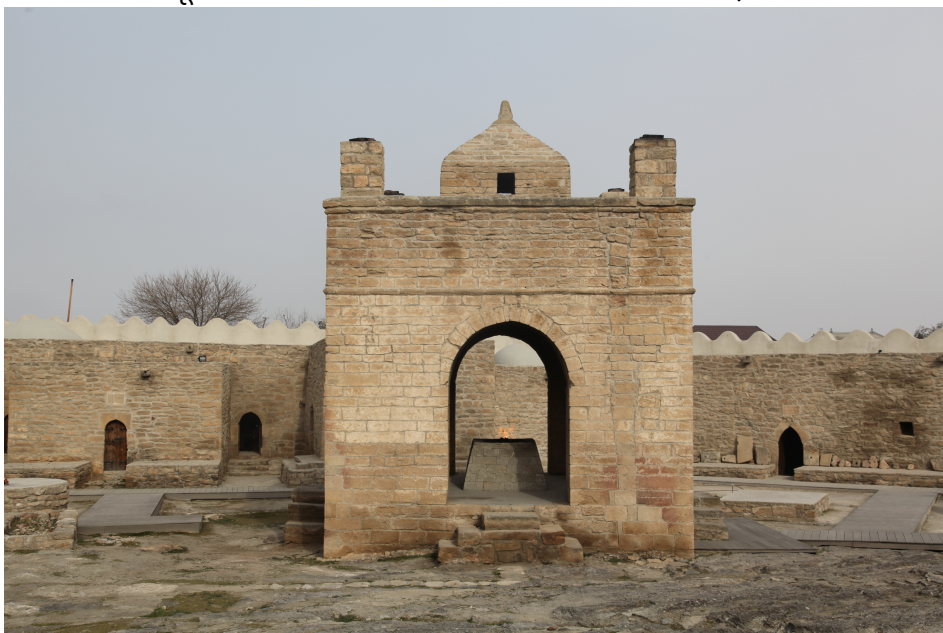
आकृति संख्या १३ – पुनर्स्थापित वेदी जिसमें उसे पारसी शैली के मंच में बदल दिया गया है और त्रिशूल को फिर से स्थापित नहीं किया गया है।

जेम्स ब्रायस (James Bryce), जिन्होंने १८७६ में कोकेशियान (Caucasian) क्षेत्र का दौरा किया, पारसी लोगों के बारे में बात करते हुए, कहते हैं कि “मुसलमानों द्वारा फारस से निकाले जाने के बाद, जो उनसे बुरी तरह नफरत करते हैं, कुछ लोग कभी-कभी तीर्थयात्रा पर यहां लुक छुपकर आ जाते हैं ... [और वह] ... ज़ार[220] के सहिष्णु शासन में, बम्बई का एक अकेला अग्नि पूजक पुजारी, जिसे पारसी समुदाय द्वारा यहाँ रखा गया है, अग्नि स्रोत के ऊपर बनाए गए छोटे से मंदिर में रहता है और पूर्ण श्रद्धा से दिन-रात पावन अग्नि की देखभाल करता

---

[217]Augustus A. Mounsey, *Journey through the Caucasus and the Interior of Persia*, London: Smith, Elder & Co, 1872: 329.

[218] *पूर्वोक्त.*

[219] *पूर्वोक्त.* 330.

[220]कहा जाता है कि १८८० के दशक में, रूस के ज़ार अलेक्जेंडर तृतीय वास्तव में बाकू में अंतिम हिंदू अनुष्ठानों में एक को देखने के लिये यहां आए थे।

है।"[221] यद्यपि इमारत की वास्तुकला की शैली भारतीय है जो भक्ति और परोपकार के कार्य के रूप में स्थापित एक हिंदू धर्मशाला के समान दिखाई पड़ती है, फिर भी कुछ विद्वानों द्वारा इसका उल्लेख पारसी संरचना के रूप में किया गया था।[222] इसी तरह, कोई आश्चर्य नहीं है कि जब जर्मनी के बैरन मैक्स थिएलमैन (Baron Max Thielmann) ने अक्टूबर १८७२ में मंदिर का दौरा किया, तो उन्होंने निवासी भारतीय साधु को बम्बई के एक पारसी पुजारी के रूप में ही देखा जिसे यहाँ पारसी समुदाय ने भेजा था।[223] हालाँकि, जिस अनुष्ठान को थिएलमैन ने देखा और संक्षेप में वर्णित किया, विशेष रूप से पूजा समापन पर "वेदी पर एक मूर्ति को दी जाने वाली मिश्री की एक मन्नत भेंट,"[224] पूरी तरह से हिंदू थी और किसी भी परिस्थिति में पारसी नहीं थी। प्रवेश-द्वार के ऊपर एक बारह छड़ का धर्मचक्र स्थापित है जिसके बाईं ओर एक घोड़ा और दाईं ओर एक सिंह है। स्पष्ट रूप से, इन विद्वानों की समझ में पक्षपात हुआ क्योंकि उनके लिये यह कल्पना करना कठिन था कि प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के इस्लामी समाज में एक नए हिंदू धार्मिक ढांचे के निर्माण के लिये भूमि के एक टुकड़े का उपयोग करने की अनुमति दी जा सकती थी। वैकल्पिक रूप से, यह सुझाव दिया गया था कि मूल रूप से यह एक बहुसंयोजक अग्नि मंदिर था जहां हिंदू और पारसी दोनों पूजा करते थे। इस तर्क के समर्थन में आगे यह भी सुझाव दिया गया है कि, अपनी बहुसंयोजी परंपरा को जारी रखते हुए, जब पहले की जगह नई संरचना का निर्माण किया गया था, तो दोनों धर्मों के वास्तुशिल्प तत्वों को, किसी एक विशेष का पूरी तरह से पालन किये बिना, इसमें शामिल किया गया था। यद्यपि अज़रबैजानी सरकार की नीतियां भी इसी प्रकर की सोच पर आधारित प्रतीत होती हैं, लेकिन एक मजबूत अंतर्धारा है जो मानती है कि मंदिर हिंदू के बजाय पारसी है। फलस्वरूप, यूनेस्को विरासत स्थिति (UNESCO Heritage Status) के लिये आवेदन जमा करने से कुछ समय पहले, वेदी के विशिष्ट हिंदू रूप को पारसी शैली के अग्नि-मंच में बदल दिया गया था और छत के ऊपर से नीचे गिरे हुए त्रिशूल को फिर से स्थापित नहीं किया गया था। दिलचस्प बात यह है कि कुछ किलोमीटर दूर बनी वेदी की प्रतिकृति हिंदू वेदी के साथ-साथ त्रिशूल को भी बरकरार रखती है, लेकिन इसे गलती से एक छोटी पहाड़ी पर एक विशिष्ट पारसी शैली में बनाया गया है।

---

[221] James Bryce, *Transcaucasia and Ararat: Being Notes of a Vacation Tour in the Autumn of 1876*, Third edition, London: Macmillan & Co, 1878: 97.

[222] हालांकि अर्नेस्ट ओरसोल (Ernest Orsolle) ने इसे एक पारसी मंदिर कहा है, लेकिन वह इसकी विशिष्ट स्थापत्य उपस्थिति के लिये इसे "भारतीय शैली में" (dans le style indien) बनाया गया मानता है (देखें Ernest Orsolle, *Le Caucase et la Perse*, Paris: E. Plon, Nourrit, et cie 1885: 140)।

[223] Max Guido von freiherr Thielmann, *Journey in the Caucasus*, *Persian, and Turkey in Asia*, Eng. tr. by Charles Heneage, London: J. Murray, 1875: 9-12.

[224] *पूर्वोक्त.*

आकृति संख्या १४ – बाकू में मंदिर से थोड़ी दूरी पर निर्मित अग्नि मंदिर की प्रतिकृति।

बाकू और उसके अग्नि मंदिर के हिंदू संबंध का संकेत इसके नाम की उत्पत्ति से भी मिलता है। बगुआन (*Baguān*) शब्द संस्कृत शब्द *भगवान* से लिया गया है। दूसरे शब्दों में, बाकू को इसका नाम वैदिक लोगों से मिला, जो संस्कृत बोलते थे, अग्नि उपासक होने के लिये जाने जाते थे, और इस स्थान को बगवान/बगुआन/भगवान कहते थे।[225] सातवीं शताब्दी में जब अरबों ने इस क्षेत्र पर आक्रमण किया, तब तक वर्तमान बाकू के आसपास के क्षेत्र ने *आतशी-बगुआन* (आग के देवता) का निश्चित नाम प्राप्त कर लिया था। उदाहरण के लिये, सासानियन (Sasanian) शासन (२२४-६५१ ई) के दौरान इसे *बगवान* कहा जाता था।[226] पांचवीं शताब्दी (४१०-४९० ई) के दौरान रहने वाले मूसा दसशुरांशी (Movses Dasxurançi) ने अपने *अर्मेनियाई लोगों का इतिहास* (*History of the Armenians*)[227] में उल्लेख किया है कि बगवान मूर्तिपूजक आर्मेनिया के प्रमुख मंदिरों में से एक था और वहां एक सतत आग जलती रहती थी जिसे सासानियन राजा अर्दाशिर (Ardashir)[228] द्वारा बढ़ावा दिया गया था और नववर्ष के महीने के

[225]देखें C.J.F. Dowsett (trans.), *History of the Caucasian Albanians by Movses Dasxurançi*, London: Oxford University Press, 1961: 207 fn9.

[226]Igor S. Zonn, A.N. Kosarev et al, 2010. "Baku,"*The Caspian Sea Encyclopedia*, New York: Springer, 2010: 61.

[227]2.77.

[228]देखें R.H. Hewsen, "Bagawan," *Encyclopædia Iranica*, 1988 http://www.iranicaonline.org.। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया। Robert W. Thomson, (trans.), *History of the Armenians,* (ed. James Bryce, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1978: 225.

पहले दिन बगवान में शाही परिवार द्वारा नए साल का त्योहार मनाया जाता था।[229] बगवान के महत्व को इस तथ्य से भी नापा जा सकता है कि आर्मेनिया के ईसाई धर्म (लगभग ३१४) में रूपांतरण के बाद, राजा तिरिडेट्स (Tiridates, Tṛdat, तृदत्) और उनके दरबार को सेंट ग्रेगरी द इल्यूमिनेटर (St. Gregory the Illuminator) द्वारा यहां बपतिस्मा दिया गया था।[230] मूसा दसशुरांशी (3.67) द्वारा यह भी उल्लेख किया गया है कि ईरान के शाह याज़देगेर्द/याज़कर्त (Yazdegerd/Yazkert) द्वितीय ने ४३९ ई में आर्मेनिया पर अपने आक्रमण के दौरान बगवान में डेरा डाला था।[231] ७३० ई में कॉकेशियन अल्बानिया के खज़र (Khazar) आक्रमण का वर्णन करते हुए, आठवीं शताब्दी का अर्मेनियाई इतिहासकार घेवोंड (Ghevond), इस क्षेत्र का उल्लेख आतशी-बगुआन के रूप में करता है।[232]

---

[229]अगाथांगेलोस, अनुच्छेद.८३६ (Agathangelos, par. 836. देखें Robert W. Thomson, (trans.), *History of the Armenians,* (ed. James Bryce, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1978: 371-372). यह सुझाव दिया गया है कि मोज़ेज् दस्क्सुरान्सी (Movses Dasxurançi, 2.56) का बगवान में 'अंतिम तिगरान' द्वारा बनाई गई वेदी और साथ ही इस त्योहार की स्थापना के लिये राजा वलर्सेस/वालर्शक् (Valarsaces/Vałaršak) को उनके श्रेय का विवरण संभवतः उनकी स्वयं की कल्पना है (खोरेन के मूसा के लिये देखें Robert W. Thomson, (trans.), *History of the Armenians,* (ed. James Bryce, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1978: 493-94 notes).

[230]Agathangelos, par. 832; देखें Robert W. Thomson, (trans.), *History of the Armenians,* ed. James Bryce, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1978: 371-372.

[231]R.H. Hewsen, "Bagawan," *Encyclopædia Iranica*, 1988 http://www.iranicaonline.org.। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया; Robert W. Thomson, (trans.), *History of the Armenians,* (ed. James Bryce, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1978: 347.

[232]देखें Garabed V. Chahnazarin, (trans), *Histoire des guerres et des conquêtes des Arabes en Arménie par l'eminent Ghevond,* 1856. http://www.mediterranee-antique.fr/Auteurs/Fichiers/GHI/Ghevond/Arabes_Armenie/Ghevond.htm । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

आकृति संख्या १५ – मंदिर से त्रिशूल के हटाए जाने और वेदी को पारसी शैली के अग्नि-मंच में बदले जाने से पहले (http://www.visions.az/en/news/11/f829f23d/).

यह विचार कि अग्नि मंदिर पारसी था, मुख्य रूप से डैन शापिरा (Dan Shapira)[233] के दो-पृष्ठ के पेपर द्वारा लोकप्रिय हुआ, जो १८४० में बाकू के एक अग्नि उपासक के साथ दरबंद (Darband) में अवराम फ़िरकोवित्ज़ (Avraham Firkowicz) द्वारा किये गए एक साक्षात्कार पर आधारित है। प्राचीन पांडुलिपियों के क़र'इत (*Yahadut Qara'it*) संग्रहकर्ता फ़िरकोवित्ज़ ने अपने साक्षात्कार के विवरण का उल्लेख अपनी हिब्रू पुस्तक के परिचय में किया है जिसका शीर्षक *अब्ने ज़िक्कारोन* (*Abne Zikkaron*) है।[234] शपीरा ने साक्षात्कार के प्रासंगिक भाग का अनुवाद इस प्रकार किया है–

> बाकू शहर से आए एक ब्राह्मण से मिलने के लिये मैं कमांडेंट बोकेयेव (Boekayev) के घर गया। वह उनके प्रसिद्ध और पवित्र स्थान आतशगाह में एक अग्नि-पूजक था। यह वह जगह है, जहां गर्म शुष्क मौसम के दौरान अग्नि की एक हरी-नीली लौ दिखाई देती है...।
>
> मैंने उससे उसके आगमन की परिस्थितियों आदि के बारे में बातचीत की, और फिर मैंने उससे एक प्रश्न पूछा:
>
> "तुम अग्नि की पूजा क्यों करते हो? क्या यह सब सृजित वस्तुओं की तरह साकार और सृजित वस्तु नहीं है, और कोई सृजित वस्तु की पूजा कैसे कर सकता है?"
>
> उसने मुझे उत्तर दिया:

---

[233] Dan Shapira, "A Karaite from Wolhynia Meets a Zoroastrian from Baku," *Iran and the Caucasus*, vol. 5, no. 1: 105-106.

[234] १८७१ में विल्ना, लिथुआनिया में प्रकाशित।

"भगवान न करे, हम आग की पूजा बिल्कुल नहीं करते हैं। बल्कि हम तो एक गौरवशाली तत्व (*'ष्म् 'ṣm*) की पूजा करते हैं जिसे *क़र्त्* (*Q'rṭ*) कहा जाता है, जो जीवन का निर्माता व प्रदाता है और सर्वविनाशक है। हम सिर्फ आग के सामने खड़े होकर केवल उनकी पूजा करते हैं। इस [अग्नि] में विनिमय की दो शक्तियाँ हैं: एक है उपयोगी शक्ति, जो गर्म करने और सभी मानवीय जरूरतों के लिये उपयोगी होने का कार्य करती है, दूसरी है हानिकारक शक्ति, जो हर चीज को जलाने और नष्ट करने का कार्य करती है, और ऐसे ही निर्माता है जिसके पास दो शक्तियाँ हैं: वह धर्मनिष्ठ लोगों को पुरस्कृत करता है और दुष्टों को दण्ड देता है।

और इसी कारण से हम आग के सामने खड़े होकर उससे प्रार्थना करते हैं, ताकि हमें उसका (पवित्र) भय हो, और हमारी सेवा उसके द्वारा अच्छी तरह से स्वीकार हो जाए, ताकि हम एक अच्छा फल प्राप्त कर सकें, न कि सजा, भगवान न करे!"[235]

हालाँकि फ़िरकोविट्ज़ खुद तथाकथित पारसी को ब्राह्मण कहता है, शापिरा मंदिर में पारसियों के अस्तित्व को साबित करने के अपने उत्साह में, साक्षात्कार की व्याख्या एक संकेत के रूप में करता है कि यह ब्राह्मण एक पारसी था। इस तथ्य के अलावा कि यह व्यक्ति अग्नि की पूजा करने वाला एक ब्राह्मण (भारतीय साधु) था, उसकी घोषणा कि वह *क़र्त्* (संत भाषा, *कर्ता*) की पूजा करता था स्पष्ट रूप से उसके उदासी साधु होने का संकेत देता है क्योंकि *कर्ता* (ਕਰਤਾ) शब्द "सर्वशक्तिमान निर्माता" को दर्शाता है जिसका उपयोग *जपुजी-साहिब* के *मूल-मंत्र* में किया गया है जो कोठरी नं. ७ और १० दरवाजों के ऊपर स्थापित दो गुरुमुखी शिलालेखों संख्या १० और ११ (क्रमशः) का हिस्सा है।

आकृति संख्या १६– गर्भगृह के ऊपर शिलालेख में दिखाया गया सूर्य और भारतीय स्वस्तिक (शिलालेख संख्या १)

जैसा कि ऊपर बताया गया है, पिछले लगभग एक सौ वर्षों में, अज़रबैजान में आम धारणा बनाने के लिये एक अंतर्निहित प्रवृत्ति काम रही है कि यह मंदिर पारसी है। उदाहरण के लिये, जब १९२० के दशक में, भारत के जाने-माने पारसी इतिहासकार, जमशेदजी मोदी ने इस महत्वपूर्ण स्मारक को संरक्षित करने का अनुरोध करने के लिये अज़रबैजान के राष्ट्रपति से मुलाकात की, उन्होंने मोदी से कहा, "यदि आप पारसी यहां आ कर मुझसे कहते हैं कि आप सुरखानी आतश कादेह् को अपने आतश कादेह् के रूप में लेना चाहते हैं, तो मुझे ऐसा करने में अत्यंत हर्ष होगा।"[236] इस पर मोदी ने जवाब देते हुए कहा

---

[235]Dan Shapira, *पूर्व उद्धृत*, 105.

[236]J. Jamshedji Modi, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, 1926. Trans. by Soli Dasturji, 2004. (http://www.avesta.org/modi/baku.htm)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

सिर्फ मैं ही नहीं बल्कि कोई भी पारसी जो हमारे हिंदू भाइयों के धर्म, उनके मंदिरों और उनके रीति-रिवाजों से थोड़ा सा भी परिचित है, इस इमारत के शिलालेखों, वास्तुकला आदि की जांच करने के बाद, यह निष्कर्ष निकालेगा कि यह एक पारसी आतश कादेह् नहीं है बल्कि एक हिंदू मंदिर है, जिसके ब्राह्मण (पुजारी) अग्नि की पूजा करते थे।... यह मंदिर उनकी धार्मिक जरूरतों को पूरा करने के लिये बनाया गया था। हमारे हिंदू भाई भी अग्नि को भगवान मानते हैं। इस स्थान पर पृथ्वी से प्राकृतिक गैसें निकलती हैं, जो किसी भी चिंगारी से निरंतर आग के गोले में प्रज्वलित हो जाएंगी। इसलिये यहां पृथ्वी से स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होने वाली अग्नि के मुहाने पर, उन्होंने अग्नि पूजा के लिये एक हिंदू मंदिर की स्थापना की...। मैंने उस जगह की भी जांच की जहां वे मृत हिंदुओं के शवों का अंतिम संस्कार करते थे। इन सभी परीक्षाओं से और उसके अलावा, इस जगह पर जाने से पहले अपने विभिन्न शोधों से, मैंने जो पता किया, मुझे विश्वास हो गया कि इस जगह का पारसियों से कोई लेना-देना नहीं है। यह पारसी आतश कादेह् नहीं बल्कि हिंदू मंदिर है । ... इस इमारत के गर्भगृह के ऊपर चारों कोनों में चार छोटी मीनारें हैं, यह चारों ओर से खुला है और चारों ओर तीन कदम की सीढ़ियाँ हैं। कुछ साल पहले जब यहां पारसी और अन्य समुदाय रहते थे, तब एक पारसी आतश कादेह् को सभी के देखने के लिये खुला न छोड़ा जाता। केंद्र में एक गड्ढा है। एक पारसी आतश कादेह् में, केंद्रीय अग्नि के लिये, सिंहासन जैसा एक ऊंचा मंच खड़ा किया जाता है। इस इमारत के पास करीब ८ से १० फीट लंबी एक जगह है जहां उनका कहना है कि हिंदू उनके मृतकों का दाह संस्कार करते थे। किसी पारसी आतश कादेह् में ऐसा कभी नहीं होगा.... उपरोक्त सभी तथ्यों से निःसंदेह स्पष्ट है कि यह भवन पारसी आतश कादेह् आतश कादेह् नहीं है।[237]

मोदी के अलावा, मंदिर की जांच उन्नीसवीं सदी के अंत और बीसवीं सदी की शुरुआत में कुछ पारसी दस्तूरों ने भी की थी, जिनमें से कुछ ने हिमाचल प्रदेश के वर्तमान भारतीय प्रांत

आकृति संख्या १६ – दाह संस्कार गड्ढा

में कांगड़ा के पास स्थित ज्वाला जी मंदिर का भी दौरा किया था। उन्होंने, मोदी की तरह, इशारा किया है कि यह पारसी अग्नि मंदिर बिल्कुल नहीं है।[238] सबूत का एक और हिस्सा जो दर्शाता

---

[237] *पूर्वोक्त*।

[238]उदाहरण के लिये, एक पारसी विद्वान, जमशेदजी मानेकजी ऊनवाला के अनुसार, जिन्होंने १९३५ में अग्नि मंदिर का दौरा किया था, एच. बालेंटाइन (H. Balantine) और एलेक्ज़ांद्र दुमा ने "गलती से इसे पारसी अग्नि-मंदिर और

है कि यह परिसर हिंदू धर्म से संबंधित है, इसके परिसर के भीतर एक श्मशान गढ़े की उपस्थिति है। करीब दस फीट लंबे और चार फीट चौड़े इस गड्ढे की राख में खोपड़ी के पुराने टुकड़े मिले हैं. पारसी लोग हिंदुओं की तरह अपने मृतकों का अंतिम संस्कार नहीं करते। मृतकों के निपटान के लिये उनके पास उनके शांति मीनार हैं। इसके अलावा, आमतौर पर पवित्र संरचनाओं के ऊपर जड़ा त्रिशूल स्पष्ट रूप से शैव परंपरा का एक हिंदू पवित्र प्रतीक है।[239] इस परंपरा में, भगवान शिव के "पिछले बाएं हाथ में एक शुद्ध करने वाली ज्वाला ... एक हाथ में त्रिशूल... और एक हाथ से डमरू (जो भगवान शिव का वाद्य यंत्र है) को बजाते हैं, जिससे ब्रह्मांड की सभी ध्वनियाँ निकलती हैं।"[240] इस त्रिशूल[241] को पारसी विद्वानों द्वारा आतशगाह को एक हिंदू स्थल के रूप में मानने के एक विशिष्ट कारण के रूप में उद्धृत किया गया है क्योंकि "चौकोर गुंबद पर एक त्रिशूल[242] स्पष्ट रूप में मौजूद था।"[243] मंदिर की यात्रा के दौरान, मोदी ने एक कोठरी की दीवार पर हिंदू भगवान, गणेश की तस्वीर और अन्य दीवारों पर पेड़ों के साथ-साथ एक त्रिशूल के चित्र को भी देखा।[244] परिसर के अंदर और आसपास जहां कहीं भी देखा जाए, वहां यह इंगित करने

तीन त्यागी पुजारियों, जिनसे वे मिले थे, को ग़ुएबेर्स के रूप में पहचाना था। इन (पुजारियों) में एक भारत से नया आया था, शायद पंजाब से" (Jamshedji Maneckji Unvala, "Inscriptions from Suruhani near Baku," *Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society*, New Series, vol. 26, part I: 86)। ऊनवाला ने बम्बई के एक अन्य साथी पारसी, जो एक प्रसिद्ध इंजीनियर थे, उनके एक स्थानीय पत्रिका में एक पर्चा प्रकाशित करने के इस प्रयास पर खेद व्यक्त किया कि यह एक पारसी अग्नि-मंदिर है (*पूर्वोक्त*)।

[239]जब जैक्सन ने यहां का दौरा किया, तो उन्होंने वेदी-अभयारण्य की छत पर त्रिशूल को देखा– "छत के बीच में एक वर्गाकार गुंबद (cupola) है, जिसके पूर्वी हिस्से में एक ध्वज की तरह तीन कांटों वाला भारतीय भगवान शिव का त्रिशूल है" (A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 43)।

[240]Leza Lowitz and Reema Datta, *Sacred Sanskrit Words for Yoga, Chant, and Meditation,* Berkeley: Stone Bridge Press, 2004: 186.

[241]सबसे अजीब बात यह है कि कुछ अज़ेरी विद्वानों ने गलत सुझाव दिया है कि हालांकि यह मंदिर एक हिंदू मंदिर है, लेकिन त्रिशूल एक पारसी प्रतीक है जो आशा के तीन गुणों, हुमाता, हूक्ता, व हुवर्शता, को दर्शाता है जो क्रमशः अच्छे विचार, अच्छे शब्द, अच्छे कर्म हैं। लेकिन यह स्पष्ट रूप से अतिशयोक्ति पूर्ण है। हुमाता, हूक्ता, हुवर्शता की उचित व्याख्या के लिये देखें M. Boyce, "Humata, Hūxta, Huvaršta," *Encyclopedia Iranica.* 1987 (www.iranicaonline.org)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[242]त्रिशूल जो पुराने चित्रों में प्रमुखता से दिखाई देता है, या तो रखरखाव के अभाव में गिर गया या शायद कुछ शरारती तत्वों द्वारा हटा दिया गया था। कुछ बहुत ही अजीब कारणों से, नवीनीकरण के दौरान जब अज़ेरी सरकार द्वारा अग्नि मंदिर की यूनेस्को की संरक्षित विरासत स्थल के रूप में मान्यता के लिये एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, तो त्रिशूल को वेदी के गुंबद पर वापस नहीं लगाया गया था।

[243]H.D. Darukhanawala, *Parsi Lustre on Indian Soil*, 2 vols, Bombay: G. Claridge & Co Ltd, 1939: 108.

[244]J. Jamshedji Modi, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, 1926. Trans. by Soli Dasturji, 2004. (http://www.avesta.org/modi/baku.htm)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

के लिये भारी सबूत हैं कि यह मंदिर उत्तरी भारतीय बुनियाद का है।[245] चौकोना-खंभे वाली वेदी के बारे में बात करते हुए, मोदी का उल्लेख है कि

> यह चौकोनी इमारत करीब १५ x १८ फीट की है। केंद्र में लगभग २ से ३ फीट गहरा और लगभग ४ वर्ग फीट का एक गड्ढा है, जैसा कि हमारे हिंदू भाई अपने होम (या सोमा) अनुष्ठान के लिये खोदते थे। इस गड्ढे से निकलने वाली प्राकृतिक गैस की वजह से अग्नि प्रज्वलित हुई होगी। ऊपर एक गुंबद (dome) है; हालाँकि, यह अण्डाकार (गोलाकार) नहीं है जैसा कि एक पारसी अताश कादेह में होता है। लेकिन, गुम्बद के केंद्र में एक बड़ा सा छिद्र है ताकि गड्ढे में प्राकृतिक धूप आ सके। एक पारसी आतश कादेह् में, यह सुनिश्चित करने के लिये कड़ी देखभाल की जाती है कि गर्भगृह में कोई भी प्राकृतिक धूप सीधे पवित्र अग्नि पर न पड़े। इस इमारत के चारों ओर धुएं से बचने के लिये झरोखे दिये गए हैं।[246]
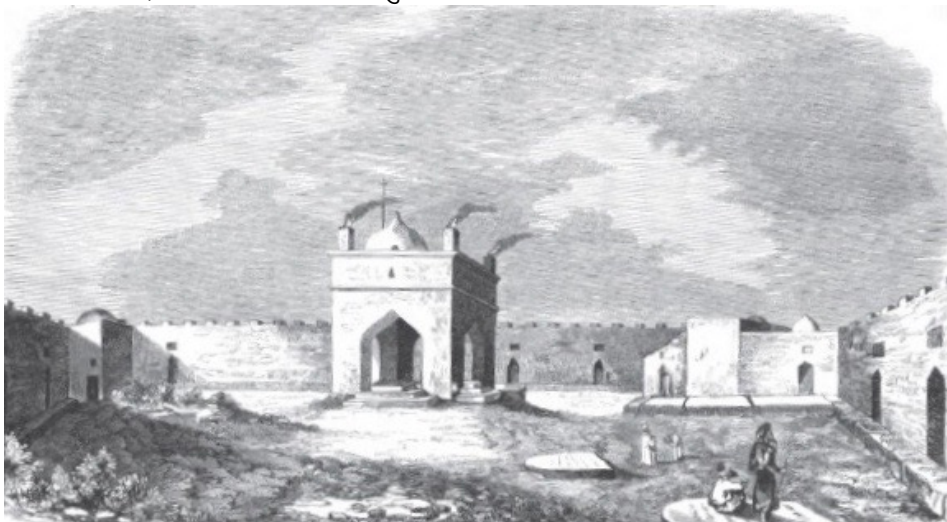
आकृति संख्या १८– मंदिर का चित्र। स्रोत– I.N. Berezin, *Traveling in Dagestan and Transcaucasia* (in Russian), 2nd edition, Kazan: University Printing House, 1850. https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Karavan_saray_on_Ateshgah.jpg

१८ सितंबर १९२५ को मॉस्को में लेनिन संग्रहालय के दौरे के दौरान मोदी ने इस संग्रहालय में

> बाकू मंदिर के पुराने समय के भक्तों की मूर्तियाँ देखीं। उन्हें लकड़ी से आग जलाते और आग के चारों ओर पालथी मारकर बैठे हुए दिखाया गया था। कुछ को संगीत वाद्ययंत्रों के साथ अग्नि पूजा करने के लिये सामने से आते हुए दिखाया गया है। उनके माथे पर लाल तिलक[247] हैं। कुछ को गलीचा बुनते हुए दिखाया

---

[245]A.V. Williams Jackson, *पूर्व उद्धृत,* 42.

[246]J. Jamshedji Modi, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, 1926. Trans. by Soli Dasturji, 2004. (http://www.avesta.org/modi/baku.htm)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[247]सिंदूर, केसर, हल्दी, मिट्टी या बस राख से बना तिलक, हिंदुओं द्वारा नियमित रूप से और विशेष रूप से धार्मिक अवसरों पर आध्यात्मिक निष्ठा व समर्पण के संकेत के रूप में माथे पर लगाया जाने वाला एक चिह्न है। तिलक का आकार व बनावट इष्ट देव के अनुसार विशिष्ट होता है। उदाहरण के लिये, एक यू-आकार का तिलक आमतौर पर

गया है। इसमें रूसी भाषा में एक व्याख्यात्मक शिलापट्टी है जिसमें उन्हें हिंदुओं के रूप में पहचाना गया है। इस प्रदर्शनी की संरक्षक रूसी महिला ने मुझे निम्नलिखित अंग्रेजी अनुवाद बताया (जैसा कि अंग्रेजी में पुस्तक में दिया गया है और यहां शब्दशः पुन: प्रस्तुत किया गया है)– "बाकू शहर के पास सौरत्साना (Souratshaanaa) और एमिडजान (Emidjan) के गांवों में जहां आग (नाफ्था) पृथ्वी से निकलती है हिन्दू जो भारत से आये थे रहते थे। वे ब्राह्मण थे। उन्होंने एक मंदिर बनाया और कई वर्षों तक आग की पूजा की...। वे पारसी नहीं हैं जो जरथुश्त्र (Zarathushtra) के भक्त ग़ुएबेर्स थे।" संग्रहालय की सूची में, रूसी में इस प्रदर्शनी के बारे में निम्नलिखित विवरण दिया गया है जिसका अंग्रेजी में अनुवाद इस प्रकार किया गया था (जैसा कि अंग्रेजी में पुस्तक में दिया गया है और यहां शब्दशः पुन: प्रस्तुत किया गया है)– "एक रूसी यात्री बेरेसीन (Beresine) ने बताया है कि ... मंदिर में एक छोटी घंटी है और जब उपासक प्रार्थना शुरू करता है, घंटी बजाई जाती है। यह छोटा कमरा एक गुंबद से छादित है और दरवाजे के पास शिव का प्रतीक एक त्रिशूल है। ...मंदिर के पास एक बड़ा गड्ढा है। इसके ऊपर एक बड़ा चूल्हा है। चूल्हे पर सभी मुर्दे जलाए जाते हैं। १८४२ में केवल सात व्यक्ति थे और उसके बाद भारत से कोई नहीं आया।"[248]

अग्नि एक प्रमुख देवता हैं जिनका उल्लेख ऋग्वेद में कम से कम २०० बार हुआ है। पारसियों के पूर्वजों ने जब सप्त-सिंधु क्षेत्र से उस क्षेत्र की ओर पलायन किया जिसे विशाल ईरान (ईरानज़मीं, ईरान-ए-बोज़ोर्ग़) कहा जाता है तब वे अपने साथ अग्नि (पारसी, आतर्[249]) से जुड़े वे सब संस्कार ले गए जिनका यस्न (वैदिक, यज्ञ) में प्रयोग होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि चूँकि दोनों धर्मों के लिये अग्नि पवित्र है इससे कुछ अज़ेरी विद्वानों को अपने प्रयासों में यह दिखाने का अवसर मिला कि यह अधिमानतः एक पारसी मंदिर है और या फिर कम से कम हिंदू-पारसियों का अग्नि पूजा का साझा पवित्र स्थल। जब मंदिर का नवीनीकरण किया गया

विष्णु की भक्ति को दर्शाता है और तीन क्षैतिज रेखायुक्त तिलक शिव का प्रतिनिधित्व करता है। विवाहित हिंदू महिलाएं विवाह और शुभता को दर्शाने के लिये आमतौर पर माथे पर एक सजावटी बिंदी/सिंदूर बिंदु पहनती हैं। (देखें Axel Michaels, *Homo Ritualis: Hindu Ritual and Its Significance for Ritual Theory*, New York: Oxford University Press, 2016: 100-112, 327)। वैष्णव तिलक, जिसे ऊर्ध्वपुंड्र के रूप में जाना जाता है, में केशरेखा के ठीक नीचे से शुरू होकर नाक की नोक के लगभग अंत तक एक लंबा ऊर्ध्वाधर अंकन होता है और बीच में एक लम्बी यू (U) द्वारा अवरोधित किया जाता है। यह तिलक पारंपरिक रूप से चंदन के लेप से बनाया जाता है। तिलक के अन्य प्रमुख रूप को त्रिपुंड्र के रूप में जाना जाता है, जिसमें भौंह के ऊपर तीन क्षैतिज विभूति होती है, जिसके बीच में एक सीधी रेखा या बिंदी होती है (Paul Deussen, *Sixty Upanishads of the Veda*, (tr.) V.M. Bedekar and G.B. Palsule, vol. 1, Delhi: Motilal Banarsidass 1980: 789-790; Klaus K. Klostermaier, *Mythologies and Philosophies of Salvation in the Theistic Traditions of India*. Waterloo, ON: Wilfrid Laurier University Press, 1984: 131, 371; James Lochtefeld, "Urdhvapundra," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group: 724)।

[248]J. Jamshedji Modi, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, 1926. Trans. by Soli Dasturji, 2004. (http://www.avesta.org/modi/baku.htm)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[249]वैदिक *अथर्वन्* से व्युत्पत्तिपूर्वक व्युत्पन्न, *आतर्* पारसी धर्म की पवित्र अग्नि है। आतर् को निष्कर्षात्मक शब्दों में "जलती हुई और बिना जलती हुई आग" या "दृश्यमान और अदृश्य आग" के रूप में वर्णित किया जाता है (Hormazdiar Mirza, *Outlines of Parsi History*, Bombay: Amalgamated, 1987: 389)। अवेस्तन भाषा में, *आतर्* प्रकाश और ऊष्मा के स्रोतों का एक गुण है, इसका एक वचन कर्ता कारक (singular nominative) रूप आतर्श् *(ātarš)* है जो फ़ारसी शब्द *आतश* (अग्नि) को जन्म देता है।

तो इसे आंशिक रूप से पारसी बना दिया गया।[250] दिलचस्प बात यह है कि इस अवधि के दौरान, ऐसा प्रतीत होता है कि त्रिशूल को भी गायब कर दिया गया[251] और शौकिया पुरातत्वविदों द्वारा परिसर के मैदानों की खुदाई बेतरतीब ढंग से की गई।[252]

यह जानने के लिये कि 'नवीनीकृत' होने से पहले परिसर वास्तव में कैसा दिखता था, विलियम्स जैक्सन, जिन्होंने १८८१ में यहां का दौरा किया, द्वारा दिये गए निम्नलिखित वृत्तान्त को देखना सार्थक हो सकता है

> पवित्र परिसर एक ऐसी दीवार से घिरा है जो कम्पास के बिंदुओं का अनुसरण करते हुए लगभग एक समानांतर चतुर्भुज बनाती है। इसकी लंबाई उत्तर से दक्षिण की ओर लगभग चौंतीस गज (या लंबी तरफ चालीस गज) है; चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक लगभग अट्ठाईस गज है। गर्भगृह लगभग आँगन के बीच में स्थित है। मीनारों वाली एक वर्गाकार इमारत, जिसमें पहुँचने के लिये ऊँची उठान का पायदान हैं, उत्तर-पूर्व कोने में स्थित है। परिसर की दीवारें बहुत मोटी हैं, चारों ओर कक्ष बने हैं जिनके प्रवेश द्वार धनुषाकार हैं। पूरा ठोस रूप से बनाया गया है और प्लास्टर से ढका हुआ है। बीच में बनी चौकोर संरचना ईंट, पत्थर और मोर्टार की है, जिसकी ऊंचाई लगभग पच्चीस फीट और लंबाई व चौड़ाई दोनों बीस फीट हैं, इसके प्रत्येक तरफ धनुषाकार प्रवेश द्वार हैं। इन प्रवेश द्वारों के उत्तर व पूर्व की तरफ तीन-तीन कदम और दक्षिण व पश्चिम की तरफ जहां जमीन थोड़ी ऊंची है दो-दो कदम की सीढ़ियां हैं। फर्श के बीच में एक वर्गाकार कुआँ है, जिसका माप प्रत्येक दिशा में ठीक साढ़े चालीस इंच (१ मी. १३ सेमी.) है। इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि इस पर और इसकी छत तक नाफ्था गैस का संचालन करने के लिये पाइपों का प्रयोग किया गया था। मंदिर के शीर्ष पर कोनों में चार चिमनियां हैं, जिनसे निकलती ज्वलनशील गैस मंदिर को प्रकाशित करती थी। छत के बीच में एक वर्गाकार गुंबद है, जिसके पूर्वी हिस्से में एक ध्वज की तरह एक त्रिशूल है जो भारतीय भगवान शिव के त्रिशूल जैसा दिखता है। ... पूर्व की ओर की मेहराब के ऊपर एक दोहरी आयताकार शिलापट्टी है,

---

[250]दुर्भाग्य से, १९९० के दशक में मंदिर के जीर्णोद्धार के समय, अज़रबैजान सरकार के अज्ञानी अधिकारियों ने पवित्र वेदी को, जो लगभग तीन फीट गहरी और लगभग चार फीट चौकोर थी, भर दिया और उसके ऊपर एक सिंहासन जैसा ऊंचा मंच खड़ा कर दिया। इस बर्बरता से पहले की अवधि में ली गईं तस्वीरों में इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

[251]लेकिन लगभग पांच किलोमीटर दूर बनाए गए गर्भगृह की प्रतिकृति में वेदी और त्रिशूल दोनों हैं।

[252]दुर्भाग्य से, जब भी कोई मरम्मत कार्य किया गया, वह पूरी तरह से गैर-पेशेवर और आकस्मातिक ढंग से किया जाता रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश शिलालेख उन पर की गईं सफेदी की अनेक परतों के माध्यम से क्षतिग्रस्त हो गए हैं (Jamshedji Maneckji Unvala, "Inscriptions from Suruhani near Baku," *Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society*, New Series, vol. 26, part I: 82)। एक आगंतुक ने १९५० में देखा कि एक शिलालेख उल्टा लगा हुआ है (पूर्वोक्त, 82; A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 45)! गुरुमुखी शिलालेख (नं. ११) पर, जो कोठरी नं. १० के द्वार के ऊपर स्थापित है, किया गया मरम्मत कार्य, घटिया काम का एक और उदाहरण है। सबसे दुर्भाग्य से, कुछ नुकसान होने के बाद (संभवतः बर्बरों के हाथों), देखभाल करने वालों ने क्षतिग्रस्त हिस्से को सीमेंट से इतनी लापरवाही से भर दिया है कि शिलालेख के अक्षरों को और नुकसान हो गया है।

जो साढ़े तीन फीट ऊंची और दो फीट चौड़ी है और उसके ऊपरी भाग में एक स्वस्तिक और एक सूर्य, चार फूल और कई वर्णनातीत आकृतियाँ हैं।[253]

निचला खंड भारत के नागरी चरित्र में नौ पंक्तियों में एक शिलालेख के लिये समर्पित है, जिसका आरम्भ 'श्री गणेशाय नमः' जो संस्कृत लेखन में सामान्य बाधाओं को दूर करने वाले देवता के लिये आह्वान है। शिलालेख, स्पष्टतया पंजाब की मारवाड़ी उपभाषा[254] में है, जिसमें कहा गया है कि मंदिर ज्वाला-जी (हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा की ज्वाला-मुखी देवी ज्वाला-मुखी के समान)[255] के लिये बनाया गया था, और एक संस्कृत दोहे का हवाला दिया गया है जिस में तीर्थयात्रा और पवित्र कार्यों के गुण बताए गए हैं। यह विक्रमादित्य युग, 'संवत् १८७३' (= १८१६ ई.) की तारीख के साथ समाप्त होता है।

परिसर की दीवारों के चारों ओर, कक्षों के या तो द्वारों के ऊपर या पास, प्लास्टर में लगाई पंद्रह और समर्पण शिलापट्टियां हैं और एक को छोड़ कर, उसी नागरी लिपि में हैं जो संस्कृत के लिये प्रचलित है या फिर इसके किसी एक रूप में लिखी गई हैं। अपनी नोटबुक में मैंने उन्हें सामान्य प्रवेश द्वार के पास उत्तर-पश्चिम कोने से शुरू होने वाले नंबर दिये। उत्तरी दीवार में उनमें से दो ऊपरी भारत की पंजाबी भाषा और लिपि में हैं और सिख मूल की हैं, जैसा कि वे नानक के धर्म की पवित्र पुस्तक *आदि ग्रंथ* से उद्धृत हैं, जिसकी स्थापना लगभग १५०० ई. में हुई थी। लेकिन उनकी तिथि उस युग के दो शताब्दियों बाद की या उससे अधिक होगी, जैसा कि बम्बई के डॉ. जस्टिन ई. एबॉट (Justin E. Abbott) ने दक्षिणी दीवार में स्थापित दो अन्य शिलापट्टियों की तस्वीरों के एक जोड़े से दिखाया था, जिन्हें मैं मंदिर में अपनी पहली यात्रा के बाद वापस ले कर आया था।[256]

१७४७ में मंदिर के दर्शन करने वाले जोनास हैनवे (Jonas Hanway) ने भी एक दिलचस्प विवरण छोड़ा है

> एक छोटा मंदिर है, जिसमें भारतीय अब पूजा करते हैं– वेदी के पास, लगभग ३ फीट ऊंचा, एक बड़ा खोखला नरकत है, जिसके अंत से एक नीली लौ निकलती है, रंग और नम्रता में एक दीपक से भिन्न नहीं जो दुर्गंध से जलता है, लेकिन अधिक शुद्ध प्रतीत होती है। ये भारतीय पुष्टि करते हैं कि यह ज्वाला जलप्रलय के बाद से जारी है, और उनका मानना है कि यह दुनिया के अंत तक बनी रहेगी; कि यदि इस स्थान पर इसका विरोध या दमन किया गया तो यह किसी अन्य स्थान पर उठ खड़ी होगी। यहाँ आम तौर पर चालीस या पचास ऐसे अतिविनम्र भक्त हैं, जो अपने देश से तीर्थ यात्रा पर आए हैं, और जंगली अजमोद और एक प्रकार के सूरजमूखी पौधे (Jerusalem artichokes) पर निर्वाह करते हैं, जो यहां से थोड़ा उत्तर की ओर पाई जाने वाली अन्य जड़ी-बूटियों और जड़ों के साथ बहुत अच्छा भोजन है। उनका काम प्रायश्चित करना है, न केवल अपने पापों के लिये, बल्कि दूसरों के पापों के लिये (भी), और वे जितने लोगों के लिये प्रार्थना

---

[253]ये आंकड़े त्रिशूल के पीछे स्थित एक अग्नि-वेदी का प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं, और संभवतः त्रिशूल के ऊपर एक चैत्य-घंटी। यह डॉ. एल.एच. ग्रे (L.H. Gray), डॉ. जे.ई. एबॉट (J.E. Abbott), और स्वयं जैक्सन (Jackson) इन सभी का ऐसा विचार है। पट्टी के सटीक माप हैं: १ मीटर ७ सेमी ऊंचाई और ५९ सेमी चौड़ाई, ऊपरी भाग ३७ सेमी ऊंचाई में, और निचला भाग ७५ सेमी चौड़ाई में।

[254]पूना (भारत) के पंडित डी. कोसांबी, प्रोफेसर सी.आर. लैनमैन (Lanman), डॉ. एल.एच. ग्रे और विशेष रूप से डॉ. जे.ई. एबॉट (Abbott) की राय और सुझावों के आधार पर।

[255]देखें Stewart (and Cust), "The Hindu Fire Temple at Baku," *Journal of the Asiatic Society,* 1897: 311-318. संस्कृत साहित्य में ज्वालामुखी के अनेक सन्दर्भ Otto Böhtlingk and Rudolph Roth, *Sanskrit-Wörterbuch in Kürzerer Fassung*, St. Petersburg: Buchdruckerei der Kaiserlichen Akademie der Wissenschaften, vol. 3, 1855-1875: 171-172 पर मिलेंगे।

[256]A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 42-44.

करने में लगे हैं, उनकी संख्या के अनुपात में वे प्रार्थना पर समय व्यतीत करते हैं। वे अपने माथे को केसर से चिह्नित करते हैं, और लाल गाय को बेहद पूजनीय मानते हैं। वे बहुत कम कपड़े पहनते हैं, और जो सबसे प्रतिष्ठित धर्मपरायण हैं, वे अपने सिर पर या शरीर के किसी अन्य हिस्से पर अपनी बाहों में से एक को एक निश्चित स्थिति में रखते हैं, और इसे उस भंगिमा में अपरिवर्तनीय रूप से रखते हैं।[257]

अग्नि मंदिर में एक साधु द्वारा अपनाई गई ऊर्ध्वबाहु मुद्रा के बारे में बात करते हुए, १७७० में अग्नि मंदिर का दौरा करने वाले सैमुअल गोटलिब ग्मेलिन (Samuel Gottlieb Gmelin),[258] ने उदासी साधुओं की विभिन्न प्रकार की तपस्याओं का वर्णन इस प्रकार किया है:

[E]in Indianer in dieser Stellung 20 Jahre lang unveränderlich geblieben und Essen und Trinken zur Nothdurft von Andern becommen hatte; ein andrer hatte 7 Jahre lang den einen Arm in die Höhe gehalten, der ihm nach einer solchen Marter endlich zur Belohnung steif geworden war. Noch 1803 lebte dort ein70 jähriger Greis, der 30 Jahre unaufnörlich die Hände in die Höhe gehalten hatte, wodurch sie so sehr austrockneten, dafs selbst wenn er sie hätte herunterlassen wollen, sie sich nicht mehr gebogen hätten. Ein andrer zerschnitt seine Haut und zog sie dann mit einem Nadel zusammen, worauf sie auch so zuheilte. Ein dritter durchschnitt sich den Körper auf beiden Seiten vom Halse nach der Brast und legte in diese Wunden eisernen Drath, welcher an einzelnen Stellen mit der darüber zugeheilten Haut bedeck ward, aber an andern Stellen drang era us dem Körper hervor. Ein vierter legte sich in beide, der Mitte nach durchschnittene Ohren runde, gleich Rädern gestaltete Steine und ging mit ihnen einige jarhe. Einem fünften hingen die Haare, dicht an einander geklebt, verworren über die Schultern bis in die Lendengegend herab; beim sechsten bildeten diese verworrenen Haare 5 bis 6 Flechten, jede einen Daumen dick, aber über einen Faden lang, so dafs, wenn dieser Märtyrer sie herabliefs, sie noch uber ½ Arschine am Boden lagen. Beide letztere hatten sich selbst einen freiwilligen Weichselzopf gemacht, um sich zu martern. Eine jeder legte sich im Ganzen verschiedene Qualen auf, nicht nur für seine eignen, sondern auch nach ihrem Gelübde für die Sunden anderer.[259]

---

[257]Jonas Hanway, *An Historical Account of the British Trade over the Caspian Sea: With a Jjournal of Travels from London through Russia into Persian; and back again through Russia, German and Holland*, vol. I, London: Hanway, 1753: 381-382.

[258]जर्मन वनस्पतिशास्त्री और खोजकर्ता, सैमुअल जॉर्ज गोटलिब गमेलिन (४ जुलाई १७४४ - २७ जुलाई १७७४) ने डॉन और वोल्गा नदियों के साथ-साथ कैस्पियन सागर के पश्चिमी और पूर्वी तटों का अन्वेषण किया। जब वह १७७४ में काकेशस में एक अन्वेषण यात्रा पर थे, तब खैताकेस् के उस्मे खान (Usmey Khan of Khaïtakes) ने उनका अपहरण कर लिया और अखमेदकेंट, दागिस्तान (Akhmedkent, Dagestan) ले जाकर उनकी हत्या कर दी थी। उनकी मृत्यु के समय, उनकी आयु केवल ३० वर्ष थी। उनकी मृत्यु के परिणामस्वरूप, एक रूसी दंडात्मक अभियान के द्वारा थोड़े समय के लिये डर्बेंट (Derbent) पर कब्जा कर लिया गया था। उनकी यात्रा के परिणाम १७७०-१७८४ में ४ खंडों (*Reise durch Rußland zur untersuchung der drey Natur-Reiche*, *तीन प्राकृतिक राज्यों के अध्ययन के लिये रूस के भीतर की यात्रा*) में प्रकाशित हुए थे।

[259]Gmelin's *Reise durch Rußland zur Untersuchung der drey Natur-Reiche*, St. Petersburg: Kayserlichen Academie der Wissenschaften, 1770: 46 जो Eduard Eichwald, *Reise auf dem Caspischen Meeren unt in Den Kaukasus: unternommen in den jahren 1825-26,* Erste Abtheilung, Stuttgart und Tübingen: J.G. COTTA'schen Buchhandlung, 1834: 178-179 fn पर दिया गया है, से उद्धृत।

हिंदी अनुवाद–

> एक भारतीय इस दशा में बीस वर्षों तक अपरिवर्तित रहे और आवश्यकता पड़ने पर दूसरों से भोजन और पेय प्राप्त किया; दूसरे ने सात साल तक एक हाथ ऊपर रखा, जिसके परिणामस्वरूप, इस तरह की यातना के बाद, आखिरकार वह अनम्य हो गया था। १८०३ में अभी भी एक सत्तर वर्षीय व्यक्ति था जिसने तीस वर्षों तक लगातार अपने हाथों को ऊपर कर रखा था, जिससे वे इतने सख्त हो गए थे कि अगर वह उन्हें नीचा करना चाहता, तो वे अब न झुकते। दूसरे ने अपनी त्वचा को काटा और फिर उसे एक सुई से सिल लिया, जो फिर ठीक भी हो गई। एक तीसरे ने शरीर को गर्दन से छाती तक दोनों तरफ से काट लिया और फिर इन घावों में लोहे की तार लगा दी जो चंगी त्वचा वाले स्थानों में ढकी हुई थी, लेकिन अन्य स्थानों पर यह शरीर से बाहर निकली हुई थी। चौथे ने दोनों कानों को बीच से काटकर उनमें पहियों के आकार गोल पत्थर डाल दिये और कुछ वर्षों तक ऐसे ही चलता फिरता रहा। पांचवें के बाल कंधों से कमर तक लटके, एक साथ चिपके, तथा उलझे हुए थे; छठे ने इन उलझे हुए बालों की पाँच-छह जटाएं बनाई हुईं थीं, जिनमें से प्रत्येक का एक अंगूठे जैसी मोटी लेकिन एक धागे की तरह लंबी, ताकि जब यह हुतात्मा उन्हें नीचे गिराए, तब भी वे फर्श पर अर्धवृत्त बना दें। बाद के दोनों ने स्वेच्छा से खुद को प्रताड़ित करने के लिये विस्तुला नदी जैसी चोटी बना ली थी। उनमें से प्रत्येक ने न केवल अपने पापों के लिये, बल्कि दूसरों के पापों के लिये भी प्रण ले रखे थे [जर्मन से हिंदी अनुवाद मेरा है]।

१७८४ के अपने वृत्तान्त में, बंगाल सिविल सर्विस के जॉर्ज फोर्स्टर् (George Forster) ने बताया है कि "यहां बाकू में, हिंदू धर्म का अनुयायी अक्सर इतनी गहराई से उत्साहित पाया जाता है कि भले ही उसके शरीर की नसों की बनावट कमजोर पड़ गई हो और वृद्धावस्था से उसका शरीर शक्तिहीन हो गया हो, तब भी वह अपने भगवान के मंदिर में प्रार्थना करने के लिये गंगा से वोल्गा तक शत्रुतापूर्ण क्षेत्रों से यात्रा करता मिलेगा।"[260] इसी तरह, जैकब रेनेग्स (Jacob Reineggs), जिन्होंने १७९६ से पहले काकेशस में कई यात्राएँ कीं, यहां पूजा करने वाले 'भारतीय' ('इंडियनर,' 'Indianer) भक्तों की यौगिक तपस्या का उल्लेख करते हुए बताया है कि वे अपने मृतकों का दाह संस्कार करते थे। रेनेग्स का कथन यह साबित करने के लिये अपने आप में पर्याप्त तथ्य है कि इस मंदिर में पूजा करने वाले पारसी नहीं हो सकते थे।[261]

१८०० और १८१६ के बीच मध्य एशिया में यात्रा करते समय, जेम्स मोरियर (James Morier) वाराणसी के एक भारतीय हिंदू तीर्थयात्री से मिले, जो बाकू के महाज्वाला जी के मंदिर की तीर्थ यात्रा के बाद घर लौट रहा था। इस तीर्थयात्री के बारे में अनौपचारिक चर्चा करते हुए वे उल्लेख करते हैं कि

> आगे की यात्रा करते हुए, हम एक बिलकुल अकेले भारतीय से मिले, जो अपनी तीर्थ यात्रा संपन्न करके बाकू से बनारस लौट रहा था, एक छड़ी के अलावा उसके पास कोई अन्य हथियार नहीं था। वह आश्चर्यजनक उत्साह के साथ चल रहा था और उसने हमारा बड़े अच्छे-हास्य के साथ अभिवादन किया,

---

[260]George Forster, *Journey from Bengal to England: Through the Northern Part of India, Kashmire, Afghanistan, and Persia and into Russia by the Caspian Sea*, vol. II, London: A. Faulder and Son, 1798: 262.

[261]देखें A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 50.

> जैसे कि कोई अच्छा कार्य करने के लिये खुद से बेहद संतुष्ट हो। मेरा मानना है कि ये धार्मिक करतब भारतीय चरित्र की एक खास विशेषता हैं; क्योंकि दूसरों की संगति में एक कारवां के साथ मक्का की यात्रा करने वाले के दिमाग में और उसके दिमाग में एक बहुत बड़ा अंतर होता है क्योंकि वह एकांत व दूरी से निराश नहीं होता, उदाहरण से हतोत्साह नहीं होता, और अपने उद्देश्य में अंत तक डटा रहता है।[262]

१८२५-१८२६ के दौरान एडवर्ड आइख़वाल्ड (Eduard Eichwald) की यात्रा और मंदिर के उनके विवरण के बारे में बात करते हुए, ए.वी. विलियम्स जैक्सन (A.V. Williams Jackson) का कहना है कि मंदिर "में नग्न उपासकों की उपस्थिति..., उनका [आइख़वाल्ड] भारत में कांगड़ा मंदिर के संदर्भ में उल्लेख, और सबसे बढ़कर, मठ में एक जगह का उल्लेख जहां भक्त अपने सभी मृतकों के शरीर का दाह संस्कर करते हैं, इन सब तथ्यों ने उस समय मंदिर के हिंदू स्वरूप के बारे में कोई संदेह नहीं छोड़ा।"[263] आइख़वाल्ड ने कहा है कि उनके समय में मंदिर का विशेष संरक्षक एक अमीर भारतीय हिंदू था जिसे ओतुम्द्शेम (Otumdshem) आत्मा/उत्तम सेन (?) के नाम से जाना जाता था, जो कैस्पियन समुद्र में मत्स्य पालन करता थे और अधिकतर अस्त्रखान में रहत था।[264] मंदिर में विभिन्न ब्राह्मण-हिंदू समारोहों के बारे में बात करते हुए, आइख़वाल्ड कहते हैं:

> So eben bliesen die Indier, als wir in ihre Zellen traten, in eine Tritonmuschel und zogen zugleich die Gloche in der Halle, als Zeichen, dafs sie ihre Andacht halten wollten. Einige, wie der Oberpriester, nahmen einen halben Bogen Papier hervor, auf den ein indisches Gebet geschrieben war, das sie ablasen und dabei unaufhörlich den Kopf bewegten. Nur beim Oberpriester versammeln sich mitunter einige andere Indier, um mit ihm ihre Götzen anzubetem; sonst verrichtet ein jeder das Gebet in seiner Zelle und kommt nie in die eines andern....
>
> Die meisten safsen an ihrem Feuer, Schüren es an und beobachteten dabei ein tiefes Stillschweigen, andere schlugen beide Hände über den Kopf zusammen und sagten ihre Gebete her, indem sie ihn beständig bewegten. In ihrer Andacht lassen sie sich von Keinem stören; daher konnten wir ungehindert die Zellen eines jeden ansehen, ohne dafs er seine Andacht underbrach. Der Indier sehen das Feuer als etwas Heiliges oder als die Gottheit selbst an, den auf meine Frage, ob Feuer und Gott verschieden wäre, sagten sie, es sey beides gleich; Feuer naunten sie bald mit dem arabischen Worte Nur, bald aush Aghan, wie es persisch heifst; beides sey Rahma (die Gottheit) oder Krischni, von welchem leztern Worte ich jedoch keine nähere Bedeutung weifs; es sollte auch indisch seyn. Da mir jedoch ein guter Dolmetscher fehlte, so konnte ich nicht bestimmt erfahren, ob sie das Feuer selbst für göttlich halten oder nicht; einer schien mir nur den Ort, wo das Feuer brennt, und den sie Atesch-gah, d. h. Feuer-ort nennen, für heilig zu bezeichnen, in ihren heiligen Büchern sey ihnen grade diefs Atesch-gah bei Baku angezeigt, als einen Ort, wohin sie wallfahrten müfsten, um Gott anzubeten. Doch glauben sie nicht bestimmt, dafs grade Gott hier

---

[262]James Morier, *Second Journey through Persia, Armenia, and Asia Minor* 2. 243, London: Longman, Hurst, Rees, Orme, and Brown, 1818: 243.

[263]A.V. Williams Jackson, *पूर्व उद्धृत,* 50.

[264]Eduard Eichwald, *Reise auf dem Caspischen Meeren unt in Den Kaukasus: unternommen in den jahren 1825-26,* Erste Abtheilung, Stuttgart und Tübingen: J.G. COTTA'schen Buchhandlung, 1834: 348; Jonas Hanway, *An Historical Account of the British Trade over the Caspian Sea: With a Journal of Travels from London through Russia into Persian; and back again through Russia, German and Holland*, vol. I, London: Hanway, 1753: 377.

vorzüglich wohne, den er wohne überall; auch wüfsten sie nicht, welche Gestalt Gott habe, doch zeichneten sie ihn unter mancherlei Formen und verehrten in diesen ihre Gottheit.[265]

हिंदी अनुवाद–

अभी, जब हम उनकी कोठरी में दाखिल हुए, तो भारतीयों ने एक शंख बजाया और साथ ही हॉल में घंटी को बजाने के लिये उसकी रस्सी भी खींची[266] एक संकेत के रूप में कि उनकी प्रार्थना आरम्भ हो रही है। कुछ ने, महायाजक की तरह, कागज का आधा पन्ना निकाल लिया, जिस पर एक भारतीय प्रार्थना लिखी हुई थी, जिसे वे पढ़ते हुए सिर हिलाते रहे। केवल मुख्य पुजारी के साथ कुछ अन्य भारतीय उसके साथ अपनी मूर्तियों की पूजा करने के लिये इकट्ठा होते हैं; वरना हर कोई अपनी कोठरी में ही प्रार्थना करता है और कभी किसी दूसरे की कोठरी में नहीं जाता...

अधिकांश गहरी खामोशी के साथ अपनी अग्नि में भरपूर आहुतियां डाल कर उसे भड़काते रहे, दूसरों ने अपने दोनों हाथों को सिर के ऊपर कर लगातार ताली बजाते हुए अपनी प्रार्थना की। अपनी भक्ति में वे किसी को विघ्न नहीं डालने देते। इसलिये हम उनकी प्रार्थना को बाधित किये बिना हर किसी की कोठरी को स्वतंत्र रूप से देखने में सक्षम थे। भारतीय अग्नि को पवित्र या स्वयं देवता के रूप में देखते हैं, और जब मैंने पूछा कि क्या अग्नि और भगवान अलग हैं, तो उन्होंने कहा कि दोनों एक ही हैं। वे कभी-कभी अग्नि के लिये अरबी शब्द *नूर* का प्रयोग करते हैं और कभी-कभी इसे अघान भी कहते हैं, जैसा कि फ़ारसी में कहा जाता है, दोनों राहमा (राम, देवता) या कृषनी, (कृष्ण) हैं, जिनमें से अंतिम वाले शब्द के लिये मेरे पास कोई और अर्थ नहीं है; यह भी भारतीय ही होना चाहिए। हालाँकि, चूँकि मेरे पास एक अच्छे दुभाषिए की कमी थी, मैं निश्चित नहीं कर सका कि वे अग्नि को स्वयं दिव्य मानते हैं या नहीं; मुझे वह एक ऐसा स्थान प्रतीत होता था जहाँ आग जलती है, और आतश-गाह अर्थात् अग्नि स्थान को उनकी पवित्र पुस्तकों में पवित्र माना जाता है। उनकी पवित्र पुस्तकों में यह संकेत दिया गया था कि बाकू के पास आतश-गाह एक ऐसा स्थान था जहां उन्हें भगवान की पूजा करने के लिये तीर्थयात्रा पर जाना चाहिए। लेकिन वे नहीं जानते कि भगवान यहाँ विशेष रूप से रहते हैं, क्योंकि वे हर जगह रहते हैं; लेकिन उन्होंने उसे विभिन्न रूपों में चित्रित किया और उन्हीं में अपने देवता की पूजा की [जर्मन से हिंदी अनुवाद मेरा है]।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक ऐलेग्जाँद्र दुमा (Alexandre Dumas १८०२ – १८७०) ने नवंबर १८५८ में मंदिर का दौरा किया था। मंदिर में किये जाने वाले अनुष्ठानों के बारे में बात करते हुए, दुमा ने लिखा है कि यहां एक हिंदू अनुष्ठान (*इयुन मेस्स हिंदू, une messe hindoue*) किया जा रहा था। [267] दुमा ने साधुओं द्वारा बार-बार दिव्य नाम ब्रह्मा का जाप, झांझ का उपयोग, और पूजा के समय साष्टांग प्रणाम करने की भी बात की है।[268] ये स्पष्ट रूप से ब्राह्मण-हिंदू प्रथाएं हैं।

---

[265]Eduard Eichwald, *पूर्व उद्धृत,* 179-180.

[266]बाद में, इस घंटी के बारे में बात करते हुए, ए.वी. विलियम्स जैक्सन कहते हैं: "एक अजीब संयोग से, घंटी जो कभी छत में दिखाई देने वाले हुक से ऊपर लटकती थी, और जो मूर्तिपूजकों के अनुष्ठान की प्रगति को चिह्नित करने के लिये बजाई जाती थी, अब एक रूसी चर्च के घंटाघर में झूलती है जो रविवार की सेवा के लिये अपने उपासकों को बुलाने के लिये प्रयोग में लाई जाती है" (A.V. Williams Jackson, *पूर्व उद्धृत* 57)।

[267]Alexandre Dumas, *Le Caucase: Impressions de voyage,* Nouvelle edition 2006, Montreal: Le Joyeux Roger, 1859: 25.

[268]देखें *पूर्वोक्त.* 25-30.

आकृति संख्या १९ – बीसवीं सदी की शुरुआत में अन्वेषण कूप खनन संयंत्र
(स्रोत–https://en.wikipedia.org/wiki/Ateshgah_of_Baku#/media/File:Заброшенный_Атешгях,_начало_20_в..JPG).

१९ सितंबर १८६३ को अग्नि मंदिर का दौरा करने वाले अंग्रेज जॉन अशर (John Ussher) ने उल्लेख किया है कि

> मंदिर के पास आने पर, हम जर्मन तेल-खोजकर्ताओं द्वारा हाल ही में नाफ्ता के उपयोग के उद्देश्य से लगाए गए एक कारख़ाने के पास से गुजरे। मैनचेस्टेर से आई अंग्रेजी मशीनरी, सक्रिय होने की प्रतीक्षा में, बड़े अजीब और अधार्मिक ढंग से एक प्राचीन व रहस्यमय धर्म के पवित्र स्थल के पास ज़मीन पर बिखरी पड़ी थी।
>
> मंदिर में प्रवेश करने पर, हमने खुद को एक आंगन में पाया, जिसके चारों ओर कम-ऊंचाई की कोठरियों की एक पंक्ति थी, जिन पर सफेदी की गई थी, और जिनमें प्रकाश व प्रवेश केवल ठिगने दरवाजों से ही जा सकते थे। तीन सीढ़ियों वाला एक पत्थर का मंच, आंगन के केंद्र में स्थित था, जो चार छोटे, मज़बूत, व चौकोर स्तंभों के लिये एक आसन का काम कर रहा था, जिन पर एक गुंबज था; एक और स्तंभ एक कोने में स्थित था। ये सभी खोखले थे, और जमीन से गैस का संचालन करने के लिये नलके के रूप में काम करते थे। केंद्र में, गुंबज के पास, चबूतरे के बीच में एक छेद से ज्वलनशील गैस का एक फव्वारा निकल रहा था, और लगातार और स्पष्ट रूप से जल रहा था। आसपास के क्षेत्र में कहीं भी, मंदिर से एक मील की दूरी तक, एक फुट की गहराई तक खुदाई करने पर, गैस बाहर निकलती है और तुरंत प्रज्वलित होती है। ...
>
> वर्तमान मंदिर काफी आधुनिक इमारत है और चाहे यह थोड़ा छोटा है, लेकिन यहाँ के थोड़े से उपासक जो कोठरियों में रहते हैं उनके लिये पर्याप्त है। प्रत्येक छोटे दरवाजे पर एक शिलालेख है। अंदर जाने पर एक नीची शय्या दिखाई पड़ती है, जिसके सिर की ओर ज़मीन में एक छेद है। एक तरफ एक छोटी वेदी है, जो तीन चरणों, जिनमें से प्रत्येक पीतल और कांसे की मूर्तियों से ढका हुआ है, से बनी हुई है। पास में गैस का एक और फव्वारा जल रहा है।

वर्तमान निवासी संख्या में केवल दो थे, दोनों भारत से थे, एक कलकत्ता का मूल निवासी था, दूसरा दिल्ली का था। वे दोनों बूढ़े थे; उनमें से एक वहाँ बहुत वर्षों से रह रहा था, दूसरा केवल एक साल पहले ही आया था, लेकिन पवित्र स्थान पर अपने अंतिम दिन बिताने की आशा रखता था। उन्होंने सामान्य भारतीय पोशाक और पगड़ी पहनी थी, इसके अलावा आंखों के बीच पीले रंग की एक लकीर खींचे हुए थे। हमारे अनुरोध पर उन्होंने अपनी पूजा के कुछ रूप दिखाए, जिसमें इन वेदियों के सामने साष्टांग प्रणाम करना, वैकल्पिक रूप से एक लय में मंत्र गाना, और साथ-साथ झांझ बजाना शामिल थे। इन अभ्यासों में लगभग आधा घंटा बिताने के बाद उन्होंने कुछ मिश्री खाई, जिस में से कुछ उन्होंने हमें भी भेंट कीं। वे देखने में बहुत निर्धन लग रहे थे, लेकिन फिर भी उन्होंने हम से न तो भिक्षा मांगी और न ही किसी भी तरह की कोई सहायता।[269]

आकृति संख्या २० – १८६० ई. में मंदिर में पूजा करते दो उदासी साधु https://en.wikipedia.org/wiki/Ateshgah_of_Baku#/media/File:USSHER(1865)_p012_BAKU,_FIRE_TEMPLE.jpg

दो-निवासी साधुओं को उशर की किताब के रंगीन मुखचित्र में दर्शाया गया है, जो वेदी के पास पत्थर और गारे की पीठिका पर पूरी तरह से ब्राह्मणीय-हिंदू होने के समान अपने शाम के अनुष्ठान के पालन में तल्लीन हैं जिसे, जैसी कि वह है, प्राकृतिक गैस से रोशन प्रदर्शित किया गया है।[270]

---

[269]John Ussher, *Journey from London to Persepolis: Including Wanderings in Daghestan, Georgia, Armenia, Kurdistan, Mesopotamia, and Persia*, London: Hurst and Blackett Publishers, 1865: 207-208.

[270]देखें *पूर्वोक्त.*

१८६६ और १८८१ में दो बार बाकू का दौरा करने वाले कर्नल सी.ई. स्ट्युर्ट (C.E. Stewart) ने जोर देकर कहा है कि "बाकू का प्रांगण कई मायनों में पंजाबी धर्मशाला के समान था।"[271] १८६६ की अपनी यात्रा का विवरण देते हुए वे कहते हैं

> १८६६ में एक हिंदू पुजारी अकेला अग्नि की देखभाल कर रहा था, हालांकि पहले हमेशा तीन हिंदू पुजारी इसकी देखभाल कर रहे थे। लेकिन मेरी यात्रा से कुछ समय पहले धर्मशाला के वरिष्ठ पुजारी या उपाध्याय, यदि मैं उन्हें ऐसा कह सकता हूं, की हिंदू भक्तों और मंदिर में अन्य आगंतुकों से एकत्र किये गए धन के लिये तातारों (Tartars) ने हत्या कर दी थी। पड़ोस के मुसलमानों के लिये यह एक पूजा की जगह न हो कर, एक अंधविश्वासी प्रकार की जिज्ञासा का स्रोत था। मठाधीश की हत्या के बाद जीवित बचे पुजारियों में एक कहीं चला गया, लेकिन तीसरा अग्नि की देखभाल करने के लिये बना रहा ... बाड़े का केंद्र भगवान शिव को समर्पित था, जैसा कि शिव के लोहे के त्रिशूल द्वारा दिखाया गया था, जिसे छत पर स्थापित किया हुआ था। ... जो हिंदू पुजारी रह गया था, वह मुझे पंजाबी बोलते हुए पाकर बहुत खुश हुआ, जो उसकी मूल भाषा थी। वह दिल्ली के उत्तर में किसी जगह से आया था, और कुछ समय के लिये कांगड़ा के पास ज्वालामुखी मंदिर में पुजारी रह चुका था। उसने बताया कि उसने इस महान ज्वाला जी के बारे में उन पुजारियों से सुना था, जो यहां तीर्थ यात्रा पर आए थे और कई वर्षों तक यहीं रहे।[272]
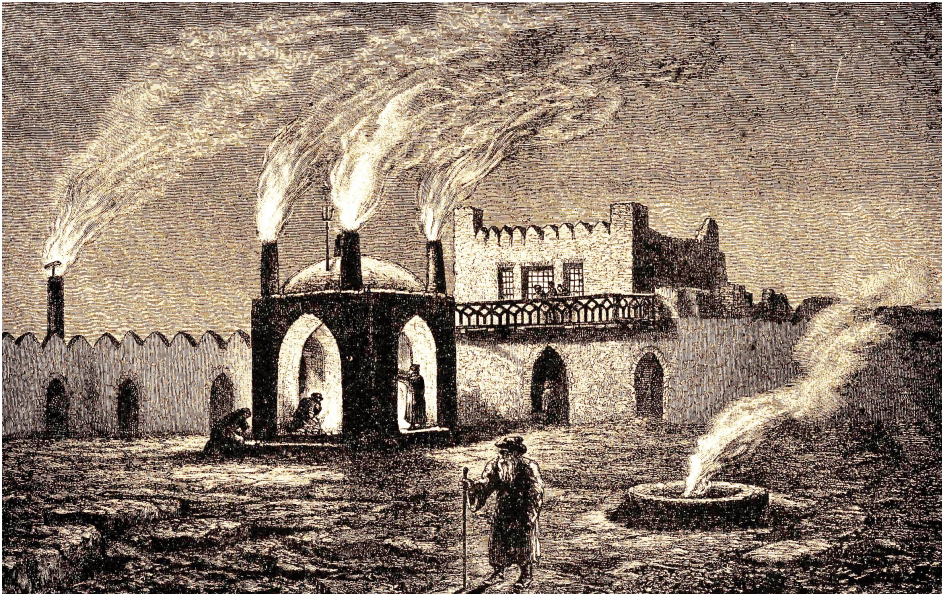
आकृति संख्या २१– *ब्रोकहॉस और एफ्रॉन इनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी (Brockhaus and Efron Encyclopedic Dictionary)* (सेंट पीटर्सबर्ग, १८९०-१९०७) में सात अग्नियों के साथ मंदिर का चित्रण। https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Brockhaus_and_Efron_Encyclopedic_Dictionary_b4_738-0.jpg

---

[271]C.E. Stewart, "Account of the Hindu Fire-Temple at Baku, in the Trans-Caucasus Province of Russia," *The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, April 1897: 311-312.

[272] *पूर्वोक्त.*

१८८१ में बाकू की अपनी दूसरी यात्रा के दौरान, स्ट्युर्ट ने कई बार मंदिर का दौरा किया। इस समय, उन्होंने उल्लेख किया कि वह

> आग बुझ गई थी और कोई पुजारी नहीं मिला। निकटस्थ तेलशोधक कारखाने का प्रभारी अभियंता मेरे साथ मंदिर गया, जिसकी चाबी उसके पास थी। उसने आग जलाई, और बाहर निकलने पर उसे सावधानी से बुझा दिया, जैसा उसने कहा कि उसे अपने काम की भट्ठियों को गर्म करने के लिये सारी प्राकृतिक पेट्रोलियम गैस की आवश्यकता थी। उसने मुझे यह भी बताया कि मेरी पिछली यात्रा के बाद एक नया पुजारी भारत से आया था और कुछ समय के लिये उसने मंदिर का कार्यभार भी संभाला था, लेकिन कुछ समय बाद वह चला गया। इस अवसर पर मुझे आग के पास फर्श पर एक छोटी तांबे की पट्टी मिली, जिस पर गहराई से उकेरे गए हाथी के सिर वाले भगवान गणपति की एक आकृति थी। ... इसमें कोई शक नहीं कि यह मंदिर पारसी मंदिर नहीं है और न ही कभी था। ... पारसी मंदिरों को हमेशा ऊंचे टीलों पर बनाया जाता है, न कि किसी मैदान पर जैसा कि बाकू मंदिर है। बैरन थिएलमैन (Baron Thielman) अपनी पुस्तक में बाकू मंदिर की बात करते हैं जैसे कि यह एक पारसी मंदिर था, लेकिन मुझे लगता है कि वे गलत हैं। जिससे मैं १८६६ में मिला था, वे स्पष्ट रूप से उसी पुजारी को मिले थे, लेकिन वे केवल दुभाषिए के माध्यम से उससे बात करने में सक्षम थे, जबकि मैंने उस व्यक्ति से उसकी मूल भाषा में बात की थी, और उसे ठीक से देखा था।
>
> खुरासान के खफ्फ (Khaff) में, अफगान सीमा के पास, मैं भारत के दो हिंदू फकीरों से मिला, जिन्होंने मुझे बताया कि वे बाकू ज्वाला जी की तीर्थ यात्रा पर जा कहे थे...
>
> मुझे एक हिंदू फकीर द्वारा सूचित किया गया, जिसे मैं फारस की अफगान सीमा के पास मिला, कि वह न केवल बाकू में ज्वाला जी बल्कि एक और हिंदू अग्नि मंदिर के भी दर्शन करेगा, जिसके बारे में उसने सुना था कि यह बोखारा क्षेत्र में था।[273]

संयुक्त राज्य अमेरिका के एक दूतावास-अधिकारी द्वारा १८८७ की रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि बाकू शहर से, "छह या सात मील दक्षिण-पूर्व में सुरखानी है, जो भारत के अग्नि-उपासकों के एक बहुत प्राचीन मठ का स्थान है, जो अब खंडहर बन गया है, लेकिन यहां पर अभी भी कभी-कभी ये धार्मिक उत्साही लोग रहने लगते हैं, जो चिरस्थायी आग के मंदिर में श्रद्धांजलि देने के लिये भारत से लंबी और थका देने वाली तीर्थयात्रा करते हैं, जो कि प्राकृतिक गैस का एक छोटा सा फव्वारा है, जो अब लगभग विलुप्त हो चुका है।"[274]

रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के मानद सचिव आर.एन. कस्ट् (R.N. Cust) ने जनवरी १८९७ में सोसाइटी की पत्रिका में मंदिर की स्थिति और उसके शिलालेखों के बारे में अपनी टिप्पणी में लिखा- "यदि रूसी सरकार द्वारा इन शिलालेखों के हित के लिये कुछ कदम नहीं उठाए गए, इमारत शायद गिरा दी जाए, इसकी सामग्री पेट्रोलियम भंडार बनाने के लिये प्रयोग कर ली की जाए, और शिलालेख गायब हो जाएं। इस पत्र को प्रकाशित करने का एक

---

[273] *पूर्वोक्त.* 312-314.

[274] Anonymous, *Reports from the Consuls of the United States*, no. 74, February, Department of State, Washington: Government Printing Press, 1887: 407.

तातकालिक लाभ यह होगा कि रूसी विद्वानों का ध्यान इस विषय की ओर आकर्षित होगा।"[275] शायद कस्ट् द्वारा लिखित चेतावनीपरक टिप्पणी ने सुरखानी में अन्वेषण संयंत्र स्थापित करने और भण्डार बनाने के इच्छुक लोगों द्वारा मंदिर को नष्ट होने से बचाने में मदद की। फिर भी, स्थायी रूप से बुझ जाने वाली अनन्त आग के रूप में परिहार्य क्षति हुई, दो शिलालेख खो गए, और कुछ हिस्सों के पुनर्नवीकरण और जीर्णोद्धार के नाम पर मंदिर का पारसीकरण कर दिया गया।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह मंदिर एक उदासी अखाड़ा है। तेईस शिलालेख इस तथ्य के सब से बड़े गवाह हैं। गर्भगृह के पूर्वी तोरण के ऊपर स्थापित देवनागरी शिलालेख संस्कृत में गणेश और ज्वाला जी का आह्वान करता है। इस शिलालेख के ऊपरी भाग में सूर्य, दो त्रिशूल, एक अनुष्ठान घंटी, एक यज्ञ-अग्नि-वेदी, और हिंदू स्वस्तिक (तिरछे सिरों वाले बिंदुओं से युक्त) को दर्शाया गया है। आठ शिलालेखों में हिंदू स्वस्तिक बना हुआ है। पंद्रह शिलालेख ॐ से और अठारह शिलालेख *श्री गणेशाय नमः* के साथ शुरू होते हैं। देवी ज्वाला जी का उल्लेख बारह शिलालेखों में सोलह बार किया गया है। दो शिलालेखों में *रामजी सत* (शाश्वत राम) के आह्वान हैं और दो अन्य शिलालेखों में गुरुमुखी लिपि में *जपुजी साहब* का पहला श्लोक *(मूल मंत्र)* दिया गया है। एक अन्य शिलालेख बाबा नानक को समर्पित है, जिनके बड़े पुत्र बाबा श्रीचंद ने उदासी संप्रदाय की स्थापना की थी।

[275] Robert Needham Cust, "Note," *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, April 1897: 315.

अध्याय ६
बाबा नानक, बाबा श्रीचंद, और उदासी परंपरा

भारतीय तपस्वी परंपरा में, यह माना जाता है कि गहन आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करने के लिये एक व्यक्ति को साधारण मनुष्यों की सांसारिकता से दूर जीवन व्यतीत करते हुए गंभीर तपस्या करनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, पूर्ण एकांत और विपरीततम परिस्थितियों में जीवन जीने के लिये उच्चतम श्रेणी के मानसिक और शारीरिक अनुशासन की आवश्यकता होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुराखानी के अग्नि मंदिर के निवासियों ने इसी प्रकार की जीवन शैली का पालन किया है।

इस बात के संकेत मिलते हैं कि इस अग्नि-मंदिर में दो शिलापट्ट गुरुमुखी (कोठरी संख्या ७ और १० के प्रवेश-द्वार पर) और एक देवनागरी लिपि में (कोठरी संख्या १२ के प्रवेश-द्वार पर) बाबा नानक के बाकू आगमन की स्मृति में स्थापित हैं जब वे अपनी चौथी उदासी (आध्यात्मिक यात्रा; लगभग १५११-१५२१ ई) के दौरान मध्य पूर्व से होते हुए फारस व मध्य एशिया के रास्ते से लौट रहे थे। बाबा नानक जो बिना किसी संदेह के भारतीय उपमहाद्वीप में पैदा हुए सबसे महान यात्री थे,[276] उनकी बाकू और उसके आसपास की यात्रा का वर्णन ज्ञानी ज्ञान सिंह ने अपनी *त्वारीख गुरु खालसा (इतिहास श्री गुरु नानक देव जी)* में इस प्रकार किया है–

> ਓਥੋਂ ਦੇ (ਬਗ਼ਦਾਦ) ਹਾਕਮ ਸਮੇਤ ਸਭਨਾਂ ਨੂੰ ਆਦਮੀ ਦੇ ਨਾ ਮਾਰਣ ਦੀ ਸੌਂਹ ਪਵਾ ਕੇ ਰੱਬ ਦਾ ਭੈਅ ਭਗਤੀ ਦ੍ਰਿੜ੍ਹ ਕਰ ਬਾਬਾ ਜੀ ਅੱਗੇ ਈਰਾਨ ਮੁਲਕ ਵਿੱਚ ਜਾ ਫਿਰੇ ਜਿੱਥੇ ਜ਼ਰਦਸਤ ਪੈਗੰਬਰ ਪਾਰਸੀਆਂ ਦੇ ਮਜ਼ਹਬ ਦਾ ਅਚਾਰਯ ਹੋਯਾ ਹੈ। ਪਹਿਲੇ ਏਹ ਸਾਰਾ ਦੇਸ ਅਗਨਿ ਹੋਤ੍ਰੀ ਗਊ ਪੂਜਕ ਪਾਰਸੀਆਂ ਦਾ ਸੀ।... ਕਰਾਕਰ, ਅਸਫਾਹਨ, ਨੈਰਸੀ, ਬੇਲਸ ਆਦਿਕ ਸ਼ਹਿਰਾਂ ਨਗਰਾਂ ਜੰਗਲਾਂ ਦਾ ਸੈਲ ਕਰਦੇ ਅਤੇ ਉਸ ਦੇਸ ਦੇ ਬੇਅੰਤ ਪੁਰਖਾਂ ਨੂੰ ਈਸ੍ਵਰ ਦੀ ਭਗਤੀ ਵਿੱਚ ਜੋੜਦੇ ਹੋਏ (ਉਰਗੰਜ ਦੇਸ) ਰੂਸ ਦੇ ਰਾਜ ਵਿੱਚ ਜਾ ਫਿਰੇ। ਇਹ ਦੇਸ ਈਰਾਨ ਤੇ ਤੁਰਕਿਸਤਾਨ ਦੇ ਵਿਚਕਾਰ ਹੈ।... ਇੱਥੇ ਇੱਕ ਪਹਾੜੀ ਵਿਚੋਂ ਬਹੁਤ ਜਗ੍ਹਾ ਜ੍ਵਾਲਾ ਮੁਖੀ ਦੇ ਮੰਦਰ ਵਾਂਗੂੰ ਅੱਗ ਦੀਆਂ ਲਾਟਾਂ ਨਿਕਲਦੀਆਂ ਹਨ। ਉਸ ਨੂੰ ਮਹਾਂਜ੍ਵਾਲਾ ਆਖਦੇ ਹਨ। ਉਸ ਪਹਾੜ ਦੀ ਲਹਿਰ ਬਹਿਰ ਸਾਥੀਆਂ ਨੂੰ ਦਿਖਾ ਕੇ ਉੱਥੋਂ ਚਾਰ ਮੰਜਲਾਂ ਗੁਲੇਲਾਲ ਨਾਮ ਪਰਬਤ ਦਾ ਆਨੰਦ ਜਾ ਲੀਤਾ।[277]

---

[276]कुछ विद्वानों ने यह दावा किया है कि मध्य पूर्व या मध्य एशिया में गुरु नानक की यात्रा का कोई सबूत या उल्लेख इस क्षेत्र के किसी भी साहित्यिक या पुरालेखीय अभिलेखों में नहीं मिला है। इन विद्वानों का यह भी कहना है कि अतिरिक्त शिलालेखों के दावे किये गए हैं, लेकिन कोई भी उन्हें ढूंढ और सत्यापित नहीं कर पाया है (देखें, McLeod 2004: 127-131, 2007: 42-44; Callewaert and Snell 1994: 26-27; David. N Lorenzen, *Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action*, New York: SUNY Press, 1995: 41-42; V.L. Ménage, "The "Gurū Nānak" Inscription at Baghdad," *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland,* no. 1, 1979: 16-21)। हालाँकि, जैसा कि हम देखेंगे, बाकू के ज्वाला जी के मंदिर में बाबा नानक के आगमन के पर्याप्त अभिलेखीय प्रमाण हैं।

[277]http://www.ik13.com/PDFS/TWK_1.pdf. 228। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

देवनागरी में लिप्यंतरण–

> ओथों (बग़दाद) दे हाकम समेत सभनां नूं आदमी दे ना मारण दी सौंह पवा के रब्ब दा भैअ भगती दृढ़ कर बाबा जी अग्गे ईरान मुलक विच्च जा फिरे जित्थे ज़रदसत पैगंबर पारसीआं दे मज़हब दा अचारय होया है। पहिले एह सारा देस अगनि होत्री गऊ पूजक पारसीआं दा सी।... कराकर, असफाहन, नैरसी, बेलस आदिक शहिरां नगरां जंगलां दा सैल करदे अते उस देस दे बेअंत पुरखां नूं ईश्वर दी भगती विच्च जोड़दे होए (उरगंज देस) रूस दे राज विच्च जा फिरे। इह देस ईरान ते तुरकिसतान दे विचकार है।... इत्थे इक्क पहाड़ी विच्चों बहुत जगहा ज्वाला मुखी दे मंदर वांगूं अग्ग दीआं लाटां निकलदीआं हन। उस नूं महांज्वाला आखदे हन। उस पहाड़ दी लहिर बहिर साथीआं नूं दिखा के उथों चार मंजलां गुलेलाल नाम परबत दा आनंद जा लीता।

हिंदी अनुवाद–

> वहाँ के (बग़दाद) हाकिम समेत सभी को आदमी को नहीं मारने की शपथ दिला कर ईश्वर का भय, भक्ति दृढ़ कर, बाबा जी आगे ईरान मुल्क में जा पहुँचे जहां पर ज़रदस्त पैग़म्बर पारसियों के मजहब का आचार्य हुआ है। पहले यह पूरा देश अग्निहोत्री, गाय पूजक पारसियों का था।... कराकर, असफहान, नैरसी, बेलस आदि शहरों, नगरों, जंगलों की सैर करते हुए और उस देश के बेअंत पुरुषों को ईश्वर की भक्ति से जोड़ते हुए (उरगंज देश) रूस के राज्य में जा पहुँचे। यह देश ईरान तथा तुर्किस्तान के बीच स्थित है। ... यहाँ एक पहाड़ी में बहुत जगह पर ज्वाला मुखी के मंदिर की तरह आग की लपटें निकलती हैं। इसे महा ज्वाला कहते हैं। इस पहाड़ की लहर बहर साथियों को दिखा कर वहाँ से चार मंज़िलों पर गुलेलाल पर्वत का आनंद जा लिया।

चूँकि बाबा नानक और उनके बड़े बेटे बाबा श्रीचंद के उदासी भक्तों द्वारा इन शिलालेखों को स्थापित किया गया था, उदासी सम्प्रदाय के उद्भव एवं उसके विकास को देखना संदर्भ के बाहर नहीं होगा। '*उदासी*' शब्द संस्कृत शब्द "*उदास*' या '*उदासिन्*' से लिया गया है, जिस का अभिप्राय संन्यास की परम्परा में आध्यात्मिक रुझान वाले उस याचक से है जो सांसारिक बंधनों से उदासीन हो। उदासी परम्परा की स्थापना, बाबा नानक के बड़े सुपुत्र, बाबा श्रीचंद (जन्म १४९४ ई०) ने की थी। बाबा श्रीचंद न तो एक स्थान पर स्थाई रूप से रहे और न ही उन्होंने किसी स्थाई निवास की स्थापना ही की। उन्होंने तप और ब्रह्मचर्य का प्रचार किया।[278]

उदासियों का दर्शन आदि शंकराचार्य द्वारा प्रचारित अद्वैत वेदांत[279] है। उदासी न केवल संस्कृत के विद्वान होते हैं बल्कि वे पारम्परिक भारतीय चिकित्सा, विशेषकर आयुर्वेद, के विशेषज्ञ भी होते हैं। वे गुरु नानक का सम्मान करते हैं, उनके संदेश का प्रचार करते हैं, तथा सिख गुरुओं की बाणी का पाठ करते हैं, लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने अपनी अलग पहचान भी बना कर

---

[278]Pashaura Singh and Louis E. Fenech, *The Oxford Handbook of Sikh Studies*, Oxford: Oxford University Press, 2014: 375–376.

[279]अद्वैत वेदांत भारतीय परंपरा में आध्यात्मिक बोध की एक उत्कृष्ट प्रणाली है जो इस विचार में विश्वास करती है कि केवल ब्रह्मन् ही अंततः वास्तविक है, अभूतपूर्व क्षणिक संसार ब्रह्मन् का एक भ्रामक रूप (माया) है, और यथार्थ आत्मन् ब्रह्मन् से अलग नहीं है (Eliot Deutsch, *Advaita Vedānta: A Philosophical Reconstruction*, Honolulu: University of Hawaii Press, 1973: 3 fn 2)।

रखी है। उदासी विशेष रूप से त्रिशक्ति (ॐ, स्वस्तिक, और त्रिशूल) को पवित्र प्रतीकों के रूप में मानते हैं और पंचायतन अर्थात् पाँच हिंदू देवों- शिव, विष्णु, दुर्गा, गणेश, तथा सूर्य[280] को पूजते हैं। पंचायतन की पूजा और त्रिशक्ति के प्रति श्रद्धा का उल्लेख बाकू के महाज्वाला जी के मंदिर में विभिन्न जगहों पर- विशेषकर देवनागरी व लांडा शिलालेखों में- मिलता है।

आकृति संख्या २२– उदासी साधु अग्नि की पूजा करते समय

प्राचीन काल से, तपस्या की प्रणाली में बड़े पैमाने पर दो प्रकार के समूह अर्थात् *आरामिक/ विहारिक* (आरामों, विहारों, मठों, अथवा डेरों में रहने वाले) और *अरञ्ञक/आरण्यक* (जंगलों, गुफाओं, अथवा रेगिस्तान में रहने वाले शामिल हैं। बाबा नानक ने गृहस्थ-संन्यासी अवधारणा की स्थापना करके संन्यास की संस्था में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया। यह एक तथ्य है कि भले ही बाबा नानक ने लम्बे समय तक गृहहीन संन्यासी का जीवन व्यतीत किया किंतु उन्होंने दूसरों को ऐसे जीवन की सलाह नहीं दी, क्योंकि उनके अनुसार, एक फ़क़ीर का चोला व धुतकार्य अपने आप में शुद्धता के जीवन का प्रमाण नहीं हैं। इस प्रकार, ऐसी सोच प्रणाली के अनुसार, बाबा नानक ने इस पक्ष का समर्थन किया कि लोग एक आम व्यक्ति का जीवन व्यतीत करते हुए भी सदाचारी रह सकते हैं, बल्कि रेगिस्तान या पहाड़ों में एकांत के जीवन से भी बेहतर कर सकते हैं।[281] दूसरे शब्दों में, इस तरह की विचारधारा के अनुसार, बाबा नानक ने पारिवारिक

---

[280]James Lochtefeld, "Asceticism," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: A-M, vol. 1, New York: The Rosen Publishing Group: 61; "Panchayatana," पूर्वोक्त. 494.

[281]C.H. Payne, *A Short History of the Sikhs,* 2nd ed., Patiala: Department of Languages, Punjabi University, 1970: 27-28.

जीवन के महत्व पर विशेष ज़ोर दिया और उन्होंने स्पष्ट रूप से पृथकतामय एकांत के जीवन व सांसारिक मामलों से उदासीनता को ख़ारिज किया। इस प्रकार, अपनी अंतिम व चतुर्थ उदासी से लौटने के पश्चात्, गुरु नानक देव ने एक गृहस्थ के वस्त्र धारण किये और अपना उदासी चोला त्याग दिया। इस विचारधारा का अध्ययन करने वाले कुछ विद्वानों ने संकेत दिया है कि धुतगुणों के अनुसरण में बाबा श्रीचंद शायद एक सीमा से कुछ ज़्यादा ही आगे निकल गए[282] और परिणामस्वरूप, स्वयं को बाबा नामक द्वारा सुझाए गए आध्यात्मिकता के मार्ग से भिन्न दिशा में

---

[282]उदासी और अन्य प्रकार के संन्यासी खुद को काबू करने या शारीरिक संवेगों से पूरी तरह से छुटकारा पाने के लिये विभिन्न प्रकार के कठोर अभ्यास करते थे। इन में, आमतौर मौन पर व्रत लेने से लेकर अत्यधिक शारीरिक वैराग्य जैसे निम्नलिखित अभ्यास शामिल थे (देखें, Ganga Ram Garg, *Encyclopedia of the Hindu World*, vol. 3, New Delhi: Concept Publishing Company, 1992: 693):

१. *ऊर्ध्वबाहु शारीरिक मुद्रा* – भक्त लगातार अपने सिर के ऊपर अपनी बाहों को तब तक रखता है जब तक वे उस स्थिति में स्थायी रूप से स्थिर नहीं हो जातीं (*ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चित् शृणोति माम्*).
२. *ऊर्ध्व-मुखी शारीरिक मुद्रा* – गर्दन की मांसपेशियां सख्त होने तक चेहरे को ऊपर आसमान की ओर रखना।
३. *नीच-शीरसि शारीरिक मुद्रा* – पैरों को एक पेड़ की शाखा से बांध कर नीचे की ओर लटक जाना।
४. *नखी-मुष्ट शारीरिक मुद्रा* – मुट्ठी को स्थायी रूप से बंद रखा जाता है ताकि नाखून बढ कर मांस में घुंस जाएं। इस तरह की एक अन्य मुद्रा में तुलसी जैसे पवित्र पौधे वाले एक छोटे से बर्तन को तब तक पकड़ना था जब तक कि लोहे के फ्रेम की तरह उसके चारों ओर लंबे घुमावदार नाखून न हो जाएं।
५. *निश्-चलिन् शारीरिक मुद्रा* – वर्षों तक एक स्थान पर खड़े या बैठे रहना, इस हद तक कि पक्षी बालों में प्रतिष्ठित रूप से घोंसले बनालें, लताएँ पैरों पर चढ़ जाएं, और पैरों के चारों ओर बांबी बन जाए।
६. *खड़ाश्री शारीरिक मुद्रा* – किसी पेड़ या डण्डे का सहारा ले कर अथवा बिना उसके स्थाई रुप से सीधे खड़े रहना, कभी न लेटना, और यहां तक कि खड़े रह कर सोना।
७. *भूमिका शारीरिक मुद्रा* – भूमि पर सोने के लिये कभी भी बिस्तर या गद्दे का उपयोग न करना।
८. *कुटिलका शारीरिक मुद्रा* – कभी भी सीधे खड़े, बैठे या लेटे नहीं, बल्कि हमेशा झुके रहना।
९. *शंकुशी शारीरिक मुद्रा* – हर दिन घंटों कीलों के बिस्तर पर लेटे रहना।
१०. *छिन्नका शारीरिक मुद्रा* – स्वयं को विकृत, अपंग, या क्षत-विक्षत करना।
११. *पंच-तपस् शारीरिक मुद्रा* – चारों तरफ चार महान अग्नियां जला कर प्रखर धूप के नीचे बैठना।
१२. *मूलिकत्त शारीरिक मुद्रा* – एक पेड़ की जड़ पर रहना।
१३. *पंसुगुंठित शारीरिक मुद्रा* – गंदगी और धूल से लथपथ रहना।
१४. *जटिल शारीरिक मुद्रा* – उलझे हुए बाल पहने रहना।

इन तपस्वियों ने अपनी कठोर साधनाओं को किसी प्रकार के ध्यान या एकाग्रता (ध्यान/झान, समाधि) के साथ जोड़ दिया, जिसका उद्देश्य अस्तित्व की प्रकृति (संसार) की गहरी समझ प्राप्त करने के उद्देश्य से चेतना की एक परिवर्तित अवस्था का निर्माण करना था। इन कठोर प्रथाओं और ध्यान तकनीकों के विभिन्न संयोजनों के परिणामस्वरूप कई दार्शनिक दृष्टिकोणों की उत्पत्ति हुई, जिनका उद्देश्य संसार की समझ को बौद्धिक रूप से तर्कसंगत बनाना था। बाबा नानक ने, कई विकृतियों के कारण, इस तरह की कठोर प्रथाओं की निंदा की।

आकृति संख्या २३– कांस्य मजीरा

ले गए।[283] यह सुझाव दिया गया है कि श्रीचंद को बाबा नामक ने गुरगद्दी (हिंदी, गुरुगद्दी) के लिये अपने उत्तराधिकारी के रूप में इसीलिए मनोनीत नहीं किया था।

दूसरी सोच प्रणाली यह है कि बाबा नानक ने श्रीचंद द्वारा अपनाए गए मार्ग को पूर्णतः अस्वीकार नहीं किया था। इस विचारधारा में सुझाव दिया गया है कि जब श्रीचंद ने बाबा नानक से आशीर्वाद देने के अनुग्रह का अनुरोध किया और उनसे उनका उदासी चोला पहनने की आज्ञा माँगी तो बाबा नानक ने न केवल उन्हें अपना चोला दिया बल्कि उन्हें इसके लायक़ व इसका सही हक़दार भी माना।[284] श्रीचंद ने उदासी चोले की मर्यादा को अंत तक बरकरार रखने की प्रतिज्ञा की[285] तथा अपने सम्प्रदाय की स्थापना कर अपने अनुयायियों को अविवाहित रहने, कोई सम्पत्ति न रखने, व बिना किसी स्थाई घर के रहने की हिदायत दी।[286] उनके अनुयायियों ने, जो '*उदासी*' नाम से जाने जाने लगे, उन्हें एक संत व मार्ग-दर्शक के रूप में स्वीकार किया। यह विचारधारा इंगित करती है कि बाबा नानक जैसे दैवीय अस्तित्व के व्यक्ति द्वारा एक वैकल्पिक व जाने-माने आध्यात्मिकता के मार्ग के विरुद्ध किसी प्रकार का पूर्वाग्रह दिखाना सम्भव ही नहीं था। उदाहरणार्थ, कनखल (हरिद्वार) के मुख्य महंत उदासी गोविंद दास का इस संदर्भ में कहना है कि पिता और बेटे के बीच कोई विरोध नहीं था। उनके अनुसार, "पिता व पुत्र दोनों इस बात को मानते थे कि उन दोनों की विश्वदृष्टि एक दूसरे से भिन्न थी, इसलिये उन्होंने अपने-अपने ढंग से उपदेश दिये। अंतर यह था कि बाबा श्रीचंद उदासियों के गुरु बन गए क्योंकि उन में से एक गृहस्थ था (गुरु नानक) और दूसरा असंलग्न (श्रीचंद)।"[287] उदासी दृष्टिकोण यह है कि अपने संन्यासी-शिष्यों को बाबा श्रीचंद का दृढ़ादेश ईश्वर पर ध्यान देना, इन्हें मोक्ष के सीधे रास्ते पर डालना, ईश्वर के ज्ञान में दृढ़ करना, तथा उन्हें ईश्वर का प्रकटन करना था और यही दृढ़ादेश बाबा नानक का उनके लिये भी था। इस में कोई

---

[283]देखें Max Macauliffe, *The Sikh Religion*, vol. I, New Delhi: S. Chand & Co, 1963: 319; I.B. Banerji, *Evolution of the Khalsa*, vol. I, Calcutta: A Mukherjee & Co, 1972: 160; S.M. Latif, *History of the Punjab*, New Delhi: Eurasia Publishing House, 1964: 246.

[284]Lal Singh, "Udāsī Ki Reet Chalai," in Gurdev Singh (ed.), *Udāsī Sampardāye ate Sikh Panth*, New Delhi: Gobind Sadan, 2007: 15-16.

[285]Kirpal Singh, *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, New Delhi: Gobind Sadan Publication, 1994: 12.

[286]G.C. Narang, *Transformation of Sikhism*, New Delhi: New Book Society of India, 1956: 32.

[287]http://www.sikhiwiki.org/index.php/Baba_Sri_Chand.

आशंका नहीं है कि बाबा श्रीचंद, कम से कम परम्परागत परिप्रेक्ष्य में दृष्टि और ज्ञानोद्दीप्ति के प्रेरणादायक आदर्श बने।[288]

आकृति संख्या २४–एक उदासी साधु

कुछ विद्वानों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि बाबा श्रीचंद के कुछ अनुयायी बाबा नानक की जगह श्रीचंद को न मिलने पर नाराज़ हुए होंगे तथा उन्होंने अंगद के उत्तराधिकार को अस्वीकार करके उनके लिये कुछ मुश्किलें पैदा की होंगी।[289] इस प्रकार, यह प्रश्न उभर कर आया प्रतीत होता है कि गुरगद्दी ज्येष्ठाधिकार के अनुसार सब से बड़े पुत्र को मिलनी चाहिए या फिर गुरु द्वारा एक योग्य शिष्य को दी जानी चाहिए। गुरु अंगद के अनुयायियों ने इस बात पर जोर दिया होगा कि गुरुत्व का अधिकार केवल स्वामी से उपहार के रूप में ही प्राप्त किया जा सकता है न कि स्वयं को नामांकित करके।[290] वास्तव में, कुछ विद्वानों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि गुरु अंगद के अनुयायियों द्वारा इस बात पर कि गद्दी नामांकन के सिद्धांत के आधार पर मिलनी चाहिए इसलिये जोर दिया गया क्योंकि वे श्रीचंद पर निशाना साध रहे थे जो बाबा नानक के उत्तराधिकारी होने का दावा कर रहे थे।[291] लेकिन, उदासियों का यह विश्वास है कि

---

[288]देखें *पूर्वोक्त.*

[289]देखें Khushwant Singh, *History of the Sikhs*, vol. I, Princeton: Princeton University Press, 1963: 49; H.R. Gupta, *History of the Sikh Gurūs*, New Delhi: U.C. Kapur & Sons, 1973: 81.

[290]देखें *Ādi Grantha*: 474-475.

[291]देखें J.S. Grewal, *The Sikhs of the Punjab*, rev. ed., Cambridge: Cambridge University Press, 1998: 29-30.

गुरु नानक ने स्वयं ही दो गद्दियों की स्थापना की थी- एक गृहस्थ अंगद के लिये और दूसरी ब्रह्मचारी श्रीचंद के लिये।[292] जो भी हो, गुरु अंगद के उत्तराधिकारी गुरु अमर दास ने अपनी परम्परा को उदासियों से अलग दिखाने व उसकी उचित पहचान प्राप्ति के लिये, अप्रतिरोधी व समावेशी उदासियों से सक्रिय व गृहस्थ सिखों के पूरी तरह अलगाव की घोषणा कर दी तथा अपने अनुयायियों को उदासियों से सम्मानजनक दूरी बनाए रखने की सलाह दी।[293] इस प्रकार, गुरु अमर दास ने अपनी परम्परा को उसकी किशोरावस्था में ही कई परम्पराओं में एक बनने से सफलतापूर्वक संरक्षित कर लिया।[294] हालाँकि, अब ये दोनों गुट स्वयं को एक दूसरे से स्पष्ट रूप से भिन्न मानते थे लेकिन बाबा नानक की सहनशीलता व विचार-भिन्नता के प्रति घोषित सम्मान की साँझी विरासत से प्रेरणा लेते रहे। बाबा राम दास के समय से आपसी सम्मान व मान्यता की गति को और बढ़ावा मिला। इससे दोनों पक्षों को अपनी-अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में मदद मिली और इसीलिये यह कोई हैरानी की बात नहीं है कि उन्नीसवीं शताब्दी के फ़ारसी साहित्य में उत्तर-पश्चिमी दक्षिण एशिया व उससे परे के क्षेत्र में उनकी लोकप्रियता का संकेत दिया गया है।[295]

[292]Raghubir Singh, "Bābā Śrī Chand and the Persian Chronicles," *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, New Delhi: Gobind Sadan, 1994: 67.
[293]देखें *Amritsar District Gazetteer*, Part A, 1914: 13; W.L. M'Gregor, *History of the Sikhs*, vol. I, London: James Madden, 1970: 51.
[294]देखें John Malcolm, *Sketch of the Sikhs*, London: John Murray, 1812: 27; H.R. Gupta, *History of the Sikh Gurūs*, New Delhi: U.C. Kapur & Sons, 1973: 83.
[295]देखें Raghubir Singh, "Bābā Śrī Chand and the Persian Chronicles," *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, New Delhi: Gobind Sadan, 1994: 68-69.

आकृति संख्या २५– आयुर्वेदिक औषधि तैयार करने के लिये एक उदासी साधु भारतीय जड़ी-बूटियों को पीसते हुए।

गुरु अर्जन देव ने सौहार्द व स्वीकृति को और मज़बूत किया। गुरु हरगोबिंद इसे एक कदम और आगे ले गए जब उन्होंने अपने सब से बड़े पुत्र बाबा गुरदित्ता को श्रीचंद के एक शिष्य के रूप में सौंप दिया। इस कदम ने दोनों पक्षों के बीच आपसी सम्मान को पुष्टि व मज़बूती प्रदान की क्योंकि दोनों ही बाबा नानक का गहन सम्मान करते थे। गुरु हरगोबिंद ने उदासियों को सिख धर्म के प्रसार के लिये विभिन्न दिशाओं में भेजा। धूओं और बक्षीशों के उदासी दूर-दराज के क्षेत्रों में गए और वहाँ पर डेरों और अखाड़ों की स्थापना की। वे सिख धर्म के उत्साही

प्रचारक बने और गुरु नानक के उत्तराधिकारी गुरुओं द्वारा पवित्रीकृत संदेश को दूर-दूर तक पहुँचाया।[296] बाबा गुरदित्ता का गोद लिया जाना भी संकेत देता है कि उदासियों ने बाबा नानक द्वारा उपदिष्ट व अभ्यस्त गृहस्थ-संन्यास के सिद्धांत को काफ़ी हद तक मान्यता दे दी थी।[297] उदासी लगातार प्रगति करते रहे और वे महाराजा रणजीत सिंह द्वारा विशेष रूप से समर्थित थे, जिसके परिणामस्वरूप उदासियों के केंद्रों की संख्या उनके शासनकाल के अंत तक २५० तक पहुंच गई थी।[298]

आकृति संख्या २५– आयुर्वेदिक औषधि तैयार करने के लिये एक उदासी साधु सब्जियों और फलों को पकाते हुए

[296]Pashaura Singh and Louis E. Fenech, *The Oxford Handbook of Sikh Studies*, Oxford: Oxford University Press, 2014: 375–376.
[297]देखें R.L. Nigham, "Bābā Śrī Chand," *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, Gobind Sadan, New Delhi, 1994: 6.
[298]J.S. Grewal, *The Sikhs of the Punjab*, rev. ed., Cambridge: Cambridge University Press, 1998: 116.

आकृति संख्या २६– एक उदासी साधु

आकृति संख्या २७–एक उदासी साधु धुतगुण *शारीरिक मुद्रा* में

आकृति संख्या २८—उदासी साधु पूजा के दौरान शंख बजाते हुए

उदासी परम्परा का आधिकारिक ग्रंथ *मात्रा* (विनय) है जो बाबा श्रीचंद द्वारा रचित ७८ छंदों का संग्रह है। इस ग्रंथ में, आधियात्मिक प्रगति की प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य, आवासहीनता, तथा सांसारिक मामलों से पृथकता की आवश्यकता को रेखांकित किया गया है। यह उल्लेखनीय है कि उदासी इस धारणा में विश्वास रखते रहे कि बाबा श्रीचंद की *मात्रा* की आध्यात्मिकशक्ति व गुणकारिता गुरु नानक के *जपुजी* के बराबर की है। आगे यह भी कहा जा सकता है कि चूँकि उदासियों का दर्शन मौलिक रूप में शंकर द्वारा निर्धारित अद्वैत वेदांत है, वे *गुरुग्रंथ साहिब* के

संदेश का वेदांतिक शब्दावली में विवेचन करते हैं।[299] उन्हें रेहत मर्यादा[300] और खालसा के वेश संहिता (ड्रेस कोड)[301] का पालन न करने वालों के रूप में भी देखा जाता है। यह भी बताया गया है कि "इस तथ्य के बावजूद कि भारतीय पौराणिक कथाएं सिखों के पवित्र *ग्रंथ, गुरुग्रंथ साहिब* और द्वितीयक *ग्रंथ, दशम ग्रंथ,* में व्याप्त हैं और आज के सिखों और उनके पिछले पूर्वजों के पवित्र प्रतीकात्मक ब्रह्मांड में नाजुक बारीकियों और सार को जोड़ती हैं, तब भी शायद कुछ ही सिख इन भारतीय ग्रंथों और विचारधाराओं का उल्लेख सिख परंपरा में मानेंगे।"[302]

कई अन्य मामलों में भी उदासी शैव संन्यासियों से निकटता रखते हैं। उदासी सिख गुरुओं को उच्च सम्मान देते हैं लेकिन उसके साथ-साथ वे गुरु नानक से श्रीचंद और उनसे उदासी महंतों के उत्तराधिकार की परम्परा को अत्यावश्यक रूप में महत्वपूर्ण मानते हैं। बाबा नानक व श्रीचंद की प्रतिमाएँ उनके मंदिरों में पूजा की केंद्रीय वस्तुएँ हैं। सभी शैव-संन्यासियों की तरह, उदासी भस्म को विशेष सम्मान देते हैं और उससे अपने शरीर को पोतते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि धूणी/धूणा (निरंतर सुलगती आग) प्राचीनतम उदासी केंद्रों की एक अनिवार्य विशेषता रही है। आम तौर पर, वे लम्बी जटाएँ रखते हैं और उनमें से कुछ अपनी कमर में ज़ंजीर पहनते हैं।

---

[299]ग्रेवाल के अनुसार, "उदासी साधुओं... ने अपने वेदांतिक विस्तार के लिये सिख धर्म के ग्रंथ साहिब का इस्तेमाल किया। ... सिख धर्म का उदासी विवरण सिंहों के विश्वास के कुछ आवश्यक तरीकों से अलग था। उदासियों ने अपनी उत्पत्ति गुरु नानक से तो की, लेकिन श्रीचंद और उनके त्याग के पथ (*उदास*) को वास्तविक संस्थापक के रूप में अधिक प्रमुखता दी। उन्होंने गुरु नानक से गुरु गोबिंद सिंह तक उत्तराधिकार की परंपरा को अस्वीकार नहीं किया, लेकिन उन्होंने गुरु नानक से उत्तराधिकार की श्रृंखला को श्रीचंद और आदि उदासी परंपरा के माध्यम से एक उदासी प्रतिष्ठान के मौजूदा महंत को अधिक महत्व दिया। उन्होंने ग्रंथ साहिब के लिये कोई बड़ा सम्मान नहीं दिखाया, और इसके आवश्यक संदेश की व्याख्या वेदांतिक शब्दों में की तथा एक व्यक्तिगत भगवान से एक अवैयक्तिक वास्तविकता पर जोर दिया। न ही उन्होंने गुरु-पंथ और गुरु-ग्रंथ के जुड़वां सिद्धांत को माना" (J.S. Grewal, *The Sikhs of the Punjab*, rev. ed., Cambridge: Cambridge University Press, 1998: 96, 117)।

[300]सिख रेहत मर्यादा सिख धर्म के अनुयायियों के लिये एक आचार संहिता और रीति-रिवाज हैं, जिन्हें शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटि, अमृतसर द्वारा १९४५ में अनुमोदित किया गया था। यह कोड कई *रेहतनामों* (आचार संहिताओं) में से एक है जो सिख गुरुद्वारों के कार्यात्मक कामकाज के साथ-साथ वे धार्मिक प्रथाएं हैं जिन्हें सिख समुदाय के बीच एकता को बढ़ावा देने के लिये लिखा गया है (देखें Kulraj Singh, "Preface to the English Version," in *Sikh Reht Maryada*, Amritsar: Shiromani Gurudwara Parbandhak Committee, 31 August 1994; Nirmal Singh, *Searches in Sikhism: Thought, Understanding, Observance*, New Delhi: Hemkunt Publishers, 2008: 184ff; Sukhbir Singh Kapoor and Mohinder Kaur Kapoor, "Introduction," *The Making of the Sikh Rehatnamas*, New Delhi, India: Hemkunt Publishers ,2008: 9; Jeffrey Haynes, *Routledge Handbook of Religion and Politics*, New York: Routledge, 2008: 316).

[301]David. N. Lorenzen, Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action, New York: SUNY Press 1995: 57; Harjot Oberoi, *The Construction of Religious Boundaries: Culture, Identity, and Diversity in the Sikh Tradition,* Chicago: University of Chicago Press, 1990: 78-80.

[302]"Few Sikhs would mention these Indic texts and ideologies in the same breadth as the Sikh tradition... despite the fact that the Indic mythology permeates the Sikh sacred canon, the *Guru Granth Sahib* and the secondary canon, the *Dasam Granth*, and adds delicate nuance and substance to the sacred symbolic universe of the Sikhs of today and of their past ancestors" (Pashaura Singh and Louis E. Fenech, *The Oxford Handbook of Sikh Studies*, Oxford: Oxford University Press, 2014: 36).

उनकी धूणा रखने की परम्परा, हठ-योग के सिद्धांतों व प्रथाओं में विश्वास, घंटी या घड़ियाल का बजाना, नरसिंघा या सिंघी फूंकना, श्लोकों का जाप, तथा *आदि ग्रंथ* के सामने प्रकाश फिराना, उनकी पूजा-पद्धति का एक अभिन्न अंग हैं। वे सिद्धों की अलौकिक शक्तियों को भी अत्यधिक उपयोगी व कार्यसाधक मानते हैं। वे टोपी, खड़ाऊँ, फूलमाला, झोली, तथा तूंबे का प्रयोग करते हैं। कुछ उदासी श्वेत वस्त्र पहनते हैं और कुछ गेरुआ या भगवा वस्त्र पहनते हैं। इनमें से कुछ अपने सिर, गर्दन, व कमर में सेलि (रज्जु) बांधते हैं। कई उदासी केंद्र अपने यहाँ भारतीय चिकित्सा प्रणाली तथा शरीर-विज्ञान में प्रशिक्षण भी प्रदान करते हैं। वास्तव में, कुछ उदासी संन्यासी आयुर्वेद के प्रसिद्ध प्रकरण, *चरक संहिता*, के विशेषज्ञ भी माने गए हैं। उदासी ब्राह्मणों से पुरोहिताई करवाते हैं तथा श्राद्ध करते हैं। वे उत्साहपूर्वक कुम्भ उत्सव मनाते हैं। *श्री गुरु ग्रंथ साहिब* तथा सिख गुरुओं से सम्बंधित रचनाओं के साथ-साथ वे संस्कृत ग्रंथ जैसे कि *वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण,* व *महाभारत* को अपने पावन ग्रंथ मानते हैं। उदासियों के लिये गुरु नानक देव जी भगवान विष्णु के और बाबा श्रीचंद शिवजी महाराज के ही अवतार हैं।

उदासियों व सिखों के आपसी सम्बन्ध ऐतिहासिक तौर पर काफ़ी जटिल प्रतीत होते हैं। यह कहा जा सकता है कि कुछ हद तक उदासियों की धार्मिक प्रथाएँ सिख और हिंदू धर्मों का समन्वय हैं। उनका दृष्टिकोण यह है कि जबकि दोनों का उद्देश्य सनातन धर्म (शाश्वत नैतिक व लौकिक व्यवस्था) का संरक्षण है, बाबा श्रीचंद का विशिष्ट लक्ष्य अपने गुरु व पिता निरंकार स्वरूप जगद्गुरु नानक देव जी के संदेश का प्रचार करना था। दूसरे शब्दों में. अपने संस्थापक द्वारा निर्धारित मार्ग का पालन करते हुए, उदासी विद्वानों ने एक तरह से स्वयं को गुरुमत के धर्म-प्रचारक के रूप में माना। उन्होंने न केवल नए गुरुद्वारों की स्थापना व उनकी देखभाल की बल्कि नवदीक्षितों को पढ़ाने व प्रशिक्षण देने के साथ-साथ बड़ी संख्या में लोगों को सिख धर्म की छत्रछाया में लाकर सिख धर्म के विकास व संवृद्धि में बहुत बड़ा योगदान दिया। विक्षुब्ध व कठिन मध्ययुगीन अवधि में वे सफलतापूर्वक अस्तित्व में बने रहे तथा इस दौरान वे न केवल अपने धर्म-प्रचार के कार्य को जारी रखने में सक्षम रहे बल्कि सिख धर्म-स्थानों के संरक्षक भी बने रहे।[303]

आकृति २९- घण्टी

उदासी संत हमारी विशिष्ट प्रशंसा के हक़दार न केवल इसलिये हैं कि वे सिख धर्म के प्रथम संत हैं बल्कि इसलिये भी कि प्रारम्भिक सिख धर्म उनका अत्यधिक ऋणी है। तथापि,

---

[303] *पूर्वोक्त*.375–376.

जब सिख धर्म में पहचान के मुद्दे का प्रश्न सामने आया तब उदासी परम्परा की कई मान्यताओं, भक्तिमय प्रथाओं, व जीवनशैली को मुख्यधारा के सिख सिद्धांतों के विरोधाभासों के रूप में देखा गया।[304] उनकी धुतगुणीय व प्रतीक-धारण की चिह्नात्मक प्रवृत्तियों को आमतौर पर ब्राह्मणीय-हिंदू प्रवृत्तियों के रूप में देखा गया। सिख गुरुद्वारा सुधार अधिनियम (१९२५) ने *सिख* शब्द को इस तरह से परिभाषित किया कि उदासीनों, नानकपंथियों, व सनातनियों जैसे समन्वित समूहों को बाहर कर दिया। फलतः जब सिंघ सभा ने बीसवीं शती के आरम्भ में सिख पहचान को परिभाषित किया, उदासी महंतों को सिख धर्म-स्थलों से निष्कासित कर दिया गया। तब से, उदासी बढ़ती मात्रा में स्वयं को सिख के बजाए हिंदू मानने लगे हैं।[305] इसके अलावा, समकालीन सिख धर्म काफी हद तक तपस्वी प्रथाओं का विरोध करता है और इसी कारण इसमें उदासियों के लिये ज्यादा जगह नहीं है। सिख संस्थानों, विशेष रूप से अकाल तख्त और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (एसजीपीसी) के बढ़ते राजनीतिकरण और उनमें जट्ट सिखों के वर्चस्व ने उदासियों के अलगाव को और बढ़ा दिया है और दोनों के बीच की खाई को चौड़ा कर दिया है। इस प्रकार, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कई सिख उदासियों को अपने सह-धार्मिकों के रूप में स्वीकार करने से इनकार करते हैं।

---

[304] १८७० के दशक में स्थापित सिंह सभा आंदोलन का उद्देश्य "सच्चे सिख धर्म का प्रचार करना व सिख धर्म के प्राचीन गौरव को बहाल करना; सिखों की ऐतिहासिक व धार्मिक पुस्तकें लिखना तथा वितरित करना; और पत्रिकाओं व मीडिया के माध्यम से गुरुमुखी पंजाबी का प्रचार करना था" (N. Gerald Barrier and Nazer Singh, "Singh Sabha Movement," Harbans Singh (ed.), *Encyclopedia of Sikhism,* vol. 4, Patiala: Punjabi University, Patiala, 2002: 205)। आंदोलन के नेताओं ने आरोप लगाया कि गुरुद्वारा प्रसाद और अन्य दान को अपने व्यक्तिगत राजस्व के रूप में इस्तेमाल करने और उस समय के सिख समुदाय की जरूरतों को अनदेखा करने के अलावा, उदासियों ने गुरुद्वारों को ऐसी जगहों में बदल दिया जहां विभिन्न प्रकार की गैर-सिख, ब्राह्मणवादी मूर्ति पूजा और जातिगत भेदभाव जैसी प्रथाओं को होने दिया जाता था (देखें Harnik Deol, *Religion and Nationalism in India: The Case of the Punjab,* New: Routledge, 2000: 65-78)। रास्ते अलग होने का आरोप इस बात पर भी लगाया गया है कि १८८० के दशक के दौरान आर्य समाज प्रेस में सिख विरोधी प्रचार किया गया है, जिसके बाद नवंबर १८८८ में आर्य समाजियों द्वारा लाहौर में आर्य समाज की सालगिरह का जश्न मनाया गया, जिसके परिणामस्वरूप उनके लिये सिख समर्थन का अंत हुआ, पहले से चली आ रही साझा लक्ष्यों की धारणा समाप्त हो गई (पूर्वोक्त.70)।

[305]देखें John S. Hawley and Gurinder Singh Mann.1993. *Studying the Sikhs: Issues for North America,* New York: SUNY Press, 1993: 113; Tanweer Fazal, '*Nation-state' and Minority Rights in India: Comparative Perspective on Muslim and Sikh Identities*, New York: Routledge, 2014: 113.

आकृति संख्या २९– ऊर्ध्वबाहु मुद्रा

एक देवनागरी शिलालेख (संख्या १३) सहित दो गुरुमुखी शिलालेखों (संख्या १० और ११) जो उदासी परंपरा के साथ-साथ सिख धर्म के संबंध में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, के पठनीय संस्करण[306] इस प्रकार हैं–

शिलालेख संख्या १०

> १ॴ सति नाम करता पुरखु निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥जपु॥ आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ सतिगुर प्रसादि॥ बाबा जागू साह सुथा जिस का चेला बावा भागू शाह जि[स]का चेला बावा बंके शाह जिस का चेला छत शाह धरम की जगह बणाई॥

अनुवाद-

> परमात्मा एक है, उसी का नाम सत्य है, [वह] सृजनकर्ता, निर्भय, द्वेष-रहित, मृत्युहीन, अजन्मा, [और] स्वयंभू (स्वयं से उत्पन्न हुआ) है [जिसे] गुरु-कृपा से ही प्राप्त [किया जा सकता है] ॥[इसे दोहराएं (ध्यान दें)]॥ वह आरम्भ से सच है; वह अनंत काल से सच है; वह अब भी सच है (और) नानक (कहते हैं) वह भविष्य में भी सच होगा। सच्चे गुरु की कृपा। बाबा जगू शाह सुथा, जिनके शिष्य बावा भागू शाह [थे], उनके शिष्य बावा बांके शाह [थे], [और] उनके शिष्य छात शाह [हैं, जिन्होंने] धर्म की [यह] जगह बनाई।

---

[306]इन अभिलेखों के विस्तृत अध्ययन के लिये कृपया अध्याय ७ देखें।

शिलालेख संख्या ११

੧ੴ सति नाम करता पुरखु निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥जपु॥ आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ सतिगुर प्रसादि॥ वाहिगुरू जी सहाइ॥ बाबा टह दास बंगे वाले का चेला मेला राम तिस का चेला करता राम उदासी॥ जवाला पै धरम की जगह बनाई गई। वाहिगुरू वाहिगुरू के चरण बूजागली थां॥

अनुवाद-

परमात्मा एक है, उसी का नाम सत्य है, [वह] सृजनकर्ता, निर्भय, द्वेष-रहित, मृत्युहीन, अजन्मा, [और] स्वयंभू (स्वयं से उत्पन्न हुआ) है [जिसे] गुरु-कृपा से ही प्राप्त [किया जा सकता है] ॥[इसे दोहराएं (ध्यान दें)]॥ वह आरम्भ से सच है; वह अनंत काल से सच है; वह अब भी सच है (और) नानक (कहते हैं) वह भविष्य में भी सच होगा। सच्चे गुरु की कृपा। वाहिगुरु जी का सहारा॥ बाबा टह दास बंगे वाले का चेला मेला राम [और] उसका चेला करता राम उदासी [जिसके द्वारा] ज्वाला पर धर्म की [यह] जगह बनाई गई। बूजागली [नामक] जगह वाहिगुरु के चरणों में दो बार [झुकती है]॥

शिलालेख संख्या १३

श्री राम॥ संत श्री कसदस॥ श्री गणेशाय नम:॥ संवत् १७७० वर्ष रजक्रम जत मत वुसष वद ५ सु ८ हइ हसतर॥ तर चंद नतमस्तज नानक॥

हिंदी अनुवाद-

श्री राम। संत श्री कृष्ण दास। श्री गणेशाय नम:। (विक्रमादित्य) संवत् (का) वर्ष *१७७०*। वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की पाँचवीं तिथि से शुक्ल पक्ष की आठवीं तिथि। तारा चंद नानक के आगे शीश नवाता है।

गुरुमुखी के दोनों शिलालेख स्मृतिधारक-शिलालेख प्रतीत होते हैं। दोनों शिलालेखों का प्रथम भाग *जपुजी साहिब* की आरंभिक पंक्तियाँ हैं, जो सिखों के धर्म ग्रंथ *आदि ग्रंथ* (जिसे सार्वजनिक तौर पर *श्री गुरु ग्रंथ साहिब* के नाम से जाना जाता है) का एक भाग हैं। *जपुजी* की यह विशिष्ट गाथा, जिसे सार्वजनिक तौर पर *मूल मंतर* के नाम से जाना जाता है, शायद सब से प्रसिद्ध गाथा है जिसका जाप सभी श्रद्धालु सिख प्रत्येक दिन सुबह करते हैं।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि तीर्थयात्रा का अर्थ है उस पवित्र-स्थल का श्रद्धा-युक्त भ्रमण जो आध्यात्मिक शक्ति से भरपूर हो। संत प्रवृत्ति के व्यक्ति अनुकरणीय जीवन व्यतीत करके आध्यात्मिक कार्यों से अपने वातावरण को पवित्रता से भरपूर करते हैं। इन संतों के भक्त उनके इस संसार (जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म का अनंत सिलसिला) से जाने के बाद भी उनसे आध्यात्मिक प्रेरणा पाते हैं। इस प्रकार, श्रद्धालु इन तीर्थों पर, उनके इन संतों से जुड़े होने के कारण, इन महापुरुषों की उपस्थिति को महसूस करके उनसे आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करते हैं। बदले में इस से इन श्रद्धालुओं को सांसारिक समुद्र को पार करके मुक्ति प्राप्ति (धार्मिक झुकाव के अनुसार मोक्ष या निर्वाण) के दूसरे किनारे तक जाने में मदद मिलती है। दूसरे शब्दों में, तीर्थ,

स्वर्ग व संसार के बीच में एक प्रकार का दरवाज़ा है और इस तरह एक प्रकार से "पापों को नष्ट करने का मुक़ाम है।"[307] शिलालेख का अंतिम वाक्य "तारा चंद नानक के आगे शीश नवाता है" संकेत करता है कि तारा चंद महा ज्वाला जी के मंदिर को इस प्रकार सम्बोधित करता है जैसे कि वह बाबा नानक की आध्यात्मिक शक्ति से भरपूर एक तीर्थ हो- वह आध्यात्मिक शक्ति जो यहाँ पर बाबा जी के आने पर आई। इस प्रकार यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मंदिर के वर्तमान निर्माण-स्थल पर बाबा नामक आए थे जिस वजह से यह स्थान उनके अनुयायियों के लिये एक तीर्थ-स्थल बन गया था और जो दुर्भाग्य से १८६० के दशक के बाद उस समय उजड़ गया जब यहाँ के उदासी साधुओं को यहाँ के स्थानीय ठगों व असामाजिक तत्वों ने मार भगाया।

दोनों शिलालेखों नं. १० व ११ में *मूल मंतर* और उसके पश्चात् उन उदासियों के नाम दिये गए हैं जिन्होंने इस धर्म-स्थल को बनवाया था। शिलालेख नं. ११ में मूल मंतर के पश्चात सुप्रसिद्ध अभिव्यक्ति *'वाहेगुरु जी सहाइ'* दिया गया है जिस अभिव्यक्ति का प्रयोग सिखों के दसवें गुरु गुरु गोबिंद सिंह ने किया था। इसी शिलालेख में पूर्वी अफ्रीका की एक प्रसिद्ध जगह 'बुजागली' का उल्लेख किया गया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि बाबा नानक ने बुजागली में अपनी चौथी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान यहां कुछ लोगों को अपना अनुयायी बनाया होगा। अन्यथा उदासी साधुओं ने पूर्वी अफ्रीका में धर्मांतरण किया होगा जब गुरु हरगोबिंद ने उन्हें सिख धर्म के प्रसार के लिये अलग-अलग दिशाओं में भेजा था।[308]

---

[307]A tīrtha is a "sin-destroying localit[y]" (V. Chan, *Tibet Handbook: A Pilgrimage Guide*, Chico, California: Moon, 1994: 36).

[308]विवरण अगले अध्याय में देखें।

अध्याय ७
शिलालेख

लिखित प्रमाणों से पता चलता है कि मंदिर में कुल तेईस समर्पण शिलालेख थे। इन में से दो अब गायब हैं और इक्कीस मौजूदा शिलालेखों में से अधिकांश को कोठरियों के प्रवेश द्वार के ऊपर या पास के पलस्तर में स्थापित किया गया है। एक समूह के रूप में ली गई, शिलालेखों की कालावधि संवत् १७६२ से लेकर संवत् १८७३ तक की है,[309] जो १७०५ ई से १८१६ ई तक की अवधि से मेल खाती हैं।[310] इसके अलावा, चूँकि संरचना अपेक्षाकृत नई दिखती है, कुछ विद्वानों ने सुझाव दिया है कि मंदिर का निर्माण सत्रहवीं शताब्दी के करीब हुआ प्रतीत होता है।[311] एक प्रेस रिपोर्ट में यह दावा किया गया है कि मौजूद स्थानीय प्रलेख बताते हैं कि इस बनावट का निर्माण बाकू के हिंदू व्यापारियों द्वारा शिरवंशाह वंश के पतन और १७२२-२३ के रूस-फारसी युद्ध के परिणामस्वरूप रूसी साम्राज्य द्वारा क्षेत्र पर कब्जे के समय हुआ था।[312]

---

[309]विक्रम संवत् प्राचीन समाजों द्वारा विकसित चंद्र-सौर कैलेंडरों में से एक है। यह *विक्रमी कैलेंडर* के रूप में भी जाना जाता है। यह ऐतिहासिक हिंदू कैलेंडर प्राचीन और मध्ययुगीन काल के दौरान कई शिलालेखों में मिलता है। यह कैलेंडर चंद्र मास और सौर नक्षत्र वर्षों का उपयोग करता है। इसका नाम महान राजा विक्रमादित्य के नाम पर रखा गया था, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्होंने शकों को हराया और निष्कासित किया था। विक्रम संवत् की दो प्रणालियाँ हैं, जो ५६ ईसा पूर्व में दक्षिणी हिंदू कैलेंडर प्रणाली (*अमांत*) और ५७-५६ ईसा पूर्व में उत्तरी प्रणाली (*पूर्णिमांत*) में शुरू हुईं। शुक्ल पक्ष, जिसके दौरान अधिकांश त्यौहार होते हैं, दोनों प्रणालियों में एक ही समय होता है। चंद्र सौर विक्रम संवत् कैलेंडर से सौर ग्रेगोरियन कैलेंडर ५६.७ वर्ष पीछे है। इस प्रकार, वर्ष १७६२ संवत १७०५ ईस्वी में शुरू हुआ, और १७०६ ईस्वी में समाप्त हुआ (देखें Richard Salomon, *Indian Epigraphy: A Guide to the Study of Inscriptions in Sanskrit, Prakrit, and Other Indo-Aryan Languages,* New York: Oxford University Press, 1998: 182-183; Ashvini Agrawal, *Rise and Fall of the Imperial Guptas,* Delhi: Motilal Banarsidass, 1989: 174-175; Eleanor Nesbitt, *Sikhism: A Very Short Introduction,* Delhi: Oxford University Press, 2016:122–123).

[310]मंदिर परिसर के अंदर पाए गए सभी शिलालेखों की तिथि जैक्सन द्वारा अठारहवीं शताब्दी दी गई है (A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 45)। बाहर के दो शिलालेख भी लगभग समान काल के प्रतीत होते हैं।

[311]देखें Alakbarov Farid, "Azerbaijan- Land of Fire: Observations from the Ancients," *Azerbaijan International*, Summer, 11.2, 2003. (http://www.azeri.org/Azeri/az_latin/manuscripts/land_of_fire/english/112_observations_farid.html)। २७ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[312]*पूर्वोक्त.* एदुआर्द आईखवाल्ड ने कहा है कि उनके समय में मंदिर का विशेष संरक्षक एक अमीर भारतीय हिंदू था जिसे ओतुमदशेम (अत्मा/उत्तम सेन?) [(Otumdshem (Ātmā/Uttam Sen ?)] जो कैस्पियन में मत्स्य पालन करते थे और ज्यादातर अस्त्रखान में रहते थे (देखें Eduard Eichwald, *Reise auf dem Caspischen Meeren unt in Den Kaukasus: unternommen in den jahren 1825-26,* Erste Abtheilung, Stuttgart und Tübingen: J.G. COTTA'schen Buchhandlung, 1834: 348).

शिलालेख संख्या– १
स्थान– गर्भगृह के पूर्वी पोर्टल के ऊपर
लिपि– देवनागरी
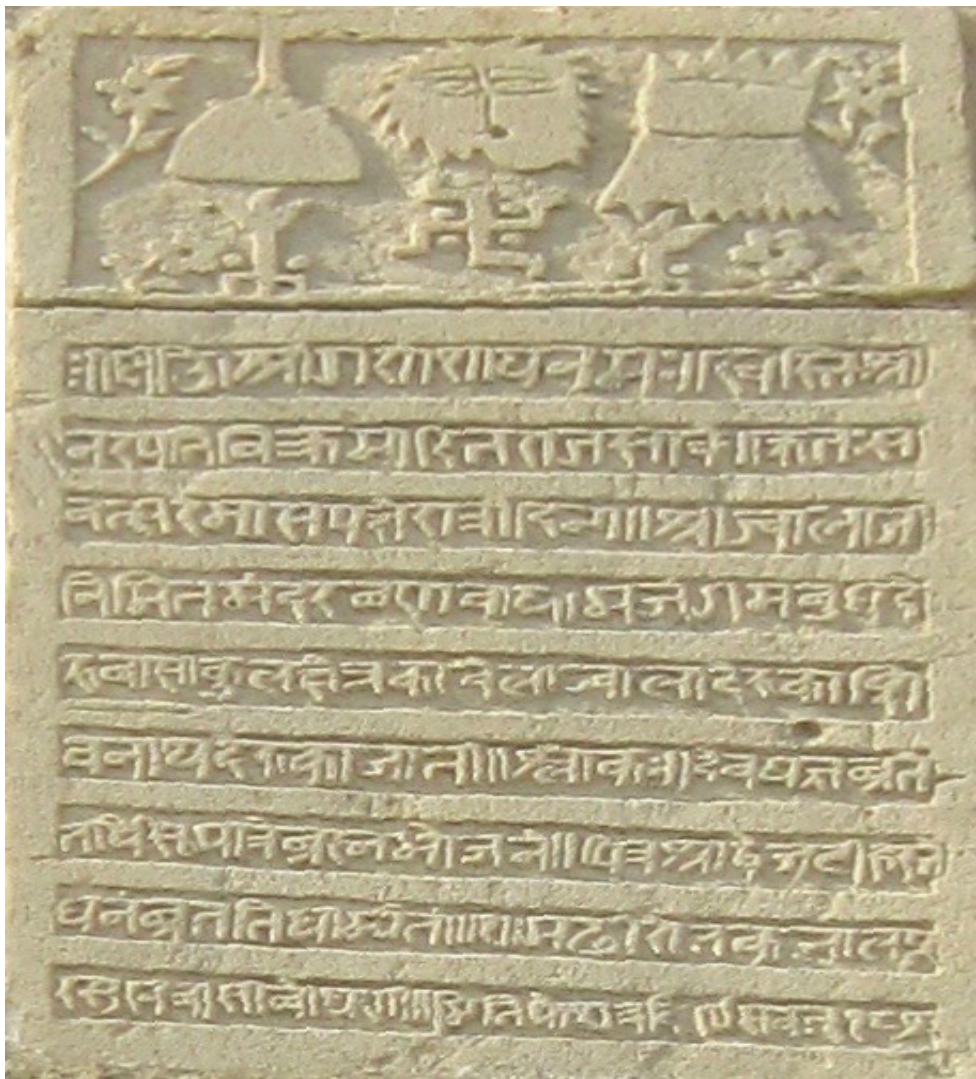
आकृति संख्या ३०– Dorn/Kirsten № 5: Vorobiev-Desyatovsky, 1954 (स्रोत– Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 10).

पूर्व दिशा में तोरणद्वार पर स्थित यह शिलालेख एक दोहरी आयातकार शिलापट्टी है, जो साढ़े तीन फीट ऊंची और दो फीट चौड़ी है। शिलालेख का ऊपरी भाग दो पंक्तियों में है।

पहली पंक्ति में एक गेंदे का फूल,[313] एक अनुष्ठान घंटा,[314] सूर्य,[315] एक यज्ञ-अग्नि-वेदी,[316] और एक दूसरा फूल दिया हुआ है। दूसरी पंक्ति में एक फूल, एक त्रिशूल,[317] एक भारतीय शैली का स्वस्तिक चिह्न (卐 बिन्दुओं के साथ),[318] एक और त्रिशूल, तथा दूसरा फूल दिखाई देता है। निचले खंड में देवनागरी लिपि में नौ पंक्तियों का शिलालेख दिया गया है। ठेठ पंजाबी शब्दावली जैसे *विक्रमादित* और *मंदर बणवाया* तथा साथ-साथ युग के कुछ अंकों के गुरुमुखी में उपयोग से संकेत मिलता है कि शिलालेख के लेखक पंजाबी पृष्ठभूमि के हैं, संभवतः मुल्तान से।[319] शिलालेख का पाठ इस प्रकार है–

---

[313]हिंदू धर्म में कोई भी धार्मिक समारोह, चाहे वह प्रार्थना करना हो या फिर श्राद्ध, फूलों के बिना अधूरा माना जाता है। चूंकि गणेश इस मंदिर के इष्ट देवता हैं और गेंदा उनका पसंदीदा फूल है, इसलिये पट्टी पर दिखाए गए चार फूल गेंदे के फूल प्रतीत होते हैं। गेंदे के फूल को विशेषकर असाधारण माना जाता है क्योंकि यह हिंदू देवताओं के कुछ ही फूलों में से एक है जिसे उसकी पंखुड़ियों में विभाजित किया जा सकता है।

[314]घंटा हिंदू धार्मिक प्रथाओं में उपयोग की जाने वाली अनुष्ठान घंटी है। घंटी का वक्र ढाँचा *अनंत* का प्रतिनिधित्व करता है, इसकी ताली या जीभ सरस्वती (ज्ञान और प्रज्ञता की देवी) का प्रतिनिधित्व करती है, और इसका हैंडल प्राण शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। घंटी बजने से शुभ ध्वनि उत्पन्न होती है और विशेष रूप से ओम् ध्वनि के लंबे उपभेदों को उत्पन्न करने के लिये बनाई जाती है। हिंदू मंदिरों में आमतौर पर प्रवेश द्वार पर एक धातु की घंटी लटकी होती है और भक्त मंदिर में प्रवेश करते समय घंटी बजाते हैं जो कि दिव्य-दर्शन की तैयारी में एक अनिवार्य हिस्सा है। एक आरती (पूजा) या यज्ञ के दौरान, देवता के सामने प्रकाश की लहर और धूप जलाने के दौरान, देवता को स्नान कराते समय, और भोजन या फूल चढ़ाते समय पुजारियों द्वारा एक घंटी बजाई जाती है।

[315]सूर्य पांच देवताओं (पंचायतन) में से एक है जिसे स्मर्त परंपरा में ब्रह्मन् की प्राप्ति के साधन के रूप में माना जाता है (Gavin Flood, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996: 13)। वह पूरे ब्रह्मांड को प्रकाश और जीवन प्रदान करता है। अधिकांश हिंदुओं द्वारा गायत्री मंत्र के भोर में दैनिक पाठ के माध्यम से सूर्य का आह्वान किया जाता है। अपनी निर्निमेष व सब देखने वाली आंख के कारण, उन्हें न्याय के कड़े प्रत्याभूतिदाता के रूप में देखा जाता है। प्रकाश हमेशा उद्बोधन और ज्ञान से जुड़ा होने के कारण उन्हें ज्ञान का स्रोत भी माना जाता है। दूसरे शब्दों में, सूर्य को संपूर्ण जीवन के स्रोत के रूप में देखा जाता है (विवरण के लिये अध्याय ४ देखें)।

[316]वेदी एक अग्नि पात्र है जिसमें यज्ञ की वस्तुएँ अर्पित की जाती हैं।

[317]कई हिंदू किंवदंतियों और कहानियों में, शिव अपने हाथ में पवित्र त्रिशूल रखते हैं और इसे हर चीज, जो बुरी या नकारात्मक है, को नष्ट करने के लिये अंतिम हथियार के रूप में उपयोग करते हैं।

[318]तांत्रिक उल्टे क्रम में।

[319]मुल्तान, मध्य एशिया में फैले व्यापारिक नेटवर्क का भाग होने के कारण, मध्यकाल के दौरान एक महत्वपूर्ण विनिर्माण केंद्र व वाणिज्यिक उद्यम नगर था। वहां के व्यापारी उसे अपने प्रमुख निर्यात केंद्र के रूप में उपयोग कर रहे थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के एक एजेंट, जॉर्ज फोर्स्टर ने १७८४ के अपने खाते में बाकू की कैस्पियन बंदरगाह में "मुख्य रूप से मुल्तान के हिंदू व्यापारियों" से मिलने का उल्लेख किया है (देखें George Forster, *Journey from Bengal to England: Through the Northern Part of India, Kashmire, Afghanistan, and Persia and into Russia by the Caspian Sea*, vol. II, London: A. Faulder and Son, 1798: 103)। दस साल बाद, अफगानिस्तान में ब्रिटिश दूत, माउंटस्टुअर्ट एलफिंस्टन ने पाया कि मुल्तानी व्यापारी बाकू से 700 किमी उत्तर में अस्त्रखान में "बैंकरों, व्यापारियों, सुनारों और अनाज के विक्रेताओं" के रूप में कार्य कर रहे थे (देखें Stephen F. Dale, *Indian Merchants and the Eurosian Trade, 1600-1750,* Cambridge: Cambridge University Press, 2002: 59)।

पंक्ति १– ॥६॥ ॐ श्री गणेशाय नमः॥ स्वस्ति श्री
पंक्ति २– नरपति विक्रमादित राज साके॥ कृत: सं
पंक्ति ३– वत्सरे मास पक्षे रात्री दिना॥ श्री ज्वाला जी
पंक्ति ४– निमित मंदर बणवाया मनंगम बुधदे
पंक्ति ५– ऊ बासी कुलक्षेत्र का चेला ज्वालादेऊका शि
पंक्ति ६– वनाथदेऊका नाती॥ श्लोक:॥ देवयज्ञ ब्रते
पंक्ति ७– तीर्थे सुपात्रे ब्रह्मभोजने॥ पित्र श्राद्धे जटीहस्ते
पंक्ति ८– धनं ब्रत ति धार्म्यतां॥१॥ मढी रोतक लाला त
पंक्ति ९– रसुख बासी बोघणी॥ मिति पोश वदि ९ संवत् १८७३

अनुकलन और संशोधन के बाद–

:‖[320]६[321]‖ ॐ[322] श्री[323] गणेशाय नमः।।[324] स्वस्ति[325] श्री नरपति[326] विक्रमादित[327] राज साके।।[328] कृत:[329] संवत्सरे[330] मास पक्षे[331] रात्री दिना।। श्री ज्वाला जी निमित[332] मंदर बणवाया मनंगम बुधदेऊ बासी कुलक्षेत्र

---

[320]यह प्रतीक :‖ संभवतः त्रिपुंड्र है, जो भगवान शिव के भक्तों द्वारा इस्तेमाल किया जाने वाला एक प्रमुख हिंदू प्रतीक है। त्रिपुंड्र आम तौर पर एक तिलक होता है, जिसमें भस्म (पवित्र राख) से बने तीन क्षैतिज रेखाएं माथे पर लगाई जाती हैं। इसमें केंद्र में खड़ी सीधी रेखा या एक लाल बिंदु हो सकता है (Paul Deussen, *Sixty Upanishads of the Veda*, (tr.) V.M. Bedekar and G.B. Palsule, vol. 1, Delhi: Motilal Banarsidass 1980: 789-790; Klaus K. Klostermaier, *Mythologies and Philosophies of Salvation in the Theistic Traditions of India*. Waterloo, ON: Wilfrid Laurier University Press, 1984: 131, 371; James Lochtefeld, "Urdhvapundra," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group: 724)। कुछ शिवभक्त त्रिपुंड्र को राख की तीन शिलापट्टियों के रूप में अपनी भुजाओं के किनारों पर भी खींचते हैं। त्रिपुंड्र की तीन रेखाएं सृष्टिसर्जन, निर्वाह, और विनाश की तीन ईश्वरीय शक्तियों का दिव्य त्रय (ब्रह्मा, विष्णु, और शिव) के द्वारा प्रतिनिधित्व करती हैं (देखें Antonio Rigopoulos, "Vibhūti," in Knut A. Jacobsen (ed.), *Brill's Encyclopedia of Hinduism*, vol. 5, Leiden: Brill Academic, 2013: 182-183)। माना जाता है कि तीनों रेखाएं शिव की इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, और क्रियाशक्ति की प्रतिनिधि हैं (Deussen, *पूर्व उद्धृत,* 790)। त्रिपुंड्र की तीन रेखओं की एक और व्याख्या यह है कि पहली रेखा *गृहपत्य* (घर की रसोई में पवित्र अग्नि) और ओम् के *अ* अक्षर का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरी रेखा *दक्षिणाग्नि* (पूर्वजों के लिये दक्षिण में प्रज्ज्वलित पवित्र अग्नि) और ओम् के *उ* अक्षर की ध्वनि की प्रतिनिधि है। तीसरी रेखा *अहवनिय* (होम के लिये प्रयुक्त आग) और ओम् के *म्* अक्षर का प्रतिनिधित्व करती है (पूर्वोक्त.790)। पावन राख *अनव* (अहंकार), *माया* (भ्रम) और *कर्म* के शुद्धिकरण व जलने की प्रतीक है। बिंदु आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि के उदय या तेज होने का प्रतीक है (James Lochtefeld, "Urdhvapundra," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group: 724)।

[321]कभी-कभी अंक ६ किसी पत्र/संदेश की शुरुआत में लिखा जाता था।

[322]ॐ, ब्रह्मांड के सर्वोच्च सिद्धांत की जीवंत भूमिका, ब्रह्मन्, का ब्रह्मांडीय व्यवस्था से संबंध के जीवन का प्रतीक है। उदासी परंपरा विशेष रूप से त्रिशक्ति का सम्मान) करती है, जिसमें ॐ, स्वस्तिक, और त्रिशूल शामिल हैं। इन सभी का उल्लेख इस पट्टी में मिलता है (देखें, विवरण के लिये अध्याय ४)।

[323]हिंदू धर्म में *श्री* एक महत्वपूर्ण प्रतीक है जो शुभता का प्रतिनिधित्व करता है। यह भगवान गणेश के नामों में से भी एक है। जैसा कि बाकू मंदिर के अधिकांश शिलालेखों में गणेश का आह्वान किया गया है, वह गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य, और दुर्गा/पार्वती से मिलकर बने पंचायत में इष्ट देवता थे।

[324]विघ्नों को दूर करने वाले देवत्व का सामान्य आह्वान।

[325]*स्वस्ति,* जिसका अर्थ है *कल्याण,* एक शुभ शब्द है जिसका प्रयोग कुछ शिलालेखों की शुरुआत में उपक्रम की सफलता सुनिश्चित करने के लिये विस्मयादिबोधक के रूप में किया जाता है।

[326]*नरपति* = पुरुषों का स्वामी, राजा।

[327]विक्रमादित = विक्रमादित्य = शाही उपाधि, एक राजा का नाम।

[328]सक/शक/साक/शाक = 'एक युग' या 'एक वर्ष' के अर्थ में प्रयुक्त।

[329]*कृत,* क शाब्दिक रूप से *'पूरा',* या *'पूर्ण'* और विक्रमादित्य युग के संबंध में अभिलेखों में उपयोग किया जाता है।

[330]*संवत्सर* = एक वर्ष, एक तिथि, एक युग; आमतौर पर विक्रम युग के लिये इसका उपयोग किया जाता है। *संवत्* इसका संक्षिप्त रूप है।

[331]क्योंकि १२ महीने एक नक्षत्र वर्ष से मेल नहीं खाते, इसे महीनों को जोड़कर या कभी-कभी घटाकर 'सही' किया जाता है। चंद्र दिवसों को *तिथियां* कहा जाता है। एक तिथि चंद्रमा और सूर्य के बीच अनुदैर्ध्य कोण (longitudinal angle) द्वारा १२^{0} तक बढ़ने में लगने वाला समय है। तिथियां दिन के विभिन्न समय पर शुरू होती हैं, और २० से २७ घंटे की अवधि की होती हैं। ३० तिथियां से मास (चंद्र मास) बनता हैं। एक पक्ष एक चंद्र पखवाड़ा है

का चेला ज्वालादेऊ का शिव नाथ देऊका नाती ।।श्लोक:।। देव यज्ञब्रते तीर्थे सुपात्रे ब्रह्मभोजने।। पित्र श्राद्धे जटी हस्ते धनं ब्रत ति धार्म्यतां।।१।। मढी रोतक लाला तरसुख बासी बोघणी।। मिती पोश वदि ९ संवत् १८७३ ।।

हिंदी अनुवाद-

ा।६।। ॐ श्री गणेश जी को नमन!।। कल्याण हो! श्री नरपति विक्रमादित्य के संवत् में। एक वर्ष, एक महीना, दो सप्ताह, एक दिन में संपूर्ण हुआ। मन में विचार आने पर, बुध देव, कुरुक्षेत्र निवासी, ज्वाला देव के चेले, शिवनाथ देव के नाती ने श्री ज्वाला जी के लिये यह मंदिर बनवाया ।।श्लोक।। देवयज्ञ, व्रत, तीर्थ, सुपात्र, ब्राह्मणभोजन, पितृ-श्राद्ध, (व) जटाधारी (संन्यासी) हेतु व्यय होता धन धर्म के लिये है। बोघणी-वासी लाला तरसुख, रोहतक मंडी से। पौष मास कृष्ण पक्ष मिती ९ संवत् १८७३।[333]

और इसमें १५ तिथियां होती हैं। एक मास, जो लगभग २९.५ दिनों की अवधि का होता है, दो पक्षों में विभाजित होता है। अमावस्या के बाद के दिन से शुरू होने वाले वर्धन चरण को *गौर* या *शुक्ल* पक्ष (उज्ज्वल या शुभ पखवाड़ा) कहा जाता है। घटते चरण को *कृष्ण* या *वध्य* पक्ष कहा जाता है (अंधेरा पखवाड़ा, जिसे अशुभ माना जाता है)। २ *मास* से एक *रितु* (मौसम) बनाते हैं, ३ ऋतु एक *अयन* बनाती हैं, और २ दो अयन से एक वर्ष बनता है (देखें Subhamay Das, *What is the Hindu Calendar System,* 2019)। (https://www.learnreligions.com/the-hindu-calendar-system-1770396)। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया; Ebenezer Burgess (trans.), *Translation of the Sūrya-Siddhānta: A Text of Hindu Astronomy*, New Haven: Journal of the American Oriental Society, 1860: 265-272.

[332] *निमित* = समर्पित।

[333] १८१६ ईसा।

शिलालेख संख्या– २
स्थान– मंदिर के प्रवेश द्वार के ऊपर
लिपि– देवनागरी

Dorn/Kirsten № 12: Vorobiev-Desyatovsky, 1954 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 5).

पंक्ति १– ः॥६०॥ ॐ श्री गणेशाय नमः॥ श्लो
पंक्ति २– क ॥ स्वस्ति श्री नरपति विक्रमादित रा
पंक्ति ३– ज साके॥ श्री ज्वाला जी निमत दरवा
पंक्ति ४– जा बणाया: अती कं च नगिर: संन्यासी
पंक्ति ५– राम दत्ता वासी कोटेश्वर महादेव का॥
पंक्ति ६– मिति आसो जवदि ८। संवत १८६६॥

अनुकलन और संशोधन के बाद–
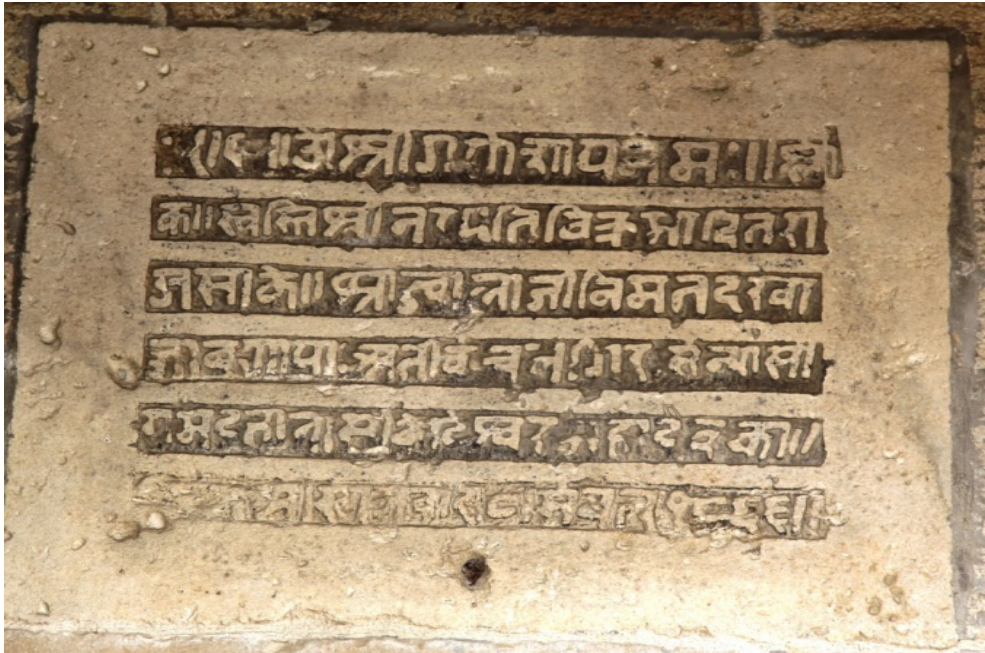
ः॥६०॥ ॐ श्री गणेशाय नमः ॥श्लोक॥ स्वस्ति श्री नरपति विक्रमादित राज साके॥ श्री ज्वाला जी निमत दरवाजा बणाया: अती कंचनगिर: संन्यासी राम दत्ता वासी कोटेश्वर महादेव का॥ मिती असोज वदि ८। संवत् १८६६॥

हिंदी अनुवाद

ः॥६०॥ ॐ श्री गणेश जी को नमन! ॥श्लोक॥ कल्याण हो! श्री नरपति विक्रमादित्य संवत् में। सर्वोच्च कंचनगिर (व) कोटेश्वर महादेव के निवासी राम दत्ता ने श्री ज्वाला जी के लिये (यह) दरवाजा बनाया॥ अश्विन मास कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि। संवत् १८६६॥

जैसा कि शिलालेख में वर्णित तिथि से पता चलता है, देवनागरी लिपि में पत्थर की शिलापट्टी कहती है कि इस दरवाजे का निर्माण १८०९ में संन्यासिन कंचनगिर[334] और कोटेश्वर महादेव[335] के राम दत्ता द्वारा किया गया था। *निमात, बणाया,* और *विक्रमादित* जैसे शब्द पंजाबी भाषा के हैं। इसी तरह, महीने और वर्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले कुछ अंक गुरुमुखी लिपि के हैं। अधिकांश अन्य शिलालेखों की तरह शिलालेख का लेखक पंजाबी पृष्ठभूमि का प्रतीत होता है।

----

[334]वह बुंदेलखंड के गोसाईं सशस्त्र योद्धा तपस्वियों के नेता, गोसाईं नरिंद्रगीर, से जुड़े एक वरिष्ठ संन्यासी और प्रबंधक थे, जिनकी मृत्यु १८०८ में हुई थी अर्थात् जिस वर्ष यह पोर्टल बनाया गया था (देखें Pinch 2004: 559-597; Pinch 2014: 67).

[335]कोटेश्वर महादेव, टेहरी गढ़वाल, उत्तराखंड।

शिलालेख संख्या– ३

स्थान– मंदिर के प्रवेश द्वार के ऊपर स्थित बालखाने (टावर रूम) की बाहरी खिड़की के ऊपर [शुरू में मरम्मत कार्य के दौरान इसे उल्टा लगा दिया गया था, लेकिन बाद में सही कर दिया गया][336]

लिपि– देवनागरी

Dorn/Kirsten № 11: Unvala (1950) № 9; Vorobiev-Desyatovsky, 1954 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 7).

---

[336]देखें A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 45.

पंक्ति १– ॐ स्वस्ति श्री गणेशाय नमः।। नरपति वीर
पंक्ति २– वीक्रमादित राज शाके।। श्री जुवाला जी
पंक्ति ३– नीमात: दरवाजा बगला भाई सो
पंक्ति ४– वराज तथा उतम चंद जाती कुकड बा
पंक्ति ५– सी त्रावलपुर गोकरपाका ठाकुर:
पंक्ति ६– जी का तथा श्री जवाला जी का वासता
पंक्ति ७– मिती सावण बदि ११ संमत १८८३।।

अनुकलन और संशोधन के बाद–

ॐ स्वस्ति श्री गणेशाय नमः।। नरपति वीर वीक्रमादित राज शाके।। श्री जुवाला जी नीमात: दरवाजा बगला भाई सोव राज तथा उतम चंद जाती कुकड बासी त्रावलपुर गोकरपाका।। ठाकुर: जी का तथा श्री जवाला जी का वासता।। मिती सावण वदि ११ संमत १८८३।।

हिंदी अनुवाद–

ॐ! कल्याण हो! श्री गणेश जी को नमन! नरपति वीर विक्रमादित्य संवत् में। त्रावलपुर गोकरपाका निवासी (व) कुकुड़ जाति के भाइयों सोव राज तथा उत्तम चंद ने श्री ज्वाला जी के लिये (यह) दरवाजा बनाया।। ठाकुर जी तथा श्री ज्वाला जी को विनम्र विनती। श्रवण मास कृष्ण पक्ष की ग्यारहवीं तिथि। संवत् १८८३।।

शिलालेख संख्या– ४

स्थान– कोठरी नं. १ के दरवाजे के ऊपर

लिपि– देवनागरी

Dorn/Kirsten № 13 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 25).
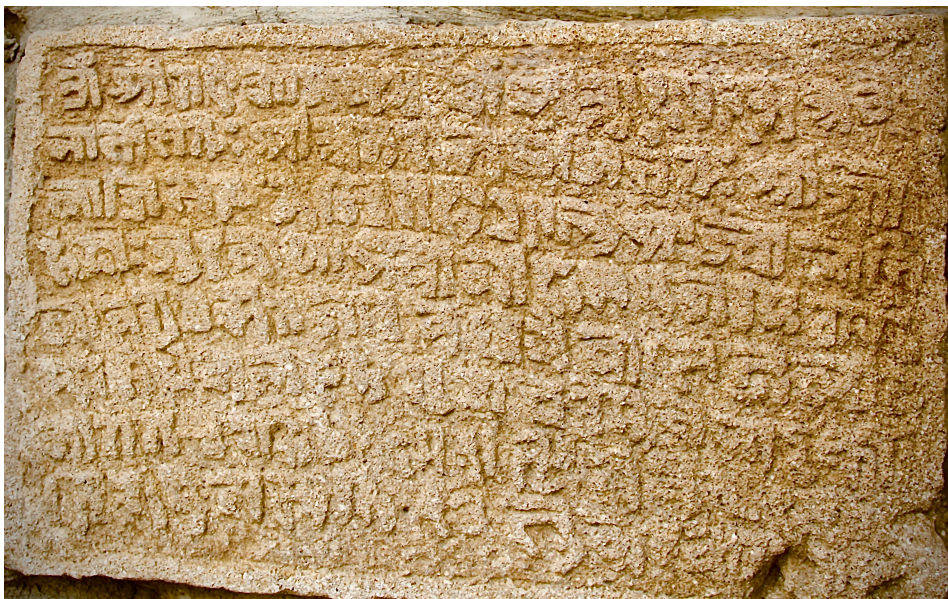
पंक्ति १– ॐ श्री गणेशाय नमः।। ॐ सत: श्री त्वरिता सत: श्री ख

पंक्ति २**–** याती सत: श्री सरण्यू जि सत: श्री ज्वा

पंक्ति ३– ला जि सत: श्री तारा जि सत: श्री ज्वाला जि
पंक्ति ४– सत: तुलजा श्री भवानी सत: श्री भद्रका
पंक्ति ५– ली सत: श्री पार्वती जि सत: श्री बिसा
पंक्ति ६– खा जि वासता सत: श्री दुरगा जि का॥
पंक्ति ७– मिती सावण वदि १५॥ 卐 संवत १८७९
पंक्ति ८– ।तारा दत द्वारा श्री जुवाला को निमत।

अनुकलन और संशोधन के बाद–

ॐ श्री गणेशाय नमः॥ ॐ सत्य श्री त्वरिता सत्य श्री ख्याती सत्य श्री सरण्यू जी सत्य श्री ज्वाला जी सत्य श्री तारा जी सत्य श्री ज्वाला जी सत्य तुलजा श्री भवानी सत्य श्री भद्रकाली सत्य श्री पार्वती जी सत्य श्री बिसाखा जी वासता सत्य श्री दुर्गा जी का॥ मिती सावण वदि १५॥ 卐 संवत १८७९। तारा दत्त द्वारा श्री ज्वाला को निमित्त।

हिंदी अनुवाद–

ॐ। श्री गणेश जी को नमन! ॐ। सत्य श्री त्वरिता, सत्य श्री[337] ख्याती, सत्य श्री सरण्यू जी, सत्य श्री ज्वाला जी, सत्य श्री तारा जी, सत्य श्री ज्वाला जी, सत्य श्री तुलजा भवानी, सत्य श्री भद्रकाली, सत्य श्री पार्वती जी, सत्य श्री बिसाखा जी, (तथा) सत्य श्री दुर्गा जी को विनम्र विनती। श्रवण मास कृष्ण पक्ष की पन्द्रहवीं तिथि। 卐 संवत् १८७९। तारा दत्त द्वारा श्री ज्वाला जी को समर्पित।

----

[337] *सत: श्री* अभिव्यक्ति सिख धर्म के *सति श्री अकाल* (*ਸਤਿ ਸ੍ਰੀ ਅਕਾਲ*) पर शैलीबद्ध प्रतीत होती है, जिसका उपयोग उदासियों ने किया था जो सिख धर्म के धर्म-प्रचारक थे। *सत* संस्कृत शब्द *सत्य* से लिया गया है। *श्री* शब्द का उपयोग सम्मान के लिये किया जाता है। *अकाल* (समय से परे) सिख धर्म में सर्वशक्तिमान ईश्वर के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले नामों में से एक है। इस प्रकार, *सत श्री अकाल* वाक्यांश का अर्थ *आदरणीय सर्वशक्तिमान परम सत्य* है।

शिलालेख संख्या– ५
स्थान– कोठरी नं. २ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी

पंक्ति १– ॐ श्री गणेशाय नम: आदपरुस
पंक्ति २– अवनाशी अमरलाल जि भवानी
पंक्ति ३– दास पुजा पिता गुलाबरायसुतजात वध
पंक्ति ४– वावासी जलाती ——गुमासता पुज
पंक्ति ५– पुरः संवत १७७० —— भाइ कांति
पंक्ति ६– मिती ———— राम चुघ
पंक्ति ७– वदि १॥

अनुकलन और संशोधन के बाद–

ॐ। श्री गणेशाय नम: । आदिपुरुष अविनाशी। अमर लाल जी, भवानी दास पूज्य पिता, गुलाब राय सुत, जाति वधवा, वासी जलाती, गुमाश्ता पुज पुर। संवत् १७७० मिती पोश वदि १॥ भाई कांति राम चुघ॥

हिंदी अनुवाद–

ॐ। श्री गणेश जी को नमन! आदिपुरुष[338] अविनाशी। पुज पुर के गुमाश्ता अमर लाल जी, (उनके) पूज्य पिता भवानी दास, (और) पुत्र गुलाब राय, जाति वधवा, जलाती के वासी। संवत् १७७० के पौश मास कृष्ण पक्ष की पहली तिथि। भाई कांति राम चुघ॥

----

[338]प्रथम व्यक्ति, भगवान विशु की उपाधि, दार्शनिक रूप से, अवैयक्तिक ब्रह्मन्।

शिलालेख संख्या– ६
स्थान– कोठरी नं. ३ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
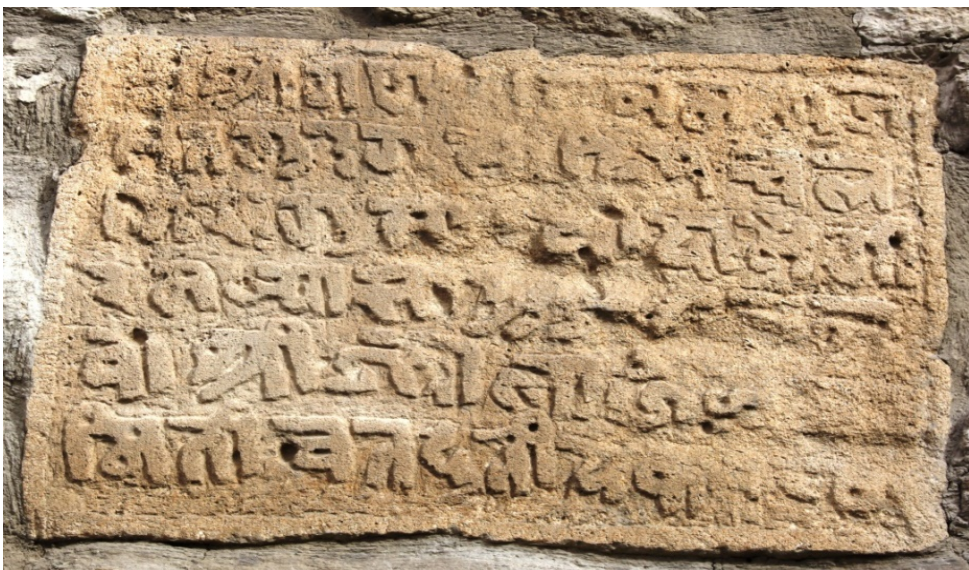
Dorn/Kirsten No. 4: Ashurbeyli (1946) No. 4 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 23).

पंक्ति १– ॐ श्री गणेशाय नमः पुज
पंक्ति २– सतगुर गुसाइ मचल
पंक्ति ३– गिर: गुसाइ वावा मगी
पंक्ति ४– रा सन्यासी जगह वन
पंक्ति ५– वा श्री ज्वाला जि नमत
पंक्ति ६– मिती चतदुतीयक १८४०

अनुकलन और संशोधन के बाद–

ॐ॥ श्री गणेशाय नमः॥ पुज सतगुर॥ गुसाइ मचलगिर: गुसाइ वावा मगीरा सन्यासी जगह वनवा श्री ज्वाला जि नमत॥ मिती चतदुतीयक १८४०॥

हिंदी अनुवाद–

ॐ। श्री गणेश जी को नमन! पूज्यवर सतगुर![339] गोसाईं मचल गिर (तथा) गोसाईं बावा मगीरा संन्यासी ने (यह) जगह बनवाई। श्री ज्वाला जी को समर्पित। चैत्र मास की द्वितीय तिथि। (संवत) १८४०।

---

[339] *सत्गुर/सतगुर* (ਸਤਿਗੁਰ, सच्चा गुरु) शब्द का प्रयोग सिख धर्म में सर्वशक्तिमान ईश्वर के साथ-साथ गुरु नानक देव जैसे गुरुओं के लिये इस्तेमाल किये जाने वाले नामों में से एक है। इसका उपयोग उदासियों ने भी किया था जो सिख धर्म के धर्म-प्रचारक थे। ।

शिलालेख संख्या– ७
स्थान– कोठरी नं. ४ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
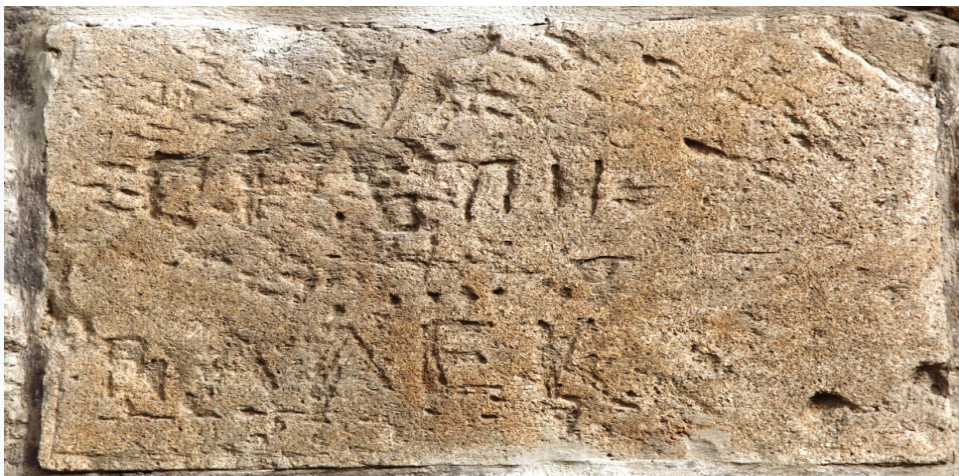
पंक्ति १– 卐 ॐ
पंक्ति २– श्री गणेशाय नमः।।
पंक्ति ३–
पंक्ति ४– IAAEK
पंक्ति ५–

ऐसा प्रतीत होता है कि देवनागरी में लिखे गए अक्षरों को काटकर सिरिलिक लिपि[340] के अक्षरों से उपरिलेख (overwriting) करके शिलालेख को क्षति पहुंचाने का प्रयास किया गया लगता है। शायद, "इयाक" (IAAEK) उसी व्यक्ति का नाम है जिसने टैबलेट में तोड़फोड़ करते हुए अपना नाम उत्कीर्ण किया है।

----

[340]सिरिलिक (Cyrillic) लिपि को अज़रबैजान में १९२९ में लागू किया गया था।

शिलालेख संख्या– ८
स्थान– कोठरी नं. ५ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी

पंक्ति १– ॐ श्री ग णे शा य न
पंक्ति २– मः।।
पंक्ति ३– जवालाऐ नीमित

अनुकलन और संशोधन के बाद–

ॐ।। श्री गणेशाय नमः।। ज्वालाय निर्मित ।

हिंदी अनुवाद–

ॐ। श्री गणेश जी को नमन! ज्वाला [जी] के लिये बनवाया।

शिलालेख का पठन अस्थायी है क्योंकि देवनागरी में इसके अक्षर, शायद तोड़फोड़ किये जाने की वजह से, पूरी तरह से विकृत हो गये हैं।

शिलालेख संख्या– ९
स्थान– कोठरी नं. ६ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
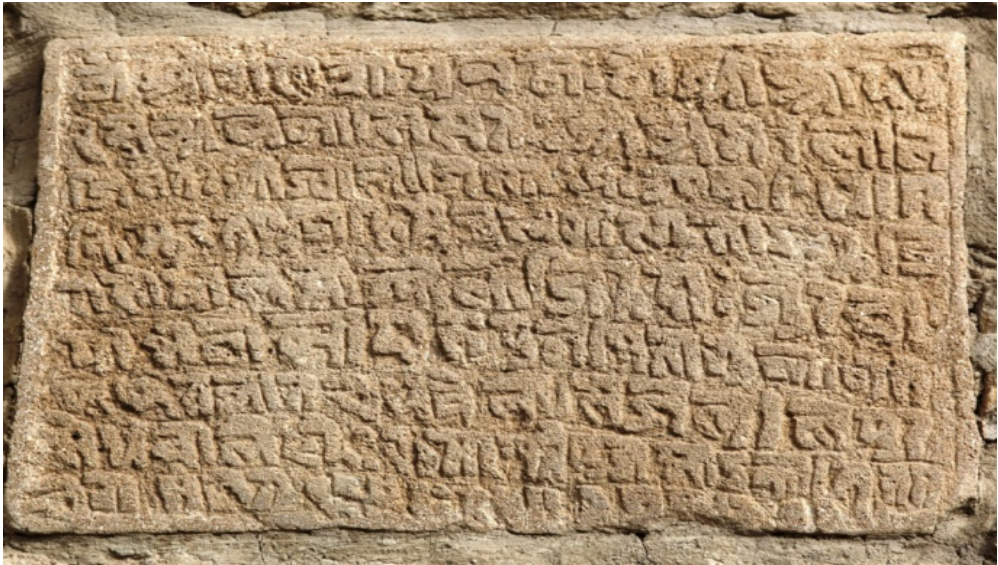
आकृति संख्या 1: Dorn/Kirsten No. 3 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 21)

पंक्ति १– ॐ श्री गणेशाय नमः ॐ श्री श्रादए
पंक्ति २– रस्म श्रवना जि सत: श्री चमन लाल
पंक्ति ३– जिस पर श्री ज्वाला जि सत: का उपकार धाम
पंक्ति ४– कि मस्तषज।................ताइ: 卐। ज
पंक्ति ५– य हो माता श्री ज्वाला जि सत: जुरवा
पंक्ति ६– ण भवाना दास पराताप तागु.....
पंक्ति ७– ....
पंक्ति ८– ....
पंक्ति ९– ....

पठनीय भाग का अनिश्चित हिंदी अनुवाद–

ॐ। श्री गणेश जी को नमन! श्रवणा जी सत्य की (पूजा) रस्म में श्रद्धा! श्री चमन लाल जिस पर श्री ज्वाला जी सत्य का उपकार। धाम को मस्तक! .... 卐 जय हो माता श्री ज्वाला जी सत्य की! जुरवाण भवाना दास प्रताप तागु..........

शिलालेख संख्या– १०
स्थान– कोठरी नं. ७ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– गुरुमुखी

शिलालेख नं. १० और ११, गुरुमुखी लिपि में हैं। दोनों शिलालेखों में से प्रत्येक का पहला भाग *मूल मंतर* है।[341] यह भी सुझाव दिया गया है कि "चूंकि गुरु नानक ने सुराखानी के मंदिर का दौरा किया था, ऐसा लगता है कि कुछ उदासी वहां रहते थे और उन्होंने वहां गुरु की यात्रा के सम्मान में तख्तियां स्थापित कीं थीं।"[342]
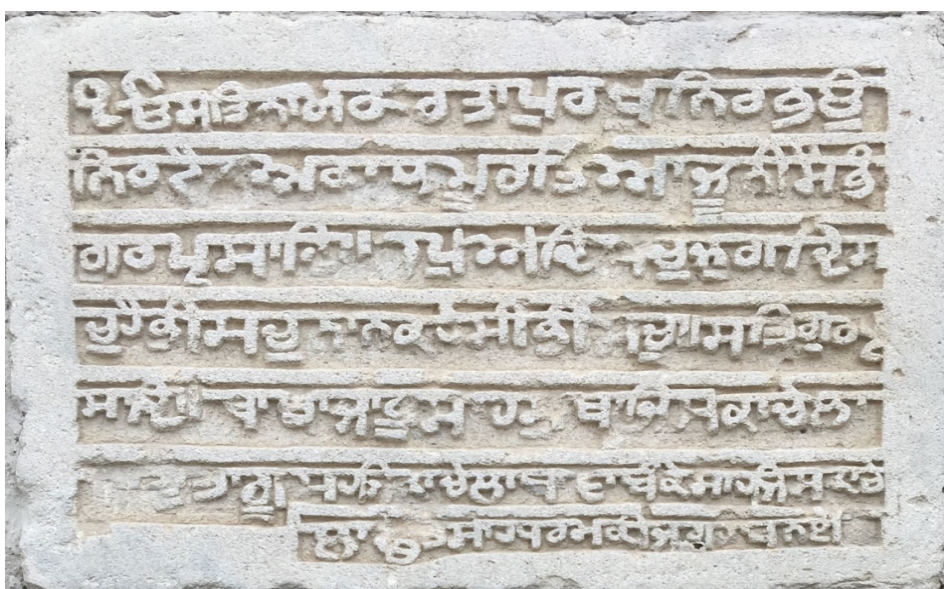
[341] *मूल मंतर* (*ਮੂਲ ਮੰਤਰ* अर्थात् *मूल सूत्र, मौलिक शिक्षण*), *जपुजी साहिब* का पहला श्लोक है। यह विशेष छंद शायद सबसे प्रसिद्ध है और सभी भक्त सिखों द्वारा प्रतिदिन सुबह पढ़ा जाता है। यह बाबा नानक की आवश्यक शिक्षाओं को सारांशित करता है और सिख धर्म की एक संक्षिप्त सैद्धांतिक अभिव्यक्ति है। देखें Eleanor Nesbitt, *Sikhism: A Very Short Introduction,* Delhi: Oxford University Press, 2016: 22-24; Pashaura Singh, *The Guru Granth Sahib: Canon, Meaning, and Authority,* New Delhi: Oxford University Press, 2000: 84-89; 2006: 245-258.

[342] देखें Surinder Singh Kohli, *Travels of Gurū Nanak*, Chandigarh: Publication Bureau, Panjab University, 1969: 157.

Hand-made copy of 1802: Dorn/Kirsten No. 2 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 19).

पंक्ति १– ੧ੴ ਸਤਿਨਾਮਕਰਤਾਪੁਰਖੁਨਿਰਭਉ

पंक्ति २– ਨਿਰਵੈਰਅਕਾਲਮੂਰਤਿਆਜੂਨੀਸੈਭੰ

पंक्ति ३– ਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿ॥ ਜਪੁਅਦਿਸਚੁਜੁਗਦਿਸ

पंक्ति ४– ਚੁਹੈਭੀਸਚੁਨਾਨਕਹੋਸੀਭੀਸਚੁ॥ਸਤਿਗੁਰਪ੍ਰ

पंक्ति ५– ਸਾਦਿ॥ ਬਾਬਾ ਜਾਗੂਸਾਹਸੁਥਾਜਿਕਾਚੇ

पंक्ति ६– ਲਾਬਾਵਾਭਾਗੂਸਹਜਿ[ਸ]ਕਾਚੇਲਾਬਾਵਾਬੰਕੇਸਾਹਜਿਸਕਾਚੇ

पंक्ति ७– ਲਾਛਤਸਾਹਪਰਮਕੀਜਗਹਬਣਈ

देवनागरी में–

पंक्ति १– ੧ੴ सतिनामकरतापुरखनिरभउ

पंक्ति २– निरवैरअकालमूरतिआजूनीसैभं

पंक्ति ३– गुरप्रसादि॥ जपुअदिसचुजुगदिस

पंक्ति ४– चुहैभीसचुनानकहोसीभीसचु॥ सतिगुरप्र

पंक्ति ५– सादि॥ बाबा जागुसाहसुथाजिसकाचे

पंक्ति ६– लाबावाभागुसहजि(स)काचेलाबावाबंकेसाहजिसकाचे

पंक्ति ७– लाछतसाहधरमकीजगहबनई

अनुकलन और संशोधन के बाद–

ੴ ਸਤਿ ਨਾਮ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ ਨਿਰਭਉ ਨਿਰਵੈਰ ਅਕਾਲ ਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈਭੰ ਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥ਜਪੁ॥ ਆਦਿ ਸਚੁ ਜੁਗਾਦਿ ਸਚੁ॥ ਹੈ ਭੀ ਸਚੁ ਨਾਨਕ ਹੋਸੀ ਭੀ ਸਚੁ॥ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥ ਬਾਬਾ ਜਾਗੂ ਸ਼ਾਹ ਸੁਥਾ ਜਿਸ ਕਾ ਚੇਲਾ ਬਾਵਾ ਭਾਗੂ ਸ਼ਾਹ ਜਿ[ਸ] ਕਾ ਚੇਲਾ ਬਾਵਾ ਬੰਕੇ ਸ਼ਾਹ ਜਿਸ ਕਾ ਚੇਲਾ ਛਤ ਸ਼ਾਹ ਧਰਮ ਕੀ ਜਗ੍ਹਾ ਬਣਾਈ॥

अनुकलन और संशोधन के बाद देवनागरी में–

ੴ[343] सति नाम[344] करता[345] पुरखु[346] निरभउ[347] निरवैर[348] अकाल मूरति[349] अजूनी[350] सैभं[351] गुर प्रसादि ॥जपु॥ आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥

---

[343]ੴ = *ਇੱਕ ਓਅੰਕਾਰ* (*इक्क ओंकार*) सिख धर्म का पवित्र प्रतीक है। यह दो वर्णों का संयोजन है, अंक ੧ (इक्क, एक) और *ਓਅੰਕਾਰ* (*ओंकार*) शब्द का पहला अक्षर *ਓ* (*ओ*), जो गुरुमुखी लिपि का पहला अक्षर ੳ (ऊड़ा) भी है, जिस के साथ एक विशेष रूप से अनुकूलित स्वर ੋ को मिलाकर *ਓ* (*ओ*) बनाया गया है। वज़ीर सिंह का कहना है कि *ओंकार* "प्राचीन भारतीय शास्त्रों के *ओम्* का एक रूपांतर (इसके वर्णविन्यास में मामूली बदलाव के साथ) जो ब्रह्मांड के रूप में विकसित होने वाले बीज-बल को दर्शाता है" (देखें, Wazir Singh, "Metaphysics in the Philosophy of Guru Nanak," *Journal of Religious Studies*, vol. 1, no. 1, 1969: 56)। यह *मूल मंत्र* का प्रारंभिक वाक्यांश है, जो *गुरु ग्रंथ साहिब* में शुभारंभ वाक्यांश के रूप में मौजूद है, और गुरु नानक की पहली रचना है। इसके अलावा, मूल मंत्र को भी जपुजी साहिब के शुरु में रखा गया है, जिसके बाद ३८ स्तोत्र और एक अंतिम श्लोक है। सिख धर्म का मानना है कि ੴ अर्थात् सर्वोच्च परम वास्तविकता केवल एकमात्र है, सभी रूपों को उसमें समाहित करता है और सभी रूपों में व्याप्त है। उसका वर्णन करना संभव नहीं है और न ही उसे मन से समझा जा सकता है। वह अपनी पूरी सृष्टि में विविध रूपों, विशेषताओं, और रंगों में निरंतर प्रकट होने के बावजूद एक रहता है। ब्रह्मांड उनके *हुकम* (ਹੁਕਮ) की योजना का हमेशा और निरंतर पालन करेगा (विवरण के लिये देखें www.sikhiwiki.org)।

[344] *सति नाम* = *सत् नामन्* (संस्कृत) = सच्चा नाम, सत्य उसका नाम है। चूंकि हम भगवान पर उनके अदृश्य सार के कारण ध्यान केंद्रित करने में सक्षम नहीं हैं, *नाम* (शब्द, भगवान का नाम) उन तक पहुंचने के लिये हमारे पास उपलब्ध एकमात्र माध्यम है।

[345] *करता (संस्कृत) = निर्माता*।

[346]पुरखु = पुरख = पुरुष (संस्कृत) = नर।

[347]निर्भौ = निर्भय (संस्कृत) = (वह एक जो) बिना किसी डर के।

[348]निर्वैर (संस्कृत) = (वह एक जो) बिना शत्रुता के।

[349]अकालमूर्ति (संस्कृत) = अमर, कालातीत (वह रूप/आकार जो समय या मृत्यु के अधीन नहीं है)। दूसरे शब्दों में, उसके लिये कोई समय या मृत्यु नहीं है क्योंकि वह शाश्वत है और हमेशा के लिये मौजूद है।

[350] *अजूनी* = *अजनम्* (संस्कृत) = अजन्मा।

[351]सैभं = स्वयंभू (संस्कृत) = स्व-निर्मित, जो बिना बाहरी समर्थन के अकेले विद्यमान है।

सतिगुर प्रसादि॥ बाबा जागू साह सुथा जिस का चेला बावा भागू शाह जि[स]का चेला बावा बंके शाह जिस का चेला छत शाह धरम की जगह बणाई॥

हिंदी अनुवाद–

परमात्मा एक है, उसी का नाम सत्य है, [वह] सृजनकर्ता, निर्भय, द्वेष-रहित, मृत्युहीन, अजन्मा, [और] स्वयंभु (स्वयं से उत्पन्न हुआ) है [जिसे] गुरु-कृपा से ही प्राप्त [किया जा सकता है] ॥[इसे दोहराएं (ध्यान दें)]॥ वह आरम्भ में सच था; वह अनंत काल से सच है; वह अब सच है (और) नानक (कहते हैं कि) वह भविष्य में भी सच होगा। सच्चे गुरु की कृपा। बाबा जगू शाह सुथा, जिनके शिष्य बावा भागू शाह थे, उनके शिष्य [थे] बावा बांके शाह, [और] जिनके शिष्य [हैं] छत्त शाह [जिन्होंने] (यह) पवित्र स्थान बनाया।[352]

सात लाइनों के इस शिलालेख में पहली चार लाइनों में *मूल मंतर* (हिन्दी, *मूल मंत्र*) के पश्चात, यहां के पवित्र स्थान (धर्म-की-जगह) के निर्माण से जुड़े व्यक्तियों बाबा जागूशाह सुथा[353] और उनके तीन शिष्यों– बाबा भागू शाह, बाबा बाँके शाह, और छत्त शाह– के नामों का उल्लेख किया गया है। इस शिलालेख के अक्षरों को साफ़-सुथरे ढंग से काटा गया है, वे अच्छी हालत में हैं, तथा आसानी से पढ़े जा सकते हैं। केवल आधी दर्जन अक्षर कुछ क्षतिग्रस्त हैं, लेकिन उन्हें पढ पाना कठिन नहीं है। इस प्रकार, शिलालेख को बिना किसी कठिनाई के पढ़ा जा सकता है। गुरुमुखी लिपि के अक्षर उसके प्राचीनतम रूप के हैं जिसको सिखों के द्वितीय गुरु, श्री गुरु अंगद देव जी, ने अंतिम रूप दिया था तथा उनका मानकीकरण किया था। शिलालेख की भाषा संत भाषा है।[354] शिलालेख में किसी तिथि का उल्लेख नहीं है। यह संभवतः नानक की

---

[352]पंक्तियां ५-७ का लिप्यंतरण और अनुवाद दोनों जे.ई. एबॉट पर आधारित है (J.E. Abbott, "Indian Inscriptions on the Fire Temple at Bāku," *Journal of the American Oriental Society*, vol. 29, 1908: 301).

[353]वे सुथरे शाह से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं, जिन्हें गुरु हर गोबिंद द्वारा सुथरा का उपनाम दिया गया था। सुथरे शाह का जन्म कश्मीर में बारामूला के पास बहरामपुर गाँव में नन्दे शाह खत्री के यहाँ हुआ था। कहा जाता है कि वे अपने मुंह में दांतों के साथ पैदा हुए थे और इसे एक अपशकुन मानकर उन्हें उनके माता-पिता ने त्याग दिया था। गुरु हर गोबिंद ने उन्हें अपनी शरण में लिया और उनका नाम *सुथरा* रखा (देखें A. Barth, *The Religion of India*, New Delhi: S. Chand and Co, 1969: 249-250)। सुथरे शाही साधु कई मंदिरों, समाधियों, कुओं, और धर्मशालाओं की स्थापना के लिये जाने जाते हैं (देखें, उदाहरण के लिये, ਪੰਡਿਤ ਬ੍ਰਹਮਾਨੰਦ ਉਦਾਸੀਨ, *ਗੁਰੂ ਉਦਾਸੀਨ ਮੱਤਾ ਦਰਪਨ*, ਸਖਰ: ਏ.ਐਚ. ਉਦਾਸੀਨ, 1923: 153)। १७४४ में, अस्थान सुथरेशाही, चावलमंडी, छत्ती खूही, अमृतसर की स्थापना खुशी राम के द्वारा की गई थी (उपरोक्त,२४५-२४६)। ऐसा ही एक अस्थान दिल्ली में लाल किले के पास रिंग रोड पर स्थित है।

[354]संत भाषा आरम्भिक मध्ययुगीन पंजाबी व ब्रजभाषा का सम्मिश्रण है जिसका प्रयोग पंजाबी संतों द्वारा किया जाता था।

यात्रा के तुरंत बाद की अवधि का है और एक स्मारक शिलालेख प्रतीत होता है जिसे ऐसा लगता है कि यहाँ पर बाबा नानक की यात्रा की स्मृति में स्थापित किया गया था। इस प्रकार, यह लगभग पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य का हो सकता है।

शिलालेख संख्या– ११
स्थान– कोठरी नं. १० के दरवाजे के ऊपर
लिपि– गुरुमुखी

शिलालेख नं. १० की तरह, यह शिलालेख भी *मूल मंतर* से आरम्भ होता है। लेकिन, यह ध्यान देने योग्य है कि इस शिलालेख के *मूल मंतर* की केवल अढ़ाई पंक्तियाँ ही शिलालेख नं. १० से मिलती हैं। उसके पश्चात, सुप्रसिद्ध अभिव्यक्ति '*वाहेगुरु जी सहाइ*' जोड़ दिया गया है। चूंकि इस अभिव्यक्ति का प्रयोग सिखों के दसवें गुरु गोबिंद सिंह ने किया था, ऐसा प्रतीत होता है कि इस शिलालेख को गुरु गोबिंद सिंह के समय या फिर शायद उनके कुछ समय स्थापित किया गया होगा।[355] शिलालेख की स्थापना के पीछे प्राथमिक उद्देश्य उस व्यक्ति का नाम दर्ज करना प्रतीत होता है जिसने इस धर्म-की-जगह (पवित्र स्थान) के इस भाग/कक्ष को बनवाया था। यह पंक्तियां ४-८ से स्पष्ट हो जाता है, जहां इसके निर्माता करता राम उदासी का नाम अन्य उदासी साधुओं के नामों के साथ दिया गया है।

बीसवीं शताब्दी के दौरान किसी समय, उपेक्षा के कारण या संभवतः बर्बरता के परिणामस्वरूप, यह शिलालेख क्षतिग्रस्त हो गया और इसके दो टुकड़े हो गए। अंतिम पंक्ति के पहले तीन शब्दों को पहुँची प्राकृतिक क्षति के अलावा, इसी पंक्ति का मध्य भाग और भी क्षतिग्रस्त हो गया जब इसके दो टुकड़े हुए। कुछ वर्ष पहले इस क्षतिग्रस्त भाग की मरम्मत करते समय इसे तब और भी क्षति पहुँचा दी गयी जब सीमेंट इत्यादि का प्रयोग बड़ी लापरवाही से किया गया। लगभग सभी शब्दों का अनुमान लगाना पड़ता है। इसके अलावा, पाँचवीं पंक्ति में राम (ਰਾਮ) शब्द को केवल कठिनाई से ही पढ़ा जा सकता है। अंतिम पंक्ति के पहले भाग को पढ़ पाना और भी मुश्किल है। प्रथम व तृतीय शब्द का केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। १८६० में बने शिलालेख की हस्तनिर्मित प्रति और १८९० के दशक की इसकी तस्वीर (दोनों नीचे दी गई हैं) शिलालेख के क्षतिग्रस्त/लापता भागों को पढ़ने में बहुत मददगार रही हैं।

---

[355]देखें Gurvinder Singh Chohan, "Gurū Nanak's Travel: An Appraisal of Baku Visit," *Understanding Sikhism: The Research Journal,* January-December, vol. 17, no. 1, 2015: 20.
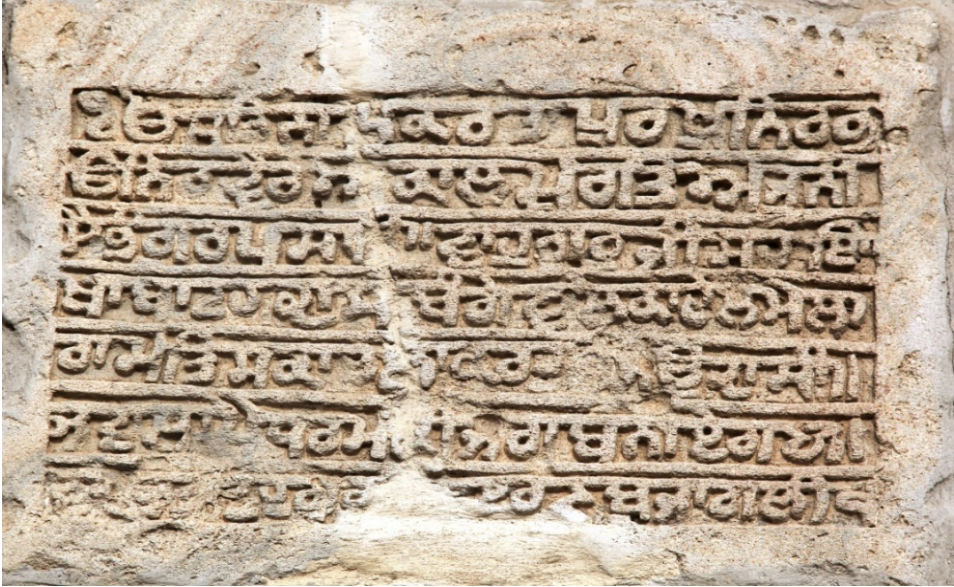
चित्र ३३– शिलालेख संख्या ११, जैसा कि अब कोठरी नं. १० के दरवाजे के ऊपर स्थापित है।

चित्र ३४– शिलालेख संख्या ११, ‘‘मरम्मत’’ से पहले।
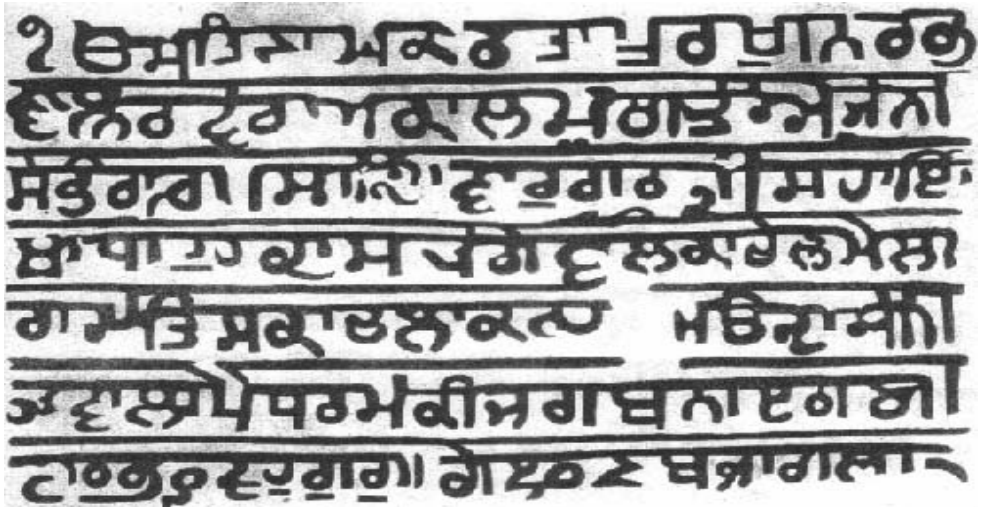
शिलालेख की १८६२ की हस्तनिर्मित प्रति [Dorn/Kirsten No. 2 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 19)].

क्षतिग्रस्त होने से पहले की १८९० के दशक की तस्वीर (स्रोत: Stewart 1897: विपरीत पृष्ठ 316).

पंक्ति १– ੧ਓੰਸਤਿਨਾਮਕਰਤਾਪੁਰਖੁਨਿਰਭ

पंक्ति २– ਓਨਿਰਵੈਰਅਕਾਲਮੂਰਤਿਅਜੂਨੀ

पंक्ति ३– ਸੈਭੰਗੁਰਪ੍ਰਸਾਦਿਵਾਹੁਗੁਰੂਜੀਸਹਾਇ॥

पंक्ति ४– ਬਾਬਾਟਹਦਾਸਬੰਗੇਵਾਲੇਕਾਚੇਲਮੇਲਾ

पंक्ति ५– ਰਾਮਤਿਸਕਾਚੇਲਾਕਰਤਾਰਾਮਉਦਾਸੀ॥

पंक्ति ६– ਜਵਾਲਾਪੈਧਰਮਕੀਜਗਬਨਾਏਗਯ।

पंक्ति ७– ਵਾਹੁਗੁਰੁਵਹਗੁਰੁ॥ ਕੇ[356]ਚਰਣਬੂਜਾਗਲੀਥਾਂ

देवनागरी में–

पंक्ति १– १ਓ सतिनामकरतापुरखनिरभ

पंक्ति २– ओ निरवैरअकालमूरति अजूनी

पंक्ति ३– सैभंगुरप्रसादिवाहुगुरूजीसहाइ॥

पंक्ति ४– बाबाटहदासबंगेवालेकाचेलमेला

पंक्ति ५– रामतिसकाचेलाकरतारामउदासी॥

पंक्ति ६– जवालापैधरमकीजगबनाएगय।

पंक्ति ७– वाहुगुरुवहगुरु॥केचरणबूजागलीथां

अनुकलन और संशोधन के बाद–

੧ੴ ਸਤਿ ਨਾਮ ਕਰਤਾ ਪੁਰਖੁ ਨਿਰਭਉ ਨਿਰਵੈਰ ਅਕਾਲ ਮੂਰਤਿ ਅਜੂਨੀ ਸੈਭੰ ਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ ॥ਜਪੁ॥ ਆਦਿ ਸਚੁ ਜੁਗਾਦਿ ਸਚੁ॥ ਹੈ ਭੀ ਸਚੁ ਨਾਨਕ ਹੋਸੀ ਭੀ ਸਚੁ॥ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾਦਿ॥ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਜੀ ਸਹਾਇ॥ ਬਾਬਾ ਟਹ ਦਾਸ ਬੰਗੇ ਵਾਲੇ ਕਾ ਚੇਲਾ ਮੇਲਾ ਰਾਮ ਤਿਸ ਕਾ ਚੇਲਾ ਕਰਤਾ ਰਾਮ ਉਦਾਸੀ॥ ਜਵਾਲਾ ਪੈ ਧਰਮ ਕੀ ਜਗ੍ਹਾ ਬਣਾਈ ਗਈ॥ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਵਾਹਿਗੁਰੂ ਕੇ ਚਰਣ ਬੂਜਾਗਲੀ ਥਾਂ॥

देवनागरी में अनुकलन और संशोधन के बाद–

१ਓ सति नाम करता पुरखु निरभउ निरवैर अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥जपु॥ आदि सचु जुगादि सचु॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु॥ सतिगुर प्रसादि॥ वाहिगुरू जी सहाइ॥ बाबा टह दास बंगे वाले का चेला मेला राम तिस का चेला करता राम उदासी॥ जवाला पै धरम की जगह बनाई गई। वाहिगुरू वाहिगुरू के चरण बूजागली थां॥

---

[356]"A Note by the Honorary Secretary, R.N. Cust," C.E. Stewart, "Account of the Hindu Fire-Temple at Baku, in the Trans-Caucasus Province of Russia," *The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, April 1897: पृष्ठ 316-317 के बीच) नीचे की रेखा में टूटे हुए हिस्से के सदृश "॥ਕੇ" दिखाता है।

हिंदी अनुवाद–

परमात्मा एक है, उसी का नाम सत्य है, [वह] सृजनकर्ता, निर्भय, द्वेष-रहित, मृत्युहीन, अजन्मा, [और] स्वयंभु (स्वयं से उत्पन्न हुआ) है [जिसे] गुरु-कृपा से ही प्राप्त [किया जा सकता है] ॥[इसे दोहराएं (ध्यान दें)]॥ वह शुरुआत में सच है; वह अनंत काल से सच है; वह अब सच है (और) नानक (कहते हैं) वह भविष्य में भी सच होगा। सच्चे गुरु की

कृपा। वाहिगुरु[357] जी का सहारा॥ बाबा टह दास[358] बंगे वाले का चेला मेला राम[359] [और] उस का चेला करता राम उदासी [जिसके द्वारा] ज्वाला पर (यह) धर्म की जगह बनाई गई। बूजागली [नामक] जगह वाहिगुरु के चरणों में [दो बार झुकती है]॥

---

[357] *वाहिगुरु* (हिंदी, *वाहिगुरु*) सिख धर्म में सर्वशक्तिमान ईश्वर का विशिष्ट नाम है। इस शब्द की कई व्याख्याएँ प्रतीत होती हैं–

१. संस्कृत *√गु* और *√रु/रू* को आमतौर पर क्रमशः *अंधेरा* और *हटाने वाला* के रूप में अनुवादित किया जाता है। इस आधार पर, *गुरु* शब्द (पंजाबी में *गुरु*) का अनुवाद "आध्यात्मिक अंधकार को दूर करने वाला" के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार, *वाहिगुरु* [*वाह* (आश्चर्य और विस्मय की परमानंद अभिव्यक्ति) +*गुरु*] शब्द की पारंपरिक व्याख्या "*आध्यात्मिक अंधकार को दूर करने वाला अद्भुत व्यक्ति*" है।
२. *वाहिगुरु* [*वाही/वाहि* (जो वहन करता है या धारण करता है)+*गुरु* = *वाहिगुरु*] "वह गुरु जो अपने भक्त को दूसरे किनारे तक ले जाता हो" ।
३. *वाहिगुरु* [*वाह* (आश्चर्य और विस्मय की उन्मादपूर्ण अभिव्यक्ति)+√*इ* (जाना)]=)+√*गु* (आध्यात्मिक अंधकार)+*√रु/रू* (उन्मूलन)] "ईश्वरीय निर्माता है जो अपने भक्तों को आध्यात्मिक अंधकार के उन्मूलन की ओर ले जाता है।"
४. *वाहिगुरु* [*वाह* (आश्चर्य और विस्मय की उन्मादपूर्ण अभिव्यक्ति)+*√इ* (जाना)]+√*गु* (आध्यात्मिक अंधकार)+*√रु/रू* (चेतावनी देना)] वह है "जो आध्यात्मिक अंधकार के खिलाफ चेतावनी देता है।"
५. *वाहिगुरु* [*वह* (ले जाना)+*आह** (यूरेका पल)+√*गु* (लाक्षणिक रूप से मादक पदार्थ, बुरे कर्म)+*√रु/रू* (टुकड़े करना, नष्ट करना, काटना)] वह है "जो भक्त को सांसारिक अस्तित्व के विनाश की ओर ले जाता है।"

*अभिव्यक्ति *आह* या *आहा* एक पहले से समझ में न आने वाली समस्या या अवधारणा को समझने के लिये अचानक व्यावहारिक मानवीय अनुभव को संदर्भित करता है। कुछ शोध *आहा फल* (जो यूरेका पल के रूप में भी जाना जाता है) का वर्णन एक स्मृति लाभ के रूप में करते हैं (*आहा* पर विवरण के लिये देखें A.H. Danek, T. Fraps, *et al*, "Aha! experiences leave a mark: facilitated recall of insight solutions," *Psychological Research, vol*. 77, no. 5, September 2013: 659–6692013: 659-669; P. Auble, J. Franks, S. Soraci, "Effort Toward Comprehension: Elaboration or Aha!?," *Memory & Cognition*, vol. 7, no. 6, 1979: 426–4341979: 426-434)।

[358] बाबा टहल दास (मृ. १८१४) एक प्रमुख उदासी साधु थे, जिन्होंने सिख शासन की अवधि के दौरान एक महत्वपूर्ण अखाड़ा चलाया और उनके नाम पर एक धर्मशाला गुजरांवाला जिले के पिंडी भट्टियां और दो डेरों, एक बानूर के पास तसोली जिला पटियाला में और दूसरा सरहिंद के पास कद्दोन (पैल) में स्थापित किये गए (देखें Sulakhan Singh. "The Udāsī Establishment under Sikh Rule," *Journal of Regional History*, vol. 1, History Department, Guru Nanak Dev University, Amritsar, 1980: 73-74; *Punjab State Gazetteers*, vol. XVII, A, Phulkian States, Patiala, Jind and Nabha, 1904: 78)। यह ध्यान देने योग्य है कि भाई फेरू का डेरा-ए-कलां, जो सत्रहवीं शताब्दी के दूसरे दशक में लाहौर-मुल्तान राजमार्ग पर स्थापित किया गया था, पंजाब की सबसे पुराने और सबसे सम्मानित संस्थानों में से एक था। इसके महंत भाई गुरदित्ता साहिब और टहल दास को क्रमशः १७८५ और १७९८ में सरदार लहिना सिंह भांगी और सरदार राम सिंह नक्काई से प्रमुख अनुदान प्राप्त हुआ था। इस डेरे द्वारा प्राप्त राजस्व मुक्त अनुदान की राशि ५६०२ रुपये प्रति वर्ष थी (विवरण के लिये देखें Kiranjeet Sandhu, *The Udāsīs in the Colonial Punjab: 1849 A.D.- 1947 A.D.,* a Ph.D. thesis submitted through the Department of History, Guru Nanak Dev University, Amritsar, 2011: 39 fn51 quoted from *Foreign/Political Proceedings*, 27 May 1853, no. 202, case 32)। अखाड़ा निर्बाण या अखाड़ा टहल दास को बाबा टहल दास ने १७८८ में अमृतसर में पूरा किया था (Sandhu, *पूर्व उद्धृत,* ४४) । कटरा करम सिंह, अमृतसर में अस्थान महंत टहल दास की स्थापना भी बाबा टहल दास द्वारा की गई थी (Sandhu, *पूर्व उद्धृत,* ४६) । टहल

यह सुझाव दिया गया है कि बाबा नानक ने "*वाहेगुरु वाहेगुरु*" का उच्चारण तब किया जब वे तीन दिनों के बाद, परम दिव्य प्रकटीकरण के बाद, वेईं नदी से निर्गत हुए।[360] शिलालेख की अंतिम पंक्ति ऐतिहासिक तौर पर अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें 'बुजागली' नामक शब्द का प्रयोग किया गया है जो पूर्वी अफ़्रीका में एक प्रसिद्ध जगह का नाम है।[361] चूँकि बाबा नानक ने अपनी चतुर्थ उदासी (आध्यात्मिक यात्रा) के दौरान अरब सागर के माध्यम से एक नाव पर मक्का की यात्रा की थी और यह संभावना है कि उन्होंने अफ्रीका के पूर्वी तट का चक्कर लगाया हो और वहाँ से मध्य पूर्व व मध्य एशिया से होते हुए भारत लौटे थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि शिलालेख के अंतिम दो शब्दों को '*बुजागली थां*' (बुजागली [नामक] जगह) पढ़ा जाए तब उन्होंने बुजागली में कुछ लोगों को अपने अनुयायी बनाया होगा। ये बुजागली नामक स्थान से बाबा जी के अनुयायी होंगे जिन्होंने *वाहेगुरु वाहेगुरु* को बाकू आ कर श्रद्धांजलि दी। चूँकि यह अभिव्यक्ति गुरु नानक से दृढ़ता से जुड़ी हुई है, इस शिलालेख के पूर्वी अफ्रीकी संबंध की प्रबल संभावना है। अन्यथा उदासी साधुओं ने पूर्वी अफ्रीका में धर्मांतरण किया होगा जब गुरु हरगोबिंद ने उन्हें सिख धर्म के प्रसार के लिये अलग-अलग दिशाओं में भेजा था।[362] उस मामले में, यह बुजागली के करता राम उदासी के शिष्य हो सकते हैं, जिन्होंने कोठरी के निर्माण के लिये दान दिया होगा और शिलालेख में *वाहेगुरु वाहेगुरु* के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करने के रूप में संदर्भित किया गया है। किसी भी स्थिति में, अंतिम पंक्ति को 'वाहुगुरु वाहुगुरु के चरण बुजागली थां' (बुजागली [नामक] जगह वाहिगुरु के चरणों में दो बार [नमन करती है]) के रूप में पढ़ा जाना चाहिए।

दास को वर्ष १७८७ में सरदार तारा सिंह से आठ एकड़ भूमि का एक और अनुदान भी मिला था (देखें Sandhu, *पूर्व उद्धृत, ८८*)।

[359]अखाड़ा बाबा मेला राम जी, जिसे काशीवाला अखाड़ा के नाम से भी जाना जाता है, की स्थापना १७८९ में मोहल्ला दुर्गा कुंड, अमृतसर में हुई थी (देखें Sandhu, *पूर्व उद्धृत,* ४३ fn ७०)। अमृतसर में अस्थान बावा मेला राम की स्थापना मेला राम ने १८०३ (विक्रम संवत् १८६०) में की थी (उदासीन १९२३: १५१)। बाबा मेला राम ने १८०३ में अमृतसर के महल्ला बकरवाना में एक धर्मशाला की भी स्थापना की थी (Sandhu, *पूर्व उद्धृत,* ५१ fn ११३)।

[360]ਉਧਮ ਸਿੰਘ, *ਸੱਚਾ ਗੁਰੂ,* ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ: ਸਿੰਘ ਬ੍ਰਦਰਜ਼, 1994: 54.

[361]ਬੁਜਾਗਲੀ (बुजागली), जो पूर्वी अफ्रीका के युगांडा में जिंजा के पास स्थित है, अपने झरनों के लिये प्रसिद्ध है। यह अब एक प्रमुख जलविद्युत पावर स्टेशन की स्थल है।

[362]उदासी साधुओं, जिन्होंने दूर-दराज के स्थानों की यात्रा की और जोशीले प्रचारक बने, गुरुओं, विशेषकर गुरु नानक, के संदेश को दूर-दूर तक पहुँचाया। तब, ये बुजागली से करता राम उदासी के शिष्य हो सकते हैं जिन्होंने प्रकोष्ठ के निर्माण के लिये दान दिया हो।

शिलालेख संख्या– १२
स्थान– कोठरी नं. १२ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी+लांडा
वर्तमान स्थिति– अपने स्थान से गायब है।

आकृति संख्या 2: Dorn/Kirsten No. 14 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 26)

पंक्ति १– ॥ॐ॥ श्री गणेशाय नम: ---
पंक्ति २– --- --- --- ---
पंक्ति ३– --- --- --- ---
पंक्ति ४– --- --- --- ---
पंक्ति ५– --- --- --- ---
पंक्ति ६– --- --- --- ---
पंक्ति ७– --- --- --- १८४१

ॐ और *श्री गणेशाय नम:* के अलावा केवल वर्ष (१८४१) को ही पढा जा सकता है।

शिलालेख संख्या– १३
स्थान– कोठरी नं. १२ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
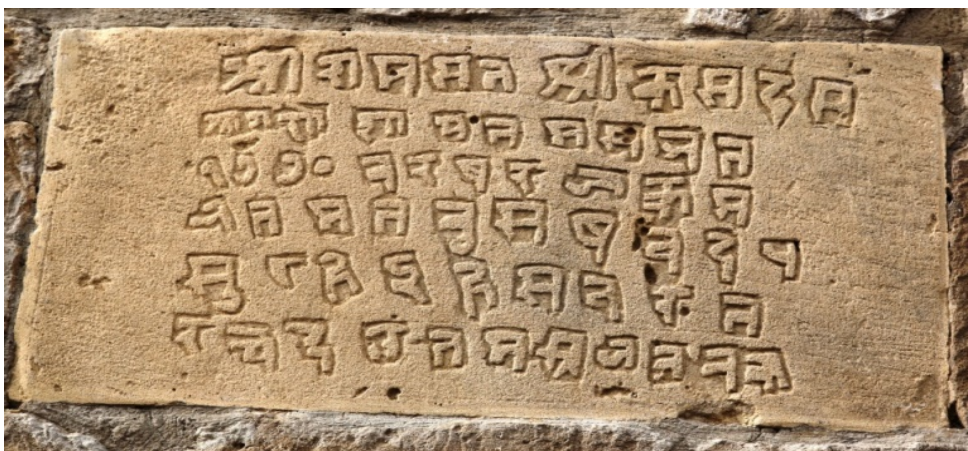
पंक्ति १– श्री रा म सत श्री क स द स
पंक्ति २– श्रीगणे शा य न म स व त
पंक्ति ३– १७७० व र ष र ज क्र म
पंक्ति ४– ज त म त वु स ष व द ५
पंक्ति ५– सु ८ ह इ ह स त र त
पंक्ति ६– र च द न त म स्त ज नानक

अनुकलन और संशोधन के बाद–

श्री राम।। संत श्री कसदस।। श्री गणेशाय नम:।। संवत् १७७० वर्ष रजक्रम जत मत वुसष वद ५ सु ८ हइ हसतर।। तर चंद नतमस्तज नानक।।

हिंदी अनुवाद-

श्री राम। संत श्री कृष्ण दास। श्री गणेशाय नम:। (विक्रमादित्य) संवत् (का) वर्ष *१७७०*। वैशाख मास के कृष्ण पक्ष की पाँचवीं तिथि से शुक्ल पक्ष की आठवीं तिथि। तारा चंद नानक के आगे शीश नवाता है।

इस शिलालेख की तिथि संवत् १७७० (अर्थात १७१३ ईस्वी) इसे सभी तेईस शिलालेखों में सबसे पुराने शिलालेखों में से एक बनाती है। यह शिलालेख अन्य शिलालेखों से इस अर्थ में

भी भिन्न है कि लगभग सभी अक्षरों को अलग-अलग उकेरा गया है और अधिकतर को शब्द को बनाने के हिसाब से नहीं लिये उकेरा गया, सिवाय *संत* और *नानक* के जो एक आयत के भीतर खुदे हुए हैं। शिलालेख के लेखक की पंजाबी पृष्ठभूमि का प्रभाव भी, सामान्य देवनागरी के अंकों जैसे ७ और ८ के स्थान पर, गुरुमुखी के अंकों जैसे ੭ और ੮ के प्रयोग से स्पष्ट होता है।

शिलालेख में उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण जानकारी उसकी अंतिम पंक्ति में गुरु नानक का संदर्भ है जिसमें भक्त “तारा चंद नानक के सामने अपना सिर झुकाता है।” यह ध्यान देने योग्य बात है कि तीर्थयात्रा का अर्थ है उस पवित्र-स्थल की श्रद्धा-युक्त यात्रा जो संत प्रवृति के व्यक्तियों की आधियात्मिक शक्ति से भरपूर हो। इन संतों के भक्त उनके इस संसार से जाने के बाद भी इन तीर्थों पर इन महापुरुषों की उपस्थिति को महसूस करके उनसे आधियात्मिक शक्ति प्राप्त करते हैं। शिलालेख में तारा चंद महा ज्वाला जी के मंदिर को इस प्रकार सम्बोधित करता है जैसे कि वह बाबा नानक की आध्यात्मिक शक्ति से भरपूर एक तीर्थ हो अर्थात् वह आध्यात्मिक शक्ति जो यहाँ पर बाबा जी के आने पर आई। इस प्रकार यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वर्तमान मंदिर के निर्वाण-स्थल पर बाबा नामक आए थे जिस वजह से यह स्थान उनके अनुयायियों के लिये एक तीर्थ-स्थल बन गया था।

शिलालेख संख्या– १४
स्थान– कोठरी नं. १३ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
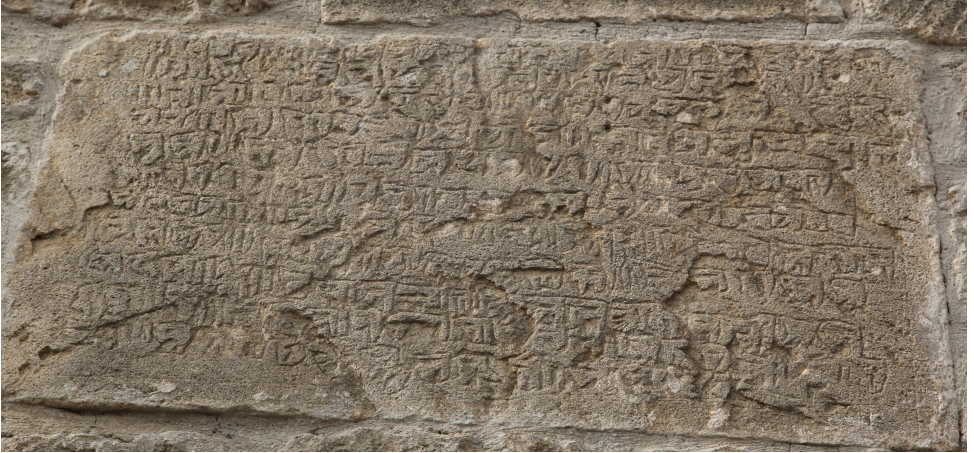
शिलालेख संख्या– १५
स्थान– कोठरी नं. १५ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
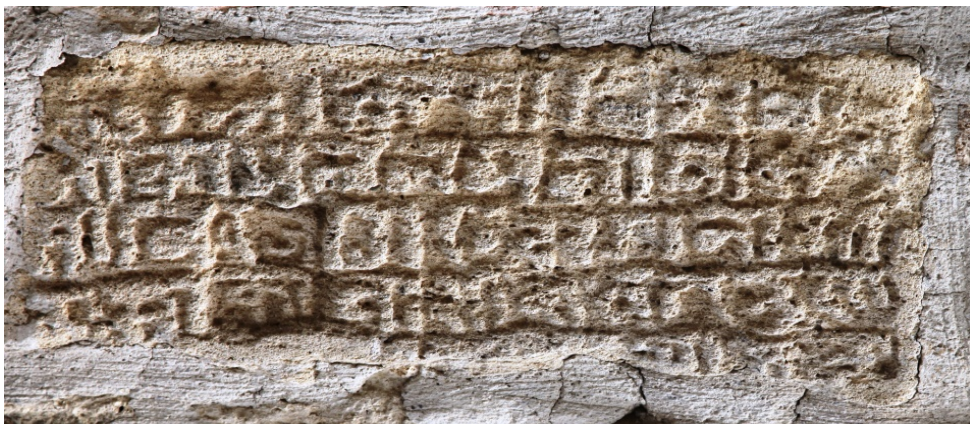
पंक्ति १– 卐 ३ॐ श्री गणेशाय नम:
पंक्ति २– जा... ... जवाला जी का...
पंक्ति ३– जि... ज... मंदर बानाया
पंक्ति ४– ... का वासी... ...
पंक्ति ५– १८४३

इस पाँच पंक्तियों के शिलालेख के केवल कुछ शब्दों को ही पढ़ा जा सकता है जिनका हिंदी अनुवाद निम्नलिखित है–

卐 ३ॐ। श्री गणेश जी को नमन!... जवाला जी का ... मंदर बनाया।... १८४३।

शिलालेख संख्या– १६
स्थान– कोठरी नं. १६ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी+लांडा
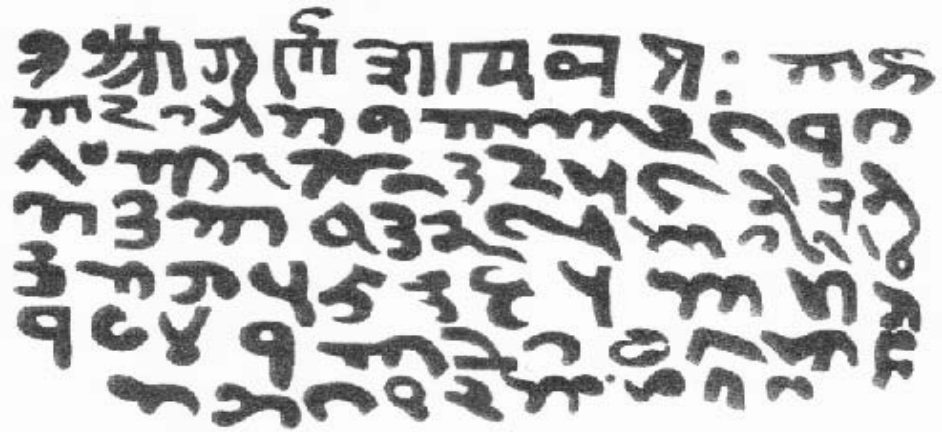
Dorn/Kirsten No. 6 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 16).

पंक्ति १– 卐 श्री गणेशाय नम: अ न
पंक्ति २– अ क र न म स अ अ क ग व ए
पंक्ति ३– ए ।अ। न क त क प ए ज त न

पंक्ति ४– म त द ए भ त क प ए। निमि

पंक्ति ५– त दिन पौष वदि ५ अधुना

पंक्ति ६– १੮४१ अ क ए व ग अ न

पंक्ति ७– म म ए व क अ त ए

देवनागरी लिपि में दी गई प्रथम सूत्रीय रेखा (श्री गणेशाय नमः) के अतिरिक्त शेष अभिलेख पंजाब की लांडा लिपि में है। इस भाग में से केवल एक वाक्य (निमित दिन पौष वदि ५ अधुना १੮४१) को ही जो चौथी, पांचवीं, व छठी पक्तियों में फैला हुआ है, संतोषजनक ढंग से पढ़ा जा सकता। इस वाक्य का हिंदी अनुवाद निम्नलिखित है।–

卐 श्री गणेश जी को नमन!... आज [वर्ष] १८४१ के पौष मास कृष्ण पक्ष के पाँचवें दिन निर्मित।...

शिलालेख संख्या– १७
स्थान– कोठरी नं. १८ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी

Dorn/Kirsten No. 8 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 14).

पंक्ति १– श्री गणेसाय नम: श्री रामजी सतश्री
पंक्ति २– जुआलाजी साहाय संवत १८०२।। मत वर
पंक्ति ३– ष वदी ७ बीरवार सात जुआलाजी जोति
पंक्ति ४– घानातयकोआ नमः वसना मलजात च
पंक्ति ५– लसुफश्यामत रामलना प्रणाम प्रात:

अनुकलन और संशोधन के बाद–
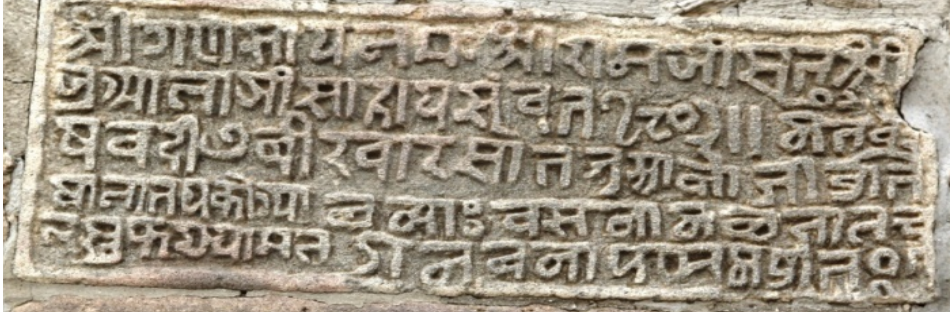
श्री गणेसाय नम:! श्री रामजी सत। श्री ज्वाला जी सहाय। संवत १८०२।। मत वर्ष वदी ७ बीरवार। सात ज्वाला जी जोति घानातयकोआ नमः वसना मलजात च लसुफश्यामत। रामलना प्रणाम प्रात:।

हिंदी अनुवाद–

श्री गणेश जी को नमन! श्री रामजी। सत्यश्री ज्वाला जी सहाए। सम्वत् १८०२।। इसी वर्ष के कृष्ण पक्ष की सातवीं तिथि, [दिन] बीरवार। ज्वाला जी की सात ज्योतियों को घनातकोया, वसना मलजात, और लसुफश्यामत का नमन। रामलना को प्रातः प्रणाम।

शिलालेख संख्या– १८
स्थान– कोठरी नं. १८ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– फारसी
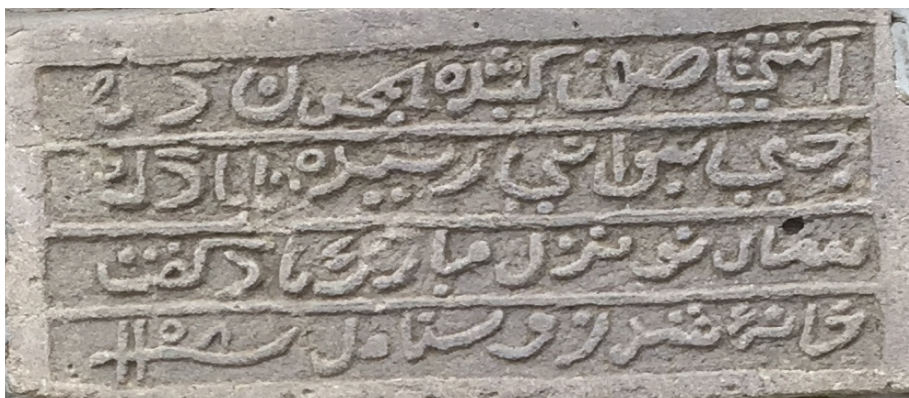
آتشی صف کشیده همچون دک
جیی بِوانی رسیده تا بادک
سال نو نُزل مبارک باد گفت
خانۂ شد زو ستامل سنۂ [سنبل]١١٥٨

देवनागरी में लिप्यंतरण–

आतशि साफ केशिदे हमचोन दच
जे बोवानी रेसीदे तॉ बोदाच
साल-ए-नव-ए नोज़्ल मोबारच बद गोफ़्त
शाने शोद रु सोमबोले सानये ११५८

हिंदी अनुवाद–

एक पहाड़ की चोटी पर प्रज्वलित है अग्नि
चोटी तक कौन पहुंच सकता है?
नए वर्ष की बधाई हो– उसने कहा
डेरा उसके द्वारा सनबुल[363] के महीने ११५८ में बनाया गया।[364]

---

[363]कन्या राशि।
[364]मैं इस अनुवाद के लिये अमेनेह शिराज़ीनेजाद (Ameneh Shirazinejad) की मदद के लिये आभारी हूं।

यह चतुष्पदी मंदिर में फ़ारसी का एकमात्र शिलालेख है। यह शिलालेख कोठरी नं. १८ के दरवाजे के ऊपर उपलब्ध शिलालेख संख्या १७ के ऊपर लगा हुआ है और उसी शिलालेख की तरह इसमें भी अग्नि (آتش) की स्तुति कुछ ऐसे की गई है जैसे कि ज्वाला जी की। इसमें ११५८ (١١٥٨) हिजरी की तिथि दी गई है, जो शिलालेख संख्या १७ की तिथि वर्ष १७४५ ई॰ से भी मेल खाती है।[365] नस्ख़ लिपि[366] में लिखा गया यह शिलालेख फ़ारसी भाषा के छंद और सामान्य गुणवत्ता की दृष्टि से काफी दोषपूर्ण है। चूंकि जिस समय यह शिलालेख यहां स्थापित किया गया था, उस समय फ़ारसी उत्तर भारत में प्रचलन में थी, यह एक भारतीय भक्त द्वारा स्थापित किया गया प्रतीत होता है।[367]

----

[365]A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 53.

[366]नस्ख़ (قلم النس क़लम अन-नस्ख़) एक छोटी, गोल और बिना-सेरिफ़ (sans-serif) लिपि है जिसमें वर्णों के आरोही और अवरोही दंड के सिरों पर हुक नहीं होती। इसमें अलग-अलग ध्वनियों को विशेषक बिंदुओं (अक्षर के ऊपर या नीचे १-३ बिंदुओं के रूप मे) के उपयोग के माध्यम से विभेदित किया जाता है, जिससे यह अधिक आसानी से सुपाठ्य हो जाती है। नस्ख़ एक आड़ा आधार रेखा का उपयोग करता है; उन स्थितियों में जहां एक वर्ण पिछले अक्षर की पूंछ के भीतर शुरू होता है, आधार रेखा टूट जाती है और ऊपर उठ जाती है।

[367]विलियम्स जैक्सन, जिन्होंने वर्ष १८८१ में मंदिर का दौरा किया था, ने इस शिलालेख के बारे में उल्लेख किया है कि यह "बहुत अच्छी फारसी में नहीं लिखा गया है, जिसकी गलतियाँ भाषा से अपूर्ण रूप से परिचित एक हिंदू द्वारा की गई हो सकती हैं, हालांकि फारसी उत्तर भारत में प्रचलित है" (Jackson, *पूर्व उद्धृत,* 53)।

शिलालेख संख्या– १९
स्थान– कोठरी नं. २१ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
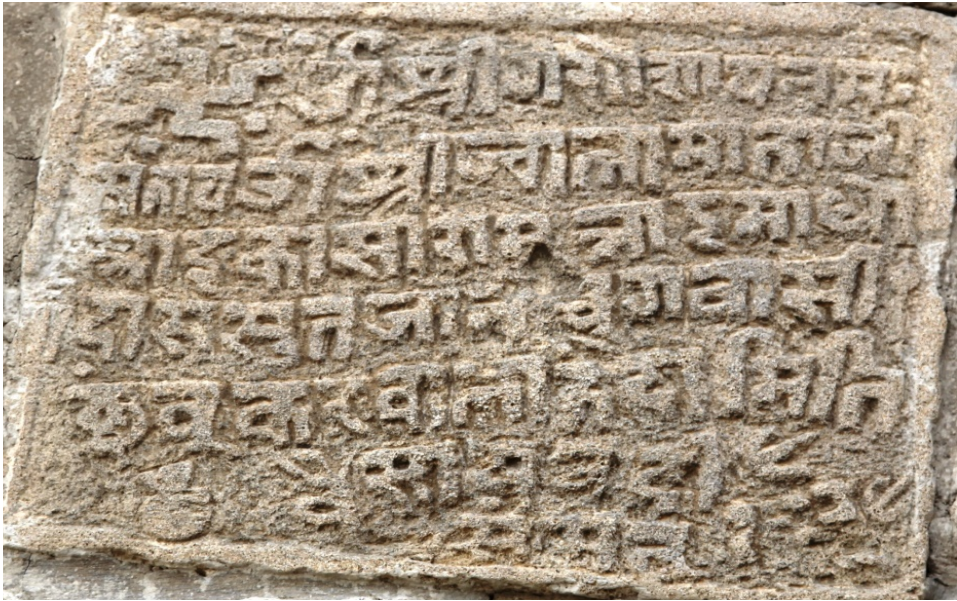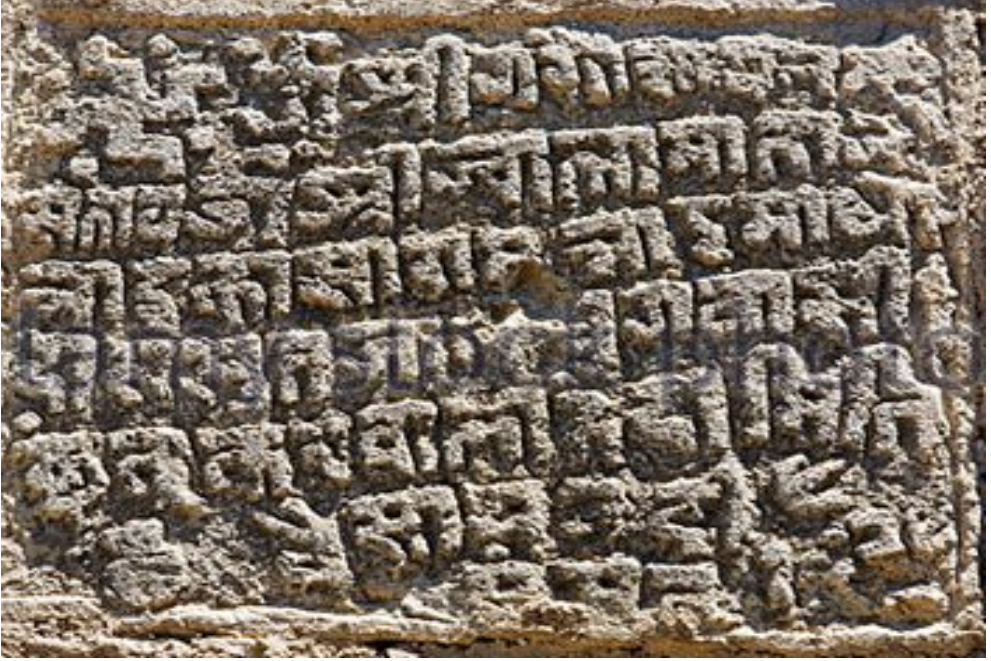
पंक्ति १– 卐।ॐ॥ श्री गणेशाय नम:
पंक्ति २– सहाय ॐ श्री ज्वाला माता जी
पंक्ति ३– भाइ कासी राम भाइमाधो
पंक्ति ४– दास सुतजाती चुग वासी
पंक्ति ५– छबूकर वाला कदा मिति
पंक्ति ६– बैसाख वदी ८
पंक्ति ७– संवत १८३९

अनुकलन और संशोधन के बाद–

卐 ॥ॐ॥ श्री गणेशाय नम:। सहाय ॐ श्री ज्वाला माता जी। भाई कासी राम भाई माधो दास सुतजाती चुग वासी छबूकर वाला कदा। मिति बैसाख वदी ८ संवत १८३९।

हिंदी अनुवाद–

卐 ॥ॐ॥ श्री गणेश जी को नमन! ॥ॐ॥ श्री ज्वाला माता जी सहाय। भाई कासी राम [व] भाई माधो दास, जन्म से चुग जाती के, छबूकर वाला के निवासी। बैसाख के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि। संवत् १८३९।

शिलालेख संख्या– २०
स्थान– कोठरी नं. २२ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी

देवनागरी में लिखे गए इस शिलालेख का अधिकांश भाग विरूपित हो गया है और केवल तीसरी पंक्ति के अंतिम दो शब्दों (श्री राम) को ही पढ़ा जा सकता है।

शिलालेख संख्या– २१
स्थान– कोठरी नं. २३ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
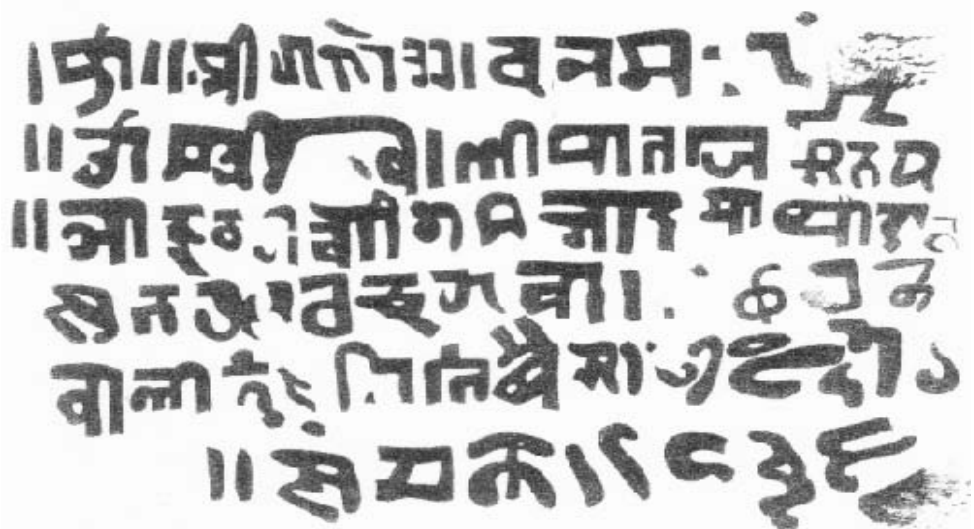
Dorn/Kirsten No. 7 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 12).

पंक्ति १– ॥ ॐ॥ श्री गणेशाय नम: 卐

पंक्ति २– ॥ॐ श्री ज्वाला माता जी सहाय

पंक्ति ३– ॥ भाइ काशी राम श्री राम

पंक्ति ४– सुतजात चुग बासी बुद्धेरु

पंक्ति ५– वाला तर मिति बैसाख वदी ७

पंक्ति ६– ॥संवत॥ १८३९

अनुकलन और संशोधन के बाद–

॥ॐ॥ श्री गणेशाय नम: ॥卐॥ॐ॥ श्री ज्वाला माता जी सहाय॥ भाई काशी राम श्री राम सुतजात चुग बासी बुद्धेरु वाला तर॥ मिति बैसाख वदी ७ संवत १८३९॥

हिंदी अनुवाद–

॥ॐ॥ श्री गणेश जी को नमन! ॥卐॥ॐ॥ श्री ज्वाला माता जी सहाय। भाई काशी राम [व] श्री राम, जन्म से चुग जाती के, बुद्धेरु वाला तर के निवासी। बैसाख के कृष्ण पक्ष की सातवीं तिथि। संवत् १८३९।

शिलालेख संख्या– २२
स्थान– कोठरी नं. २४ के दरवाजे के ऊपर
लिपि– देवनागरी
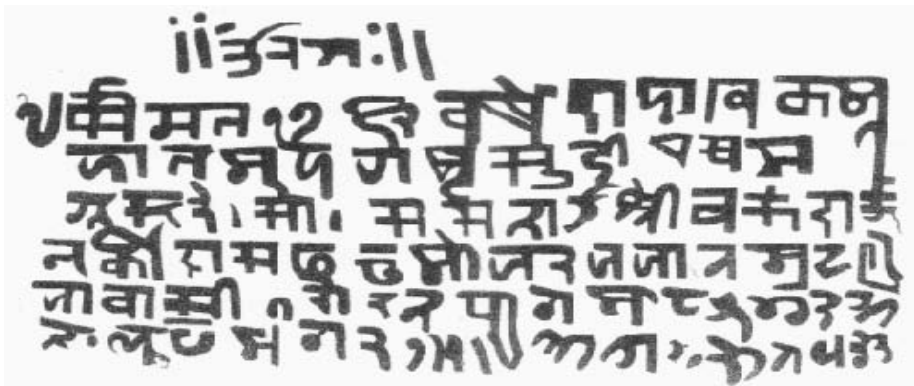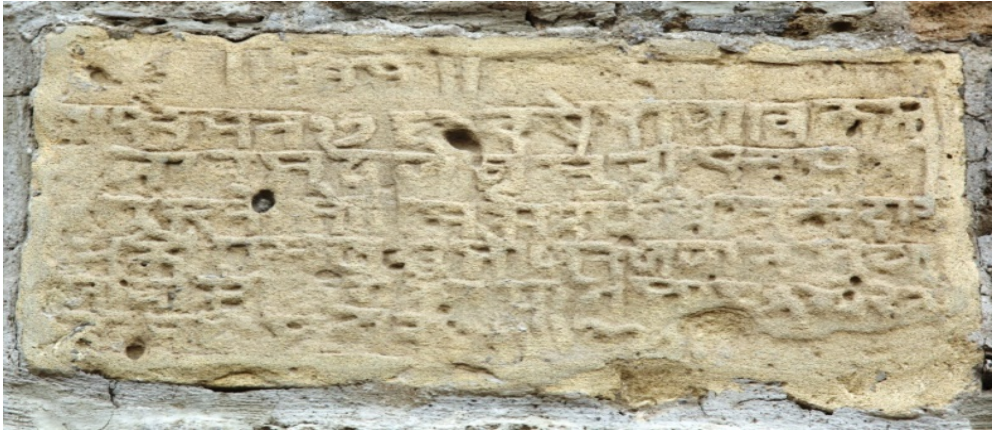
Dorn/Kirsten No. 10 (Source: Dirk M. Steinert, *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012: 11).

पंक्ति १– ॥ॐ नमः॥
पंक्ति २– ॥ संमत १७६२ वर्ष राजाविक्रम
पंक्ति ३– दित। ... . श्री
पंक्ति ४– ... ...श्री ...
पंक्ति ५– न की ... ... दरवाजा बनाया

पंक्ति ६– जा वासी... ...
पंक्ति ७– ... ...

हिंदी अनुवाद–

॥ॐ नमन॥ ꣳ। विक्रमादित्य संवत् का वर्ष *१७७०*।.... श्री.... श्री.... (यह) दरवाजा बनाया..... वासी.... ।

इस शिलालेख की तिथि संवत् १७६२ (अर्थात १७०५ ई) इसे सभी के सभी तेईस शिलालेखों में सबसे पुराना बनाती है।

शिलालेख संख्या– २३
स्थान– ??
लिपि– देवनागरी
वर्तमान स्थिति– अपने स्थान से गायब है।

(Source: Unvala 1950: 86-87: No. 12).

पंक्ति १– ॥ ॐ: श्री गणेशाय नमः॥ ज्वाला
पंक्ति २– जी का भवन बनाया॥ सत्य
पंक्ति ३– जी ...ॐ ...
पंक्ति ४– मुलतान वासी ...
पंक्ति ५– ...

पठनीय भाग का हिंदी अनुवाद–

ॐ। श्री गणेश जी को नमन! ज्वाला जी के लिये भवन बनाया।... ॐ .... मुलतान वासी............

शिलालेखों का सारांश-

अनुक्रम	स्थान	वर्ष	लंबाई	लिपि	विशेष चिन्ह, नाम, परिभाषित शब्द
१	गर्भगृह	१८७३	९ पंक्तियां	देवनागरी	卐, ॥, 🔱 (दो बार), ॐ, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी
२	प्रवेश द्वार	१८६६	६ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी
३	बालखाने	१८८३	७ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी (दो बार)
४	कोठरी नं.१	१८७९	८ पंक्तियां	देवनागरी	卐, ॐ (दो बार), श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी (तीन बार)
५	कोठरी नं. २	१७७०	७ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः.
६	कोठरी नं. ३	१८४०	६ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी
७	कोठरी नं. ४	----	५ पंक्तियां	देवनागरी	卐, ॐ, श्री गणेशाय नमः
८	कोठरी नं. ५	----	३ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी
९	कोठरी नं. ६	----	९ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ (दो बार), 卐, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी (दो बार)
१०	कोठरी नं. ७	----	७ पंक्तियां	देवनागरी	मूल मंत्र
११	कोठरी नं.१०	----	७ पंक्तियां	देवनागरी	मूल मंत्र, ज्वाला जी
१२	कोठरी नं.११	१८४१	७ पंक्तियां	देवनागरी+ लांडा	श्री गणेशाय नमः
१३	कोठरी नं.१२	१७७०	६ पंक्तियां	देवनागरी	श्री राम, श्री गणेशाय नमः, नानक
१४	कोठरी नं.१३	----	११ पंक्तियां	देवनागरी	
१५	कोठरी नं.१५	१८४३	५ पंक्तियां	देवनागरी	卐, ॐ, श्री गणेशाय नमः
१६	कोठरी नं.१६	१८४१	७ पंक्तियां	देवनागर+लांडा	卐, श्री गणेशाय नमः.
१७	कोठरी नं.१८	१८०२	५ पंक्तियां	देवनागरी	श्री राम, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी (दो बार)
१८	कोठरी नं.१८	١١٥٨	४ पंक्तियां	फारसी	تش
१९	कोठरी नं.२१	१८३९	७ पंक्तियां	देवनागरी	卐, ॐ (दो बार), श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी
२०	कोठरी नं.२२	----	६ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः
२१	कोठरी नं.२३	१८३९	६ पंक्तियां	देवनागरी	卐, ॐ (दो बार), श्री राम, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी
२२	कोठरी नं.२४	१७६२	७ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, 卐.
२३	कोठरी नं.??	----	७ पंक्तियां	देवनागरी	ॐ, श्री गणेशाय नमः, ज्वाला जी

ऐसा प्रतीत होता है कि लगभग सभी शिलालेखों को विभिन्न कोठरियों के निर्माण के बाद ईंटों को हटाकर उनके लिये जगह काटकर अपने स्थान पर स्थापित किया गया है। शिलालेखों में से जिन को आंशिक रूप से या पूरी तरह से पढा जा सकता है, उन में से आठ शिलालेखों (संख्या १, ४, ७, १५, १६, १९, २१, २२) भक्तिपरक ब्राह्मणीय-हिंदू स्वस्तिक (卐) मिलता है। पंद्रह शिलालेख (संख्या १, २, ३, ४ (दो बार), ५, ६, ७, ८, ९ (दो बार), १५, १९ (दो बार), २०, २१ (दो बार), २२, २३) बीजभूत ॐ से आरम्भ होते हैं और अठारह शिलालेख (संख्या १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १२, १३, १५, १६, १७, १९, २०, २१, २३) *श्री गणेशाय नमः* के अभिवादन से अपना श्री *गणेश* करते हैं। देवी ज्वाला जी का उल्लेख बारह शिलालेखों (संख्या १, २, ३, ४ (तीन बार), ६, ८, ९ (दो बार), ११, १७ (दो बार), १९, २१, २३) में सोलह बार किया

गया है। शिलालेखों में प्रयुक्त लगभग सभी अंक गुरुमुखी लिपि के हैं। दो शिलालेखों (संख्या १७, २१) में "*रामजी सत*" (सत्यवादी राम) और अन्य दो शिलालेख (संख्या १०, ११) *जपुजी साहिब* के *मूलमंत्र* आरम्भ होते हैं। सबसे दिलचस्प बात यह है कि एक देवनागरी शिलालेख (संख्या १३) गुरु नानक का उनके नाम से उल्लेख करता है।

अध्याय ८
महत्वपूर्ण आगंतुक और सार्वजनिक स्वीकृति

प्रसिद्ध रूसी व्यापारी, यात्री, और लेखक अफानसी निकितिन (Afanasy Nikitin),[368] शायद भारत की यात्रा करने और अपनी उस यात्रा काa लेखबद्ध करने वाला पहला रूसी था। उसने अपने यात्रा वृत्तांत *ए जर्नी बियॉन्ड द थ्री सीज़* (*A Journey Beyond The Three Seas*)[369] में उल्लेख किया है कि जब वर्ष १४६७ में वह भारत के रास्ते बाकू में था, तब उसने अग्नि मंदिर का दौरा किया था “जहां एक शाश्वत अग्नि प्रज्ज्वलित है।”[370] बाबा नानक, सिख धर्म के पहले गुरु और उदासी परम्परा के संस्थापक श्रीचंद के पिता, इस स्थान का दौरा करने और अनन्त अग्नि की प्रशंसा करने वाले सबसे प्रसिद्ध व्यक्तित्व थे। वे अपनी चौथी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान (लगभग १५११– १५२१ ई) घर लौटते समय यहां रुके थे। बाबा नानक ने इस स्थान की तुलना न केवल भारतीय ज्वालाजी मंदिर से की बल्कि यह भी उल्लेख किया कि इसे महाजवाला मंदिर के नाम से जाना जाता था।[371] जर्मन अन्वेषक एंगलबर्ट केम्फर (Engelbert Kaempfer) शायद यूरोप के पहले आधुनिक वैज्ञानिक थे जिन्होंने वर्ष १६८३ में बाकू की “शाश्वत अग्नि के सात कुंड” का दौरा किया था।[372] उदासी साधुओं को पारसी समझकर, केम्फर ने अपने यात्रा वृत्तांत में उल्लेख किया है कि जिस दिन उसने मंदिर का दौरा किया “पारसियों की जनजातियों के दो अजनबी, भारतीय अग्नि-उपासक, चुपचाप बैठे थे। एक अर्ध-गोलाकार दीवार के भीतर, जिसे उन्होंने ही बनाया था, उस अग्नि के पर्यवेक्षण और पूजा करने में लीन थे जिसकी लपटें ऊपर बढ़ रहीं थीं और जिसके माध्यम से वे शाश्वत देवत्व की पूजा करते थे।”[373]

[368]वह त्वेर (Tver) नगरी का रहने वाला था, जो मास्को से १८० किलोमीटर उत्तर पश्चिम में स्थित है और एक शक्तिशाली मध्ययुगीन राज्य की राजधानी थी। तीन नदियों (वोल्गा, त्वेर्त्सा, और त्माका) नदियों के संगम पर स्थित, यह नगरी १९३१ से १९९० के बीच कालिनिन् (Kalinin) नाम से जानी जाती थी।

[369]उनके *खोज़ेनीये ज़ा त्रि मोर्या* (*ए जर्नी बियॉन्ड द थ्री सीज़*) का अंग्रेजी अनुवाद देखें https://web.archive.org/web/20070712154226/http://www.russian-centre-mumbai.org/history.htm. । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[370]Hugh Chisholm (ed.), “Nikitin, Athanasius,” *Encyclopaedia Britannica*, vol. 19, 11th edn, Cambridge: Cambridge University Press, 1911: 690. R.H. Major, *India in the Fifteenth Century: Being a Collection of Narratives of Voyages to India in the Century Preceding the Portuguese Discovery of Good Hope,* New York: Bert Franklin Publisher, 1857: 7.

[371]देखें Giani Gian Singh, *Twarikh Guru Khalsa (Itihās Śrī Gurū Nānak Dev Jī* (http://www.ik13.com/PDFS/TWK_1.pdf. 228। १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया)।

[372]देखें Rudi Matthee, “Ludvig Fabritus,” *Encyclopaedia Iranica*, vol. IX, Fasc. 2, 1999: 138-140.

[373]देखें Robert James Forbes, *Studies in Early Petroleum History*, Leiden: E.J. Brill, 1958: 158.

आकृति संख्या ३८– मंदिर के सम्मान में जारी किये गए डाक टिकट

इस मंदिर की तीर्थ यात्रा पर आने वाले सबसे आकर्षक और उल्लेखनीय भारतीय साधुओं में एक परमहंस प्राणपुरी थे। *ऊर्ध्वबाहु तपस्वी* (ऊपर उठाए बाजु वाले संत) के रूप में लोकप्रिय, बाबा प्राणपुरी ने १७७० के दशक के दौरान इस मंदिर का दौरा किया और ग्यारह महीने तक यहां रहे।[374]

---

[374]कन्नौज में १७४३ में पैदा हुए परमहंस प्राणपुरी ने नौ साल की उम्र में संन्यास ले लिया था। भारत के गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स, तिब्बत के ताशी लामा, राजनीतिज्ञ जोनाथन डंकन, खोजी सैमुअल टर्नर, और नेपाल के राजा जैसे व्यक्तित्वों से उनकी दोस्ती थी। अपनी पहली प्रतिज्ञा के अनुसार वे बारह वर्षों तक न तो बैठे और न ही लेटे, केवल अपने पैरों पर खड़े रहे। इस प्रतिज्ञा के साथ साथ उन्होंने एक यायावर धर्म-यात्री बनने का भी संकल्प लिया। थकान से जीर्ण होने पर वह किसी पेड़ या खम्भे के सहारे झुक जाते थे और गिरने से बचने के लिये खुद को रस्सी से बांध लेते थे। लेकिन कुछ समय बाद ऐसा करना भी अनावश्यक हो गया और युवा संत बिना किसी सहारे के खड़े होकर सो जाते थे। इस पहली प्रतिज्ञा को सफलतापूर्वक पूरा करने के बाद, बाबा परमहंस ने अपने हाथ सिर से ऊपर रख कर खुद को और भी कठोर अनुशासन के अधीन करने का फैसला किया। हालांकि हाथों को सिर के ऊपर रखने से उनका चलना फिरना बेहद कठिन हो गया था, फिर भी उन्होंने अपना घूमना नहीं छोड़ा। अपनी पहली बड़ी यात्रा के दौरान, वे उज्जैन, औरंगाबाद, एलोरा, पुरी, और रामेश्वरम होते हुए श्रीलंका गए। वहां से वह एक जहाज द्वारा मलाया पहुंचे। कोचीन लौटकर, उन्होंने मुम्बई, द्वारका, मुल्तान, और अटक के रास्ते काबुल की यात्रा की। काबुल से वे बामियान गए। यहीं उनकी ग़ज़नी के पास अहमद शाह अब्दाली से मुलाकात हुई थी। अब्दाली, जिसकी नाक में नासूर था, ने योगी से इलाज के लिये कहा क्योंकि उसने सुना था कि योगी के पास चमत्कारी शक्ति है। परमहंस ने अब्दाली को बताया कि उसकी गद्दी और नासूर इस हद तक अटूट रूप से जुड़े हुए हैं कि एक का खात्मा दूसरे की कीमत पर ही किया जा सकता है। राजा और उसके मंत्री दोनों द्वारा स्पष्टीकरण का अनुमोदन हो जाने के बाद, परमहंस ने शिविर से बच निकले और ग़ज़नी पहुंचे। ग़ज़नी से वे खुरासान, हेरात, और मेशाद होते हुए बाकू पहुंचे। यहाँ वे ग्यारह महीने महाज्वालामुखी में रहे। बाकू से, वे कैस्पियन सागर को पार कर गए और अस्त्रखान, ताब्रीज़, व हमदान के रास्ते से इस्फ़हान पहुंचे। शिराज़ में फारस के शाह, करीम खान से मिलने के बाद, उन्होंने बहरीन की यात्रा की। यहां से बसरा जाते समय समुद्री लुटेरों ने उनका अपहरण कर लिया। रिहा होने के बाद वे बसरा होते हुए मस्कट

आकृति संख्या ३६- नोबेल ब्रदर्स की पेट्रोलियम ऑयल कंपनी, ब्रानोबेल (Branobel) का लोगो[1]

बंगाल सिविल सेवा के जॉर्ज फोर्स्टर (George Forster) ने ३१ मार्च १७८४ को इस स्थान का दौरा किया था। अग्नि मंदिर की अपनी यात्रा के बारे में बात करते हुए, वे कहते हैं

वहाँ रहने वाले हिंदू साधुओं से जब मैंने अपना परिचय दिया तो इन ब्रह्मा-पुत्रों ने मेरा अपने भ्राता के रूप में स्वागत किया, विशेषकर जब इन्हें यह पता चला कि मुझे हिंदू शास्त्रों का कुछ ज्ञान है और मैंने उनके अधिकतर तीर्थस्थलों की यात्रा की है। यह धर्मस्थल जहाँ भक्त अग्नि को एक देवता के रूप में पूजते हैं ...एक हिंदू मंदिर के रूप में निर्मित है।[375]

परमहंस प्राणपुरी जैसे एक और युवा संन्यासी, जिन्होंने फोर्स्टर के साथ कैस्पियन सागर द्वारा नाव पर रूस की दिशा में यात्रा की, के बारे में बात करते हुए वे कहते हैं,

---

पहुंचे। थोड़े समय के लिये भारत लौटने के बाद, वे बसरा लौट आए जहाँ से वे कॉन्स्टेंटिनोपल चले गए। यहाँ से, वे इस्फ़हान लौट आए जहाँ उन्होंने कुछ समय स्थानीय जनजातियों (शायद अग्नि-पूजक पारसी) की भाषाएँ सीखने में बिताया। यहां से उन्होंने रूस की ओर अपनी यात्रा शुरू की और रास्ते में, कज़्ज़ाकों (Cossacks) के गुलाम होने से बाल-बाल बचे। इसके बाद वे ४८ दिन पैदल चलकर मास्को पहुंचे। यहां से, वोल्गा को पार करते हुए, उन्होंने साइबेरिया में जा कर छः महीने के दिन-रात का अनुभव किया। यहाँ से, वे पेचिंग पहुंचे। पेचिंग से, वे ताशिलहुंपो और नेपाल के रास्ते भारत लौट आए। उनकी अगली अंतरराष्ट्रीय धर्मयात्रा बल्ख, बोखारा, समरकंद, बदक्शान, गंगोत्री, काठमांडू, पोताला, शिगात्से, कैलाश-मानसरोवर, और कश्मीर के रास्ते थी। इस यात्रा के दौरान, उन्होंने दलाई लामा के कार्यालय से भारतीय गवर्नर-जनरल वारेन हेस्टिंग्स को दिये जाने वाले दो पत्र भी एकत्र किये। सैमुअल टर्नर से मिलने पर, उन्होंने उसे कहा कि मोक्ष प्राप्त करने से पहले वे दो और तपस्याएं करेंगे। पहली तपस्या होगी, "पैरों को एक पेड़ की शाखा से बांध कर निलम्बित होना और नीचे आग जला कर इस प्रकार झूलना कि जटाएँ तीन घंटे और तीन-चौथाइयों तक आग की लपटों में से गुजरती रहें।" इसके बाद, उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन के अंतिम कार्य के लिये खुद को तैयार करने के बारे में कहा कि वे स्वयं को तीन घंटे और तीन-चौथाइयों के लिये जिंदा दफन करेंगें (Ulysses Young, "Travels and Adventures of a Hindu Mystic," *East and West,* vol. 6, no. 4, January 1956: 332-334)।

[375]George Forster, *Journey from Bengal to England: Through the Northern Part of India, Kashmire, Afghanistan, and Persia and into Russia by the Caspian Sea*, vol. I, London: A. Faulder and Son, 1798: 257.

हम बाकू से पाँच हिन्दुओं को ले कर आए; उनमें से दो मुलतान के व्यापारी थे और तीन साधु थे, एक पिता, उसका पुत्र, और एक संन्यासी (मुख्य रूप से ब्राह्मण जनजाति के हिंदुओं के एक धार्मिक संप्रदाय का नाम)। इनमें से आखिर वाला एक स्वस्थ व उत्साही युवक था, जो मन और तन दोनों से खूब सतर्क था, धर्मोन्माद कट्टरता से भरपूर था, दुनिया के भ्रमण पर निकला था, किधर जाना है उसे कोई ख़ास पता नहीं था, बस चलते रहना है यह उसका मुख्य उद्देश्य प्रतीत हो रहा था। बाकू के हिंदुओं ने उस की जो भी छोटी मोटी ज़रूरतें थीं उन्हें पूरा कर दिया था और अब उन्हीं की सिफ़ारिश से वह उनके प्रतिनिधियों के पास रूस जा रहा था। आगे वह मेरे साथ इंग्लंड जाना चाहता था।... हालाँकि मादक शराब प्रतिबंधित है ... लेकिन ऐसा नहीं लगता की इनमें से कठोरतम भी भंग के बारे में ऐसा सोचते हैं क्योंकि वे इसे बिना किसी हिचकिचाहट के पीते हैं, और वह भी अक्सर बेहद मात्रा में।[376]

आकृति संख्या ३७– ऐलेग्जाँद्र दुमा का दौरा (अज़रबैजान राष्ट्रीय फोटो अभिलेखागार के सौजन्य से) (https://www.azer.com/aiweb/categories/magazine/ai142_folder/142_articles/142_214_atashgah.html).

फ्रांसीसी लेखक ऐलेग्जाँद्र दुमा (Alexandre Dumas २४ जुलाई १८०२ – ५ दिसंबर १८७०)[377] ने नवंबर १८५८ में मंदिर का दौरा किया था और उन्होंने दौरे का उल्लेख करते हुए लिखा है कि यहां एक हिंदू अनुषठान (*इयुन मेस्स हिंदू, une messe hindoue*) किया जा

---

[376] *पूर्व.*vol. II.259.

[377]वे उनके लेखन *The Three Musketeers* (*Les Trois Mousquetaires*, 1844) व *the Count of Monte Cristo* (*Le Comte de Monte-Cristo*, 1844–46) के लिये जाने जाते हैं।

रहा था।[378] मंदिर की रूपरेखा आकृति को नोबेल ब्रदर्स ने अपनी पेट्रोलियम ऑयल कंपनी के प्रतीक चिन्ह (logo) के रूप में चुना था।[379] पारसी धर्म और अवेस्ता के एक प्रसिद्ध विद्वान ए.वी. विलियम्स जैक्सन (A.V. Williams Jackson) ने वर्ष १८८१ में अग्नि मंदिर का दौरा किया। अपने यात्रा वृत्तांत में मंदिर का वर्णन करते हुए, उन्होंने लिखा है कि "छत के बीच में एक वर्गाकार गुंबद है, जिसके पूर्वी हिस्से से एक झंडे जैसा तीन-आयामी काँटा दिखाई देता है जो भारतीय भगवान शिव के त्रिशूल जैसा दिखता है।"[380] उन्होंने आगे उल्लेख किया है कि "यहाँ कहीं भी परिसर में या उसके आसपास देखें तो यह इंगित करने के लिये भारी सबूत हैं कि यह मंदिर उत्तर भारतीय नींव स्थापना का है।"[381] कहा जाता है कि १८८० के दशक में, रूस के ज़ार अलेक्जेंडर तृतीय (राज्य १३ मार्च १८८१ – १ नवंबर १८९४) ने सेंट पीटर्ज़बर्ग से बाकू तक व्यक्तिगत रूप से यात्रा इसलिये की थी कि वे यहां किये जा रहे अंतिम हिंदू अनुशठानों में एक को देखना चाहते थे।[382] एशिया के सबसे महान खोजकर्ताओं में से एक, स्वेन एंडर्स हेडिन (Sven Anders Hedin) अगस्त १८८५ से सात महीने से अधिक समय तक बाकू में रहे और इस अवधि के दौरान उन्होंने न केवल अग्नि मंदिर का दौरा किया बल्कि इस पर एक निबंध भी लिखा।[383]

---

[378]Alexandre Dumas, *Le Caucase: Impressions de voyage; suite de En Russie,* Nouvelle edition 2006, Montreal: Le Joyeux Roger, 1859: 25.

[379]जब १८९६ में अल्फ्रेड नोबेल की मृत्यु हुई, तो वह बाकू में नोबेल ब्रदर्स की पेट्रोलियम कंपनी ब्रानोबेल (Branobel) में सबसे बड़े एकल स्टॉकहोल्डर थे। बाकू में तेल क्षेत्रों से आए ३.१ करोड़ स्वीडिश क्राउन के मूल्य के उनके पूरे भाग का लगभग बारह प्रतिशत अंतरराष्ट्रीय नोबेल पुरस्कार की स्थापना के लिये दिया गया। नोबेल पुरस्कार पहली बार वर्ष १९०१ में प्रदान किया गया था (देखें https://www.azer.com/aiweb/categories/magazine/ai142_folder/142_articles/142_faberge_nobel_clock.html)।

[380]A.V. Williams Jackson, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911: 43.

[381]*पूर्व*.42.

[382]James Bryce, *Transcaucasia and Ararat: Being Notes of a Vacation Tour in the Autumn of 1876*, Third edition, London: Macmillan & Co, 1878: 97.

[383]J. Jamshedji Modi, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, trans. by Soli Dasturji, 2004 (1926). (http://www.avesta.org/modi/baku.htm).

आकृति संख्या ३८– अज़रबैजान के राष्ट्रपति इल्हाम अलीयेव मंदिर में जलाई गई मशाल लेकर (https://www.azernews.az/baku2015/81027.html).

१९६९ में इसके जीर्णोद्धार के बाद, मंदिर परिसर को वर्ष १९७५ में एक संग्रहालय में बदल दिया गया था।[384] १९९८ में इसे प्रसिद्ध वास्तुकार और कला इतिहासकार गुलनारा मेहमंदरोवा द्वारा यूनेस्को की विश्व धरोहर स्थलों (World Heritage Sites of UNESCO) में सूचीबद्ध करने के लिये नामित किया गया था।[385] १९ दिसंबर २००७ को, अज़रबैजान के राष्ट्रपति इल्हाम अलीयेव के शासकीय आदेश द्वारा मंदिर परिसर को एक ऐतिहासिक-वास्तुशिल्प आरक्षित स्मारक घोषित किया गया था और उन्होंने इसकी सुरक्षा के साथ-साथ इसके रखरखाव के लिये सामग्री और तकनीकी आपूर्ति के लिये जुलाई २००९ में राष्ट्रपति के रिजर्व फंड से दस लाख अज़रबैजानी मानत (यूएसडी ५८८,००० अमरीकी डॉलर) का अनुदान भी घोषित किया था।[386]

---

[384]https://www.atlasobscura.com/places/fire-temple-of-baku । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[385]https://en.wikipedia.org/wiki/Gulnara_Mehmandarova । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[386]“President of Azerbaijan allocates 1 million AZN for protection of “Ateshgah temple” preserve,” Azeri-Press Agency (APA), 1 July 2009 (http://today.az/news/society/53469.html) । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

आकृति संख्या ३९ – अज़रबैजान के राष्ट्रपति इल्हाम अलीयेव और पहली महिला मेरहिबान अलीयेवा (http://azcongress.ru/2013/04/01/otpolirovannyj-ateshgyax-foto/).

१९१९ में जारी अज़रबैजान की डाक टिकटों के पहले अंक में दो मूल्यवर्ग (२५ और ५० रूब्ल) की टिकटें बाकू के अग्नि मंदिर पर जारी की गईं थीं।[387] दोनों टिकटों में मंदिर की पृष्ठभूमि में पांच तेल डेरिक (derricks) दिखाई देते हैं। नोबेल ब्रदर्ज की पेट्रोलियम कंपनी (१९९४) की १००वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में वर्ष १९९४ में अज़रबैजान सरकार द्वारा १५ मानत मूल्यवर्ग का तीसरा टिकट जारी किया गया था।[388] फिर वर्ष २०१० में ६० कोपेक मूल्यवर्ग का चौथा डाक टिकट जारी किया गया।[389] २०१० में, मैक्सिको के डाक विभाग (कोरियोस डी मैक्सिको, Correos de Mexico) ने मंदिर के सम्मान में ७.०० पेसो मूल्यवर्ग का एक टिकट जारी किया।[390] मंदिर को मई २०१३ में ग्लोब ट्रेकर (Globe Trekker) के एक एपिसोड में भी दिखाया गया था।[391]

---

[387]देखें James E. Kloetzel, *Scott Standard Postage Stamp Catalogue: A-B,* New York: Scott Pub Inc Co, 2007: no. 9 and 10.

[388]https://azstamp.wordpress.com/2014/01/16/azerbaijans-petroleum-stamps/. । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[389]https://commons.m.wikimedia.org/wiki/File:Stamps_of_Azerbaijan,_2010-925.jpg

[390]देखें https://www.shutterstock.com/image-photo/mexico-circa-2010-stamp-printed-shows-95064235 । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

[391]"The Silk Road 2: Kashgar to Istanbul," Episode #7, *Globe Trekker: Around the World*, May 21, 2013.

आकृति संख्या ४०– अज़रबैजान के राष्ट्रपति इल्हाम अलीयेव और यूरोपीय ओलंपिक समिति के अध्यक्ष पैट्रिक हिक्की (http://azcongress.ru/2013/04/01/otpolirovannyj-ateshgyax-foto/).

बाकू में अज़रबैजान (१२ – २८ जून २०१५) द्वारा आयोजित पहले यूरोपीय खेलों के लिये २६ अप्रैल २०१५ को मंदिर में आयोजित एक विशेष समारोह के दौरान, अज़रबैजान के राष्ट्रपति इल्हाम अलीयेव ने रिले की जाने वाली आधिकारिक लौ (official flame) की मशाल को ज्वालाजी की अग्नि से प्रज्वलित किया। *द जर्नी ऑफ द फ्लेम* (*The Journey of the Flame*) नामक इस कार्यक्रम में बाकू यूरोपीय खेलों की आयोजन समिति की पहली महिला अध्यक्ष मेहरिबान अलीयेवा और यूरोपीय ओलंपिक समिति के अध्यक्ष पैट्रिक हिक्की ने १५० विशिष्ट मेहमानों के साथ भाग लिया। प्राचीन ग्रीक परंपरा में आधारित प्रथा की तुलना में जहां सूर्य की किरणों से ओलंपिक लौ जलती है, अजरबैजान (अग्नि की भूमि) में लौ धरती माता से प्राप्त की गई थी। राष्ट्रपति अलीयेव ने *जर्नी ऑफ द फ्लेम* की शुरुआत करने के लिये ओलंपिक हैंडबॉल चैंपियन रफीगा शाबानोवा को मशाल दी।

आकृति संख्या ४१– भारत के उपराष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू और विदेश मंत्री एस. जयशंकर २६ अक्टूबर २०१९ को मंदिर स्थल पर।

आकृति संख्या ४२– भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ०६ अप्रैल २०१८ को मंदिर में प्रार्थना करतीं हुईं (फोटो: Twitter/MEA).

०६ अप्रैल २०१८ को, भारत की विदेश मंत्री सुषमा स्वराज ने मंदिर का दौरा किया और प्रार्थना की।[392] इसके बाद भारत के उपराष्ट्रपति एम. वेंकैया नायडू ने २६ अक्टूबर २०१९ को मंदिर के स्थल का दौरा किया। उनके साथ विदेश मंत्री एस. जयशंकर भी थे और उन्होंने पूजा

[392]https://www.thestatesman.com/india/sushma-pays-homage-at-ancient-fire-temple-ateshgah-in-baku-1502618234.html. । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

की। नायडू दो दिवसीय गुटनिरपेक्ष आंदोलन (एनएएम) शिखर सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व करने के लिये अज़रबैजान में थे।[393]

आकृति संख्या ४३– सद्गुरु का मंदिर का दौरा (९ नवंबर २०१८)

आकृति संख्या ४३– मंदिर परिसर (२१ मार्च २०१९) में पारसी नव वर्ष (Novruz Bayrami) का उत्सव।

---

[393]https://www.business-standard.com/article/pti-stories/naidu-visits-ancient-fire-temple-in-azerbaijan-119102600366_1.html. । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया।

मंदिर को यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची (UNESCO World Heritage List) में अस्थायी रूप में शामिल कर लिया गया है।[394] २००९ में, अज़रबैजान के राष्ट्रपति के फरमान से यह घोषित किया गया था कि मंदिर और उसके आस-पास की भूमि के संरक्षण पर काम किया जाएगा। मंदिर से सटे क्षेत्र के भूनिर्माण और सहायक भवनों के निर्माण का कार्य सितंबर २०१२ में पूरा किया गया। फलस्वरूप, आरक्षित क्षेत्र ४२०० से १५,००० वर्ग मीटर तक बढ़ा दिया गया और मंदिर के एक हिस्से को संग्रहालय में बदल दिया गया था।

---

[394]यूनेस्को के पास अज़रबैजान की सरकार द्वारा प्रस्तुत जानकारी के अनुसार, मंदिर अपशेरोन प्रायद्वीप (Apsheron Peninsula) में सुराखानी गांव (बाकू से १५ किमी उत्तर) में बाकू महानगर के भीतर स्थित है, जो इतिहास में पारसी धर्म के सबसे महत्वपूर्ण केंद्रों में से एक था। वर्तमान इमारतें १७वीं सदी की हैं। यह मुल्तान के अग्नि उपासकों का तीर्थ और दार्शनिक केंद्र था, जो प्रसिद्ध "ग्रैंड ट्रंक रोड" के माध्यम से कैस्पियन क्षेत्र के साथ व्यापार भी करते थे। उनकी मान्यता के चार संप्रदाय थे: अतिशी (अग्नि), बदी (वायु), आबी (जल), और हेकी (पृथ्वी)। १८८३ के बाद सुराखानी में पेट्रोलियम उद्योग की स्थापना के कारन मंदिर की पूजा बंद हो गई। संग्रहालय में आने वाले आगंतुकों की वार्षिक संख्या १५,००० है (https://whc.unesco.org/en/tentativelists/1172/. । १६ जनवरी २०१७ को हासिल किया गया)।

ग्रन्थ-सूची

हिंदी

सराओ, कर्म तेज सिंह, *धम्मपद- एक व्युत्पत्तिपरक अनुवाद*, नई दिल्ली: विद्या निधि प्रकाशन, २०१५।

सराओ, कर्म तेज सिंह, "बाकू का अग्नि मंदिर, बाबा नानक व उदासी परंपरा," *इतिहास*, भाग ४, नं. ४, जनवरी-जून, २०१८।

पंजाबी

ਉਦਾਸੀਨ, ਪੰਡਿਤ ਬ੍ਰਹਮਾਨੰਦ, *ਗੁਰੂ ਉਦਾਸੀਨ ਮੱਤਾ ਦਰਪਨ*, ਸਖਰ: ਏ.ਐਚ. ਉਦਾਸੀਨ, 1923.

ਸਰਾਓ, ਕਰਮ ਤੇਜ ਸਿੰਘ, "ਬਾਕੂ ਦਾ ਅਗਨੀ ਮੰਦਰ, ਬਾਬਾ ਨਾਨਕ, ਅਤੇ ਉਦਾਸੀ ਸੰਪ੍ਰਦਾਇ," ਭਾਪਾ ਪ੍ਰੀਤਮ ਸਿੰਘ ਯਾਦਗਾਰੀ ਭਾਸ਼ਣ, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ: ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਸਭਾ, 2020.

ਸਿੰਘ, ਉਧਮ, *ਸੱਚਾ ਗੁਰੂ*, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ: ਸਿੰਘ ਬ੍ਰਦਰਜ਼, 1954.

ਸਿੰਘ, ਗਿਆਨੀ ਗਿਆਨ, *ਤਵਾਰੀਖ ਗੁਰੂ ਖਾਲਸਾ* (*ਇਤਹਾਸ ਸ੍ਰੀ ਗੁਰੂ ਨਾਨਕ ਦੇਵ ਜੀ*), ਭਾਗ -1, ਨੰਬਰ 1, ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ: ਖਾਲਸਾ ਟ੍ਰੈਕਟ ਸੁਸਾਇਟੀ, ਦੀ ਕੋਈ ਤਾਰੀਖ ਨਹੀਂ। http://www.ik13.com/PDFS/TWK_1.pdf: 228. ਦੇਖਿਆ 31.03.2017.

ਸਿੰਘ, ਲਾਲ, "ਉਦਾਸੀ ਕੀ ਰੀਤ ਚਲੈ," ਗੁਰਦੇਵ ਸਿੰਘ (ਸੰਪਾਦਕ), *ਉਦਾਸੀ ਸੰਪ੍ਰਦਾਏ ਅਤੇ ਸਿੱਖ ਪੰਥ*, ਨਵੀਂ ਦਿੱਲੀ: ਗੋਬਿੰਦ ਸਦਨ, 2007: 5-16.

अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाएँ

Abbott, Justin E, "Indian Inscriptions on the Fire Temple at Bāku," *Journal of the American Oriental Society*, vol. 29, 1908: 299-304.

Agrawala, S., "Fire in the Ṛgveda," *East and West*, vol. 11, no. 1, March 1960: 28-32.

Agrawal, Ashvini, *Rise and Fall of the Imperial Guptas,* Delhi: Motilal Banarsidass, 1989.

Aiyar V.A.K., *Symbolism in Hinduism,* Mumbai: Central Chinmaya Mission Trust, 2019.

Aliev, Farroukh, *The fire temple of Baku: the history of an Atashgah rooted in the time of the Sassanids*, 2010. http://azadegan-azade.blogspot.in/2011/07/fire-temple-of-baku.html

Aliyev, Rauf, "Fire temple Ateshgah," Bābāyi, Rashid, *Surakhany: Oil and Fireworshipping*: 2010: 23-31.

Allchin, Bridget and Raymond, *The Rise of Civilization in India and Pakistan,* Cambridge: Cambridge University Press, 1982.

Andersen, D. and H. Smith, *The Sutta-Nipāta*, London: Pali Text Society, 1913.

Anonymous, *Reports from the Consuls of the United States*, no. 74, February, Department of State, Washington: Government Printing Press, 1887.

Apte, Vaman Shivram, *The Practical Sanskrit Dictionary*, 4th rev. edn, Delhi: Motilal Banarsidass Publishers, 1965.

Arnold, Arthur, *Through Persia by Caravan*, New York: Harper & Bros, 1877.

Asher, Frederick, "Pañcāyatana Liṅgas: Sources and Meaning," in Joanna Gottfried Williams (ed.), *Kalādarśana: American Studies in the Art of India,* Leiden: E.J. Brill, 1981: 1–5.

Auble P., J. Franks, S. Soraci, "Effort Toward Comprehension: Elaboration or Aha!?," *Memory & Cognition*, vol. 7, no. 6, 1979: 426–434.

Axel Michaels, *Homo Ritualis: Hindu Ritual and Its Significance for Ritual Theory*, Delhi: Oxford University Press, 2015.

Ballantine, Henry, *Midnight Marches Through Persia*, reprint, Boston: Ulan Press, (2012) 1979.

Banerji, I.B., *Evolution of the Khalsa*, vol. I, Calcutta: A Mukherjee & Co., 1972.

Barrier, N. Gerald and Nazer Singh, "Singh Sabha Movement," Harbans Singh (ed.), *Encyclopedia of Sikhism,* vol. 4, Patiala: Punjabi University, Patiala, 2002: 205-212.

Barth, A., *The Religion of India*, New Delhi: S. Chand and Co, 1969.

Basant, P.K., *The City and the Country in Early India: A Study of Malwa,* Delhi: Primus Books, 2012.

Baumer, Bettina and Kapila Vatsyayan, *Kālatattvakośa: A Lexican of Fundamental Concepts of the Indian Arts*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1988.

Beck, Guy L., *Sonic Theology: Hinduism and Sacred Sound*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1995.

Benveniste, Émile, *Hommes et dieux dans l'Avesta*, Festschrift für Wilhelm Eilers*,* Wiesbaden: Otto Harrassowitz, 1967: 144-147.

Bernard, Theos, *Hindu Philosophy*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1999: 74–76.

Bhargava, P.L., *India in the Vedic Age: A History of Āryan Expansion in India*, Lucknow: Upper India Publishing House, 1956.

Bhargava, P.L. *Vedic Religion and Culture*, Delhi: South Asia Books, 1994.

Bloomfield, Maurice, *The Religion of the Veda: The Ancient Religion of India (from Rig-Veda to Upanishads)*. American Lectures on the History of Religions, seventh series. New York: Putnam's, 1908.

Boucharlat, Rene, "Chahar Taq et temple du feu sasanide: quelques remarques," In Jean Deshayes, JJean-Louis Huot, et al (eds.), *De l'Indus aux Balkans: Recueil à la mémoire de Jean Deshayes*, Paris: Recherche sur le civilisations, 1985: 461-478.

Bowes, Pratima, *The Hindu Religious Tradition: A Philosophical Approach.* London: Routledge & Kegan Paul, 1977.

Boyce, Mary, "On the Sacred Fires of the Zoroastrians," *Bulletin of the School of Oriental and African Studies, vol.* 31, 1968: 52-68.

Boyce, Mary, “On Mithra’s Part in Zoroastrianism,” *Bulletin of the School of Oriental and African Studies, vol.* 32, 1969: 10-34.

Boyce, Mary, “Mithra, Lord of Fire,” in *Monumentum H.S. Nyberg* I*,* Acta Iranica 4, Leiden, 1975: 69-76.

Boyce, Mary, “On the Zoroastrian Temple Cult of Fire,” *Journal of the Oriental Asiatic Society, vol.* 95, 1975: 454-65.

Boyce, Mary, *Zoroastrians: Their Religious Beliefs and Practices*, London: Routledge, 1979.

Boyce, Mary, “Ātaš,” *Encyclopedia Iranica,* 1987, vol. III, fasc. 1: 1-5 (also available online at www.iranicaonline.org). Accessed on 31 January 2017.

Boyce, Mary, “Ātaškada,” *Encyclopædia Iranica*, 1987, vol. III, fasc. 1: 9-10, (also available online at www.iranicaonline.org). Accessed on 31 January 2017.

Boyce, Mary, “Humata, Hūxta, Huvaršta,” *Encyclopedia Iranica,* 1987, vol. XII, fasc. 5: 561-562 (also available online at www.iranicaonline.org). Accessed on 31 January 2017.

Brown, William Norman, *India and Indology: Selected Articles*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1978.

Brown, Robert, *Ganesh: Studies of an Asian God*, Albany, NY: SUNY Press, 1991.

Bryce, James, *Transcaucasia and Ararat: Being Notes of a Vacation Tour in the Autumn of 1876*, Third edition, London: Macmillan & Co, 1878.

Bühnemann, Gudrun, *Maṇḍalas and Yantras in the Hindu Tradition,* Leiden: Brill Academic, 2003.

Bulliet, Richard W., *Conversion to Islam in the Medieval Period: An Essay in Quantitative History,* Cambridge: Harvard University Press, 1979.

Burgess, Ebenezer (trans.), *Translation of the Sūrya-Siddhānta: A Text of Hindu Astronomy*, New Haven: Journal of the American Oriental Society, 1860.

Callewaert, Winand M. and Rupert Snell. 1994. *According to Tradition: Hagiographical Writing in India,* Wiesbaden: Otto Harrassowitz Verlag.

Campbell, Joseph, *The Hero with a Thousand Faces*, New York: Pantheon Books, 1949.

Chahnazarin, Garabed V. (trans), *Histoire des guerres et des conquêtes des Arabes en Arménie par l’eminent Ghevond,* 1856. http://www.mediterranee-antique.fr/Auteurs/Fichiers/GHI/Ghevond/Arabes_Armenie/Ghevond.htm. Accessed 30 December 2019.

Chakrabarti, Dilip K., *India: An Archaeological History: Palaeolithic Beginnings to Early Historic Foundations*. New Delhi: Oxford University Press, 2009.

Chakrabarti, Kunal and Shubhra Chakrabarti, *Historical Dictionary of the Bengalis*, Maryland: Scarecrow Press, 2013.

Chakravarti, Mahadev, *The Concept of Rudra-Śiva Through the Ages*, 2nd rev. edn, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986.
Chakravarti, Sitansu S., *Hinduism, a Way of Life*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1991.
Chan, V., *Tibet Handbook: A Pilgrimage Guide*, Chico, California: Moon, 1994.
Chandra, Suresh, *Encyclopedia of Hindu Gods and Goddesses,* Delhi: Sarup & Sons, 1998.
Chinmayananda, Swami, *Glory of Ganesha*, Bombay: Central Chinmaya Mission Trust, 1987.
Chisholm, Hugh (ed.), "Nikitin, Athanasius," *Encyclopaedia Britannica*, vol. 19, 11th edn, Cambridge: Cambridge University Press, 1911.
Chohan, Gurvinder Singh, "Gurū Nanak's Travel: An Appraisal of Baku Visit," *Understanding Sikhism: The Research Journal,* January-December, vol. 17, no. 1, 2015: 17-22.
Cook, John, *Voyaages and Travels through the Russian Empire, Tartary, and part of the Kingdom of Persia*, vol. II, Edinburgh: Author, 1770.
Courtright, Paul B., *Gaṇeśa: Lord of Obstacles*, Lord of Beginnings, New York: Oxford University Press, 1985.
Cust, Robert Needham, "Note," *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, April 1897: 315-318.
Cowell, E.W., R. Chalmers, *et al* (trans.), *The Jātaka or the Stories of the Buddha's Former Births*, Cambridge: Cambridge University Press, 1895-1907.
Dalal, Roshen, *Hinduism: An Alphabetical Guide*, Delhi: Penguin Books India, 2010: 399–401.
Dale, Stephen, F., *Indian Merchants and the Eurosian Trade, 1600-1750,* Cambridge: Cambridge University Press, 2002.
Dallapiccola, Anna L., *Dictionary of Hindu Lore and Legend*, London: Thames and Hudson, 2002.
Danek A.H., T. Fraps, *et al*, "Aha! experiences leave a mark: facilitated recall of insight solutions," *Psychological Research, vol.* 77, no. 5, September 2013: 659–669.
Darukhanawala, H.D., *Parsi Lustre on Indian Soil*, 2 vols, Bombay: G. Claridge & Co Ltd, 1939.
Das, Gurcharan, "Introduction," in Scott C. Levi, *Caravans: Punjabi Khatri Merchants on the Silk Road*, Gurgaon: Penguin Books India, 2015: ix-xxxii.
Das, Subhamay, *What is the Hindu Calendar System* 2019. (https://www.learnreligions.com/the-hindu-calendar-system-1770396). Retrieved 15 August 2020.
Datar, Kiran, "The Traders of Punjab and Asian Trade: 17th to early 19th centuries," *The Punjab: Past and Present*, Punjabi University, vol. XX, no. 39, April 1986: 87-95.
Davies, Glyn, *A History of Money, from Ancient Times to the Present Day*, Cardiff: University of Wales Press, 1994.

Dehejia, Harsha V., *Pārvatī: Goddess of Love*, Middletown, NJ: Mapin Publishing Pvt Ltd, 1999.

Deol, Harnik, *Religion and Nationalism in India: The Case of the Punjab,* New: Routledge, 2000.

Deussen, Paul, *Sixty Upanishads of the Veda*, (tr.) V.M. Bedekar and G.B. Palsule, vol. 1, Delhi: Motilal Banarsidass, 1980.

Deutsch, Eliot, *Advaita Vedānta: A Philosophical Reconstruction*, Honolulu: University of Hawaii Press, 1973.

Dhavalikar, M.K., "Chalcolithic Cultures: A Socio-Economic Perspective" in K.N. Dixit (ed), *Archaeological Perspective of India Since Independence*, New Delhi: Books and Books, 1985: 63-80.

Dhavalikar, M.K., "Archaeology of the Aryans," *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, vol. LXXXVII, 2006: 1-37.

Dorn, Bernhard, "Bericht über eine wissenschaftliche Reise in dem Kaukasus und den südlichen Küstenländern des Kaspischen Meeres," In: *Bulletin de l'Académie Impériale des Sciences de St.-Pétersbourg*, vol. 4, 1862: 344-393.

Dowsett, C.J.F. (trans.), *History of the Caucasian Albanians by Movses Dasxurançi*, London: Oxford University Press, 1961.

Dumas, Alexandre, *Le Caucase: Impressions de voyage,* Nouvelle édition, Montreal: Le Joyeux Roger, 2006 (originally published in1859).

Dunham, Dows, "A Collection of 'Pot-Marks' from Kush and Nubia," *Kush*, vol. 13, 1965: 131–147.

Eck, Diana L., *Darśan: Seeing the Divine Image in India,* New York: Columbia University Press, 1998.

Eggling, Julius (trans.), *Śatapatha Brāhmaṇa*, 5 vols., 12, 26, 41, 43, 46, London: Clarendon Press.,1882.

Eichwald, Eduard, *Reise auf dem Caspischen Meeren unt in Den Kaukasus: unternommen in den jahren 1825-26,* Erste Abtheilung, Stuttgart und Tübingen: J.G. COTTA'schen Buchhandlung, 1834.

Elgood, Heather, *Hinduism and the Religious Arts,* London: Bloomsbury Academic, 2000.

Elst, Koenraad, "The Conflict between Vedic Aryans and Iranians," *Indian Journal of History and Culture*, Chennai, Autumn 2015 (http://koenraadelst.blogspot.com/2016/01/the-conflict-between-vedic-aryans-and.html). Accessed 30.10.2020.

Embree, Ainslee T. (ed.), *The Hindu Tradition*. New York: Vintage Books, 1966.

Erdösy, George, "Language, Material Culture and Ethnicity: Theorical Perspectives," in Erdösy, G. (ed.), *The Indo-Aryans of Ancient South Asia*, vol. 1, Berlin: De Gruyter, 1995: 206-212.

Farndon, John, *DK Eyewitness Books: Oil*, Delhi: DK Publishing, 2012.

Farid, Alakbarov, "Azerbaijan- Land of Fire: Observations from the Ancients," *Azerbaijan International*, Summer, 11.2, 2003.

(http://www.azeri.org/Azeri/az_latin/manuscripts/land_of_fire/english/112_observations_farid.html). Accessed 27 January 2017.

Fausböll, V. (ed.). *The Jātakas*, 7 vols., London: Trübner, 1877–1897.

Fazal, Tanweer, '*Nation-state' and Minority Rights in India: Comparative Perspective on Muslim and Sikh Identities*, New York: Routledge, 2014.

Feer, M.L., (ed.), *The Saṃyutta Nikāya*, 5 vols., London: Pali Text Society, 1884–1898.

Findley, Ellison Banks, "Aspects of Agni: Functions of the Ṛgvedic Fire." PhD diss., Yale University, 1978.

Findley, Ellison Banks, "Agni," In *The Encyclopedia of Religion*. Vol. 1. Edited by Mircea Eliade, New York: Macmillan, 1986: 133–135.

Flood, Gavin, *An Introduction to Hinduism*, Cambridge: Cambridge University Press, 1996.

Flood, Gavin (ed.), *The Blackwell Companion to Hinduism*, Delhi: John Wiley & Sons, 2008.

Forbes, Robert James, *Studies in Early Petroleum History*, Leiden: E.J. Brill, 1958.

Forssman, B. "Apaoša der Gegner des Tištrya," *Zeitschrift für Indologie und Iranistik,* vol. 82, 1968: 37-61.

Forster, George, *Journey from Bengal to England: Through the Northern Part of India, Kashmire, Afghanistan, and Persia and into Russia by the Caspian Sea*, 2 vols., London: A. Faulder and Son, 1798.

Fortson, Benjamin, *Indo-European Language and Culture. An Introduction*, Oxford: Blackwell, 2004.

Frazer, J.G., *Myths on the Origin of Fire*, New York: Hacker Art Books, 1974.

Frazier, Jessica, *The Continuum companion to Hindu studies*, London: Continuum, 2011.

Friedman, Janice, "Researchers find the Swastika predates the Indus Valley Civilization," 2016. *Ancient Code* (https://www.ancient-code.com/researchers-find-the-swastika-predates-indus-valley-civilization/).

Gamba, Jean Françoise, *Voyage dans la Russie meridionale*, vol. II, Paris: C.J. Trouvé, 1826.

Garg, Ganga Ram, *Encyclopedia of the Hindu World*, vol. 3, New Delhi: Concept Publishing Company, 1992.

Garrett, John, *A Classical Dictionary of India*, New Delhi: Atlantic Publishers and Distributors, 1975.

Ghose, Sanujit, *Legend of Ram: Antiquity to Janmabhumi Debate*, New Delhi: Bibliophile South Asia, 2004.

Goldberg, Ellen, *The Lord Who is Half Woman: Ardhanārīśvara in Indian and Feminist Perspective*, Albany, NY: SUNY Press, 2002.

Gonda, Jan, "The Indian Mantra," *Oriens*, vol. 16, no. 1, 1963: 244-297.

Gonda, Jan, "Deities and their Position and Function," *Handbuch Der Orientalistik: Indien*, Zweite Abteilung, Leiden: Brill Academic, 1980.

Gopal, Madan, *India through the ages*, ed. by K.S. Gautam, New Delhi: Publications Division, Government of India, 1990.
Goudsblom, J., *Fire and Civilization*, New York: Penguin,1992.
Granoff, Phyllis, "Other People's Rituals: Ritual Eclecticism in Early Medieval Indian Religions," *Journal of Indian Philosophy*, Volume 28, Issue 4, 2000: 399-424.
Grewal, J.S., "Legacies of the Sikh Past for the Twentieth Century," in Joseph T. O'Connell et al (eds), *Sikh History and Religion in Twentieth Century*, Toronto: University of Toronto,1988: 18-31.
Grewal, J.S. *The Sikhs of the Punjab*, rev. ed., Cambridge: Cambridge University Press, 1998.
Grewal, Dalvinder S., "Gurū Nanak in Azerbaijan," 2017. http://www.sikhphilosophy.net/threads/Gurū-nanak-in-azerbaijan.49616/. Accessed 31 March 2017.
Grimes, John A. *Gaṇapati: Song of the Self*, Albany, NY: SUNY Press, 1995.
Grimes, John A., *A Concise Dictionary of Indian Philosophy: Sanskrit Terms Defined in English,* Albany, NY: SUNY Press, 1996.
Gross, Rita M., "Hindu Female Deities as a Resource for the Contemporary Rediscovery of the Goddess," *Journal of the American Academy of Religion*, vol. 46, no. 3, September 1978: 269–291.
Guénon, René, *Symbols of Sacred Science*, tr. H.D. and S.D. Fohr, Hillsdale, NY: Sophia Perennis, 2004.
Gupta, H.R., *History of the Sikh Gurūs*, New Delhi: U.C. Kapur & Sons, 1973.
Hale, Wash E., *Asura in Early Vedic Religion*, Motilal Banarsidass, Delhi,1986.
Hanway, Jonas *An Historical Account of the British Trade over the Caspian Sea: With a Jjournal of Travels from London through Russia into Persian; and back again through Russia, German and Holland*, vol. I, London: Hanway, 1753.
Harle, James C., *The Art and Architecture of the Indian Subcontinent,* New Haven: Yale University Press, 1994.
Hawley, John S. and Gurinder Singh Mann, *Studying the Sikhs: Issues for North America,* New York: SUNY Press, 1993.
Hawley, John S. and Vasudha Narayanan, *The Life of Hinduism*, University of California Press, 2006.
Haynes, Jeffrey, *Routledge Handbook of Religion and Politics*, New York: Routledge, 2008.
Hazlewood, A.A., *Saddhammopayana*, A Master's Thesis Submitted to the Australian National University, 1983.
Heesterman, J.C., Albert Van den Hoek, Dirk Kolff, and M.S. Oort, *Ritual, State, and History in South Asia: Essays in Honour of J.C. Heesterman*. Leiden: BRILL, 1992.
Hellenschmidt, Clarice and Jean Kellens, "Daiva," *Encyclopaedia Iranica*, vol. 6, Costa Mesa: Mazda, 1993.

Henry, James D. *Baku: An Eventful History*, London: Archibald Constable & Co., 1906.
Heras, H., *The Problem of Gaṇapati*, Delhi: Indological Book House, 1972.
Hewsen R.H., "Bagawan," *Encyclopædia Iranica*, 1988. http://www.iranicaonline.org. Retrieved 31 May 2020.
Hillebrandt, Alfred, *Vedic Mythology*. Vol. 1. Translated by Sreramula Rejeswara Sarma. Delhi: Motilal Banarsidass, 1980.
Holt, James D., *Religious Education in the Secondary School: An Introduction to Teaching, Learning and the World Religions,* London: Routledge, 2014.
Hopkins, E.W., *Epic Mythology*, Strassburg: Verlag von Karl J. Trübner, 1915.
Horner, I.B. (trans.), *The Book of the Discipline*, 6 vols., London: Pali Text Society, 1938-1966.
Hugh, W., "Fire as an agent in human culture," *Bulletin*, no. 139, U.S. National Museum, Washington, DC, 1916.
Ibrahimov, Kamil, "Indians in Azerbaijan: History and Facts," *Visions of Azerbaijan*, September-October, 2010: 74-78.
Iyenger, Shrinivas, P.T., *Pre-Āryan Tamil Culture*, reprint, New Delhi: Asian Education Services, 1985 (1928).
Jackson, A.V. Williams, *From Constantinople to the Home of Omar Khayyam*, New York: The Macmillan Company, 1911.
Jamison, Stephanie W. and Joel P. Brereton (trans.), *The Ṛigveda: Religious Poetry of India*, vol. 1, Oxford: Oxford University Press, 2014.
Jansen, Eva Rudy, *The Book of Hindu Imagery*, Havelte, Holland: Binkey Kok Publications, 1993.
Jha, Ganganath, *Chāndogyopanishad*, Poona: Oriental Book Agency, 1942.
Joshi, J.P., *Excavations at Bhagwanpura 1975-76 and Other Explorations and Excavations in Haryana, Jammu and Kashmir and Punjab*, Memoir 89, New Delhi: Archaeological Survey of India, 1993.
Judge, Harry, "Devī," *Oxford Illustrated Encyclopedia*, Oxford: Oxford University Press. 1993.
Kapoor, Subodh, *A Dictionary of Hinduism: Including its Mythology, Religion, History, Literature, and Pantheon,* New Delhi: Cosmo Publications, 2004.
Kapoor, Sukhbir Singh and Mohinder Kaur Kapoor, "Introduction," *The Making of the Sikh Rehatnamas*, New Delhi, India: Hemkunt Publishers, 2008.
Kaur, Madanjit, "Udāsī Matras," *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, Gobind Sadan, New Delhi, 1994.
Keay, John, *India: A History*, New York: Grove Press, 2000.
Keith, Arthur Berriedale, *Rigveda Brahmanas: The Aitreya and Kauṣītaki Brāhmaṇas of the Rigveda*, London: Harvard University Press, 1920.
Keith, Arthur Berriedale, *The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads*. Harvard Oriental Series 31, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1925.

Keppel, George, *Personal Narrative of a Journey from India to England*, London: H. Colburn, 1827.
Khlopin, I. N. "Zoroastrianism: Location and Time of its Origin," *Iranica* Antiqua, vol. *27*, 1992: 95-116.
Kinsley, David, *Hindu Goddesses: Visions of the Divine Feminine in the Hindu Religious Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1986.
Kenoyer, J.M., "Cultures and Societies of the Indus Tradition. In Historical Roots," in R. Thapar (ed.), *The Making of 'the Aryan,'* New Delhi: National Book Trust, 2006.
Kirsten, Ferdinand, "Indische Inschriften," in Bernhardt Dorn, *Atlas zu Bemerkungen auf Anlass einer wissenschaftlichen Reise in den Kaukasus und den südlichen Küstenländern des Kaspischen Meeres in den Jahren 1860-1861*, Dritte Abtheilung, Taf. I-VII, 1895.
Kleiner, Fred S., *Gardner's Art Through the Ages: Non-Western Perspectives*, Belmont, CA: Wadsworth, 2007.
Kloetzel, James E., *Scott Standard Postage Stamp Catalogue: A-B,* New York: Scott Pub Inc Co, 2007.
Klostermaier, Klaus K., *Mythologies and Philosophies of Salvation in the Theistic Traditions of India*. Waterloo, ON: Wilfrid Laurier University Press, 1984.
Klostermaier, Klaus K., *Hinduism: A Short History*, London: Oneworld Publications, 2000.
Knipe, David M., *Vedic Voices: Intimate Narratives of a Living Andhra Tradition,* Oxford: Oxford University Press, 2015.
Kohli, Surinder Singh, *Travels of Guru Nanak*, Chandigarh: Publication Bureau, Panjab University, 1969.
Kramrisch, Stella, "The Indian Great Goddess," *History of Religions*, vol. 14, no. 4, 1975: 235-265.
Kramrisch, Stella, *The Presence of Śiva*, Princeton, New Jersey: Princeton University Press, 1985.
Kyaw U Ba (trans.), *Elucidation of the Intrinsic Meaning, So Named the Commentary on the Peta-Stories,* ed and Annotated by P. Masefield, London: Pali Text Society, 1980.
Kuiper, F.B.J., "Ahura Mazdā 'Lord Wisdom'?," *Indo-Iranian Journal*, vol. I8, pt. 1-2, 1957: 25-42.
Kuiper, F.B.J., *Ancient Indian Cosmogony*, New Delhi: Vikas Publishing House, 1983.
Lal, B.B. and S.P. Gupta (ed.), *Frontiers of the Indus Civilization: Sir Mortimer Wheeler Commemoration Volume*, New Delhi: Books and Books, 1984.
Lal, B.B., *The Earliest Civilization of South Asia*, New Delhi: Aryan Books International, 1997.
Latif, S.M., *History of the Punjab*, New Delhi: Eurasia Publishing House, 1964.
Lee, Jonathan H.X. and Kathleen M. Nadeau (eds.), *Encyclopedia of Asian American Folklore and Folklife,* Santa Barbara, CA: ABL-CLIO, 2010.

Lerche, Johann, J., "vor 20 Jahren... ein steinernes Haus," *Lebens-und Reise-Geschichte*, 1791: 60-65.
Lévi, Éliphas, *Transcendental Magic, its Doctrine and Ritual* [*Dogme et rituel de la haute magie*]. York Beach, Maine: Weiser, 1999.
Levi, Scott, C., *The Indian Diaspora in Central Asia and Its Trade: 1550-1900,* Leiden: Brill, 2002.
Levi, Scott C., *Caravans: Punjabi Khatri Merchants on the Silk Road*, Gurgaon: Penguin Books India, 2015.
Lidova, Natalia, *Drama and Ritual of Early Hinduism*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1994.
Lipner, Julius, *Hindus: Their Religious Beliefs and Practices*, London: Routledge, 2010.
Li Rongxi (trans.), *The Great Tang Dynasty Record of the Western Regions*, Berkeley: Numata Center for Buddhist Translation and Research, 1996.
Lochtefeld, James G., "Guṇa," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: A-M, vol. I, New York: Rosen Publishing Group Inc., 2001: 265.
Lochtefeld, James, "Asceticism," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: A-M, vol. 1, New York: The Rosen Publishing Group, 2002: 60-61.
Lochtefeld, James, "Om," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group, 2002: 482.
Lochtefeld, James, "Panchayatana" *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group, 2002: 494.
Lochtefeld, James, "Panchayatana" *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group, 2002: 696.
Lochtefeld, James, "Urdhvapundra," *The Illustrated Encyclopedia of Hinduism*: N-Z, vol. 2, New York: The Rosen Publishing Group, 2002: 724.
Lommel, Herman, *Die Yašts des Awesta,* Göttingen-Leipzig: Vandenhoeck & Ruprecht/JC Hinrichs, 1927.
Lommel, Herman, "Anahita-Sarasvati," in Johannes Schubert, Ulrich Schneider (eds.), *Asiatica: Festschrift Friedrich Weller Zum 66,* Geburtstag, Leipzig: Otto Harrassowitz, 1954: 405–413.
Lorenzen, David N., Bhakti Religion in North India: Community Identity and Political Action, New York: SUNY Press, 1995.
Lowitz, Leza and Datta Reema, *Sacred Sanskrit Words for Yoga, Chant, and Meditation,* Berkeley: Stone Bridge Press, 2004.
Lubin, Timothy, "The Vedic Homa and the Standardization of Hindu Pūjā," in Payne, Richard K. and Witzel, Michael (eds.). *Homa Variations: The Study of Ritual Change across the Longue Durée*, New York: Oxford University Press, 2015: 143-166.
Lurker Manfred, *The Routledge Dictionary of Gods and Goddesses, Devils and Demons*, London: Routledge, Taylor & Francis, 2005.
Macauliffe, Max, *The Sikh Religion*, vol. I, New Delhi: S. Chand & Co., 1963.
Macdonell, A.A. *Vedic Mythology*, reprint, Delhi: Motilal Banarsidass, 2002 (originally published 1898).

MacLean, Derryl N., *Religion and Society in Arab Sind*, Leiden: E.J. Brill, 1989.
Major, R.H., *India in the Fifteenth Century: Being a Collection of Narratives of Voyages to India in the Century Preceding the Portuguese Discovery of Good Hope,* New York: Bert Franklin Publisher, 1857.
Malalasekera, G.P., *Dictionary of Pāli Proper Names*, 2 vols., London: John Murray, 1937-38.
Malandra, William W., (ed. and trans.), *An Introduction to Ancient Iranian Religion: Readings from the Avesta and the Achaemenid Inscriptions*, Minnesota: University of Minnesota Press, 1983.
Malcolm, John, *Sketch of the Sikhs*, London: John Murray, 1812.
Mallory, J.P. and D.Q. Adams, *Encyclopedia of Indo-European Culture*, London and Chicago: Fitzroy-Dearborn, 1997.
Matthee, Rudi, "Ludvig Fabritus," *Encyclopaedia Iranica*, vol. IX, Fasc. 2, 1999: 138-140.
McLeod, W.H., *Sikhs and Sikhism, Society,* Delhi: Oxford University Press, 2004.
McLeod, W.H., *Essays in Sikh History, Tradition, Society,* Delhi: Oxford University Press, 2007.
Ménage, V.L., "The "Gurū Nānak" Inscription at Baghdad," *Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland,* no. 1, 1979: 16–21.
M'Gregor, W.L., *History of the Sikhs*, vol. I, London: James Madden, 1970.
Michaels, Axel, *Homo Ritualis: Hindu Ritual and Its Significance for Ritual Theory*, New York: Oxford University Press, 2016.
Milner, M., *Status and Sacredness: A General Theory of Status Relations and an Analysis of Indian Culture*, New York: Oxford University Press, 1994.
Mirza, Hormazdiar, *Outlines of Parsi History*, Bombay: Amalgamated, 1987.
Modi, J. Jamshedji, *My Travels Outside Bombay, Iran, Azerbaijan, Baku*, trans. by Soli Dasturji, 2004 (1926). (http://www.avesta.org/modi/baku.htm). Accessed 16 January 2017.
Monier-Williams, Monier, *A Sanskrit-English Dictionary: Etymologically and Philologically Arranged*, Oxford: Clarendon Press, 1872.
Moor, Edward, *The Hindu Pantheon*. New Delhi: Cosmo Publications. Moor, Edward. 2000.
Morgenstern, J., *The fire upon the altar*, Chicago: Quadrangle Books, 1963.
Morier, James, *Second Journey through Persia*, *Armenia, and Asia Minor* 2. 243, London: Longman, Hurst, Rees, Orme, and Brown, 1818.
Morris, R. and E. Hardy (eds.), *The Aṅguttara Nikāya*, 5 vols., London: Pali Text Society, 1885–1900.
Mounsey, Augustus A., *Journey through the Caucasus and the Interior of Persia*, London: Smith, Elder & Co., 1872.
Mukhopadhyay, Anway, *The Goddess in Hindu-Tantric Traditions: Devi as Corpse*, New York: Routledge, 2018.
Müller, F. Max (trans.), *The Upanishads*, vol. I, Oxford: Claredon Press, 1879.
Müller, F. Ma, *Lectures on the Science of Language*, vol.1, London: Longmans, Green & Co., 1885.

Müller, F. Max, *Physical Religion: The Gifford Lectures*. Rev. ed. New York: Longmans, Green, 1898.
Nakamura, Hajime, *A History of Early Vedānta Philosophy*, Part 2, Delhi: Motilal Banarsidass, 1983.
Narang, G.C., *Transformation of Sikhism*, New Delhi: New Book Society of India, 1956.
Nesbitt, Eleanor, *Sikhism: A Very Short Introduction,* Delhi: Oxford University Press, 2016.
Nigham, R.L., "Bābā Śrī Chand," *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, Gobind Sadan, New Delhi, 1994.
Norman, H.C. (ed.), *The Aṭṭhakathā on the Dhammapada,* 4 vols, London: Pali Text Society, 1906-15.
Oberoi, Harjot, *The Construction of Religious Boundaries: Culture, Identity, and Diversity in the Sikh Tradition,* Chicago: University of Chicago Press, 1990.
O'Brien, Patrick Karl (ed.), *Atlas of World History*, concise edn. New York: Oxford University Press, 2002.
Olderberg, H. ed. *The Vinaya Piṭakaṃ*, 5 vols. London: Pali Text Society, 1879-1883.
Oldenberg, Hermann, *The Religion of the Veda (Die religion des Veda)*. Translated by Shridhar Shrotri. Delhi: Motilal Banarsidass, 1988.
Orsolle, Ernest, *Le Caucase et la Perse*, Paris: E. Plon, Nourrit, et cie, 1885.
Pal, Pratapaditya (ed.), *Puja and Piety: Hindu, Jain, and Buddhist Art from the Indian Subcontinent,* Berkeley: University of California Press, 2016.
Panaino, Antonio, "Tištrya," *Encyclopedia Iranica*, 1987 (available online at www.iranicaonline.org). Accessed on 31 January 2017.
Pargiter, F.E., *Ancient Indian Historical Tradition*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1962.
Payne, C.H., *A Short History of the Sikhs,* 2nd ed., Patiala: Department of Languages, Punjabi University, 1970.
Payne, Richard K. and Witzel, Michael (eds.), *Homa Variations: The Study of Ritual Change across the Longue Durée*, New York: Oxford University Press, 2015.
Pickthall, M.W. and Muhammad Asad, *Islamic Culture,* vol. 43*,* Hyderabad: Islamic Culture Board, 1969.
Pinch, Vijay, "Gosain Tawaif: Slaves, Sex, and Ascetics in Rasdhan, c. 1800-1857," *Modern Asian Studies*, vol. 38, part 3, 2004: 559-597.
Pinch, William R., "The Slave Guru: Masters, Commanders, and Disciples in Early Modern South Asia," in Copeman, Jacob and Ikegame Aya (eds). 1914, *The Guru in South Asia: New Interdisciplinary Perspectives*, London: Routledge, 2014: 64-79.
Plutarch, *Plutarch's Lives,* ed. with notes and preface by A.H. Clough*,* Volume II. New York: The Modern Library, 2001.
Pyne, S.J., *Fire: a brief history*, Seattle: University of Washington Press, 2001.

Pyne, Stephen J., "Fire in the mind: changing understandings of fire in Western civilization," *Philosophical Transactions: Biological Sciences* , The Royal Society, 5 June 2016, vol. 371, no. 1696, 5 June 2016: 1-8.

Quinn, Malcolm. *The Swastika: Constructing the Symbol,* London: Routledge, 2005.

Rao, S.R., *Lothal: A Harappan Port Town (1955-62)*, vol. 1, Memoirs of the Archaeological Survey of India No. 78, New Delhi: Archaeological Survey of India, 1979.

Rao, S.R. *Lothal*, New Delhi: Archaeological Survey of India, 1985.

Rao, S.R., *Dawn and Devolution of the Indus Civilization*, Delhi: Aditya Prakashan, 1991.

Rao, T. A. Gopinatha, *Elements of Hindu Iconography*, 4 vols., Delhi: Motilal Banarsidass, 1998.

Rhys Davids, C.A.F. (ed.), *The Vibhaṅgha*, London: Pali Text Society, 1904.

Rhys Davids, T.W. and J.E. Carpenter (eds.), *The Dīgha Nikāya,* 3 vols., London: Pali Text Society, 1890-1911.

Rigopoulos, Antonio, "Vibhūti," in Knut A. Jacobsen (ed.), *Brill's Encyclopedia of Hinduism*, vol. 5, Leiden: Brill Academic, 2013: 182-183.

Rodrigues, Hillary, *Ritual Worship of the Great Goddess: The Liturgy of the Durgā Pūjā with Interpretations,* State University of New York Press, 2003.

Salomon, Richard, *Indian Epigraphy: A Guide to the Study of Inscriptions in Sanskrit, Prakrit, and Other Indo-Aryan Languages,* New York: Oxford University Press, 1998.

Sandhu, Kiranjeet, *The Udāsīs in the Colonial Punjab: 1849 A.D.- 1947 A.D.,* a Ph.D. thesis submitted through the Department of History, Guru Nanak Dev University, Amritsar, 2011.

Sankalia, H.D., *Prehistory and Protohistory of India and Pakistan,* Poona: Deccan College, 1974.

Sarao, K.T.S. ,*The Dhammapada: A Translator's Guide,* New Delhi: Munshiram Manoharlal, 2009.

Sarao, K.T.S., "Gurū Nānak (1469-1539)," *Bloomsbury Encyclopedia of Philosophers*, London: Bloomsbury Academic, 2020.

Sarao, K.T.S., "Śrī Chand (1494-c.1629)," *Bloomsbury Encyclopedia of Philosophers*, London: Bloomsbury Academic, 2020.

Saraswati, Swami Tattvavidananda, *Gaṇapati Upaniṣad*, Delhi: D.K. Printworld Ltd, 2004.

Scharf, Peter, *Rāmopākhyāna-- The Story of Rāma in the Mahābhārata: A Sanskrit Independent-Study Reader*, London: Routledge, 2014.

Schmidt, Hanns-Peter, "Mithra," https://www.iranicaonline.org/articles/mithra. Accessed on 21 November 2019.

Shapira, Dan, "A Karaite from Wolhynia Meets a Zoroastrian from Baku," *Iran and the Caucasus*, vol. 5, no. 1, 2001: 105-106.

Sharma, Arvind, *Classical Hindu Thought: An Introduction,* Oxford University Press, 2000.
Sharma, B.R., "Symbolism of Fire-Altar in the Vedas: A Study with Special Reference to Āpaḥ," *Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute*, vol. 33, no. ¼, 1952: 189-196.
Sharma, Madhulika, *Fire Worship in Ancient India*, Jaipur: Publication Scheme, 2002.
Sharma, Ram Karan, *Śivasahasranāmāṣṭakam: Eight Collections of Hymns Containing One Thousand and Eight Names of Śiva*, Delhi: Nag Publishers, 1996.
Shende, N.J., "Agni in the Brāhmaṇas of the Ṛgveda," Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, volume 46, no. ¼, 1965: 1-28.
Sivaramamurti, C., *Śatarudrīya: Vibhūti of Śiva's Iconography*, Delhi: Abhinav Publications, 1976.
Singh, Dharam Vir, *Hinduism: An Introduction.* New Delhi, Rupa & Co., 2003.
Singh, Jas, *Jas: Chronicles of Intrigue, Folly, and Laughter in the Global Workplace,* Minneapolis: Two Harbors Press, 2014.
Singh, Khushwant, *History of the Sikhs*, vol. I, Princeton: Princeton University Press, 1963.
Singh, Kirpal, *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, New Delhi: Gobind Sadan Publication, 1994.
Singh, Kulraj, "Preface to the English Version," in *Sikh Reht Maryada*, Amritsar: Shiromani Gurudwara Parbandhak Committee, 31 August 1994.
Singh, K.V., *Hindu Rites and Rituals: Origins and Meanings*, London: Penguin, 2015.
Singh, Nirmal, *Searches in Sikhism: Thought, Understanding, Observance*, New Delhi: Hemkunt Publishers, 2008.
Singh, Pashaura, *The Guru Granth Sahib: Canon, Meaning, and Authority,* New Delhi: Oxford University Press, 2000.
Singh, Pashaura, *Life and Work of Guru Arjan: History, Memory, and Biography in the Sikh Tradition,* New Delhi: Oxford University Press, 2006.
Singh, Pashaura and Louis E. Fenech, *The Oxford Handbook of Sikh Studies*, Oxford: Oxford University Press, 2014.
Singh, Raghubir Singh, "Bābā Śrī Chand and the Persian Chronicles," *Seminar Papers on Bābā Śrī Chand ji*, New Delhi: Gobind Sadan, 1994.
Singh, Sulakhan, "The Udāsī Establishment under Sikh Rule," *Journal of Regional History*, vol. 1, History Department, Guru Nanak Dev University, Amritsar, 1980: 70-87.
Singh, Sulakhan, *Heterodoxy in the Sikh Tradition*, Jalandhar: ABS Publications, 1999.
Singh, Teja and Ganda Singh, *A Short History of the Sikhs*, vol. I, Bombay: Orient Longman, 1950.
Singh, Upinder, *A History of Ancient and Early Medieval India: From the Stone Age to the 12th Century,* Delhi: Pearson Education India, 2008.

Singh, Wazir, “Metaphysics in the Philosophy of Guru Nanak,” *Journal of Religious Studies*, vol. 1, no. 1,1969: 51-63.
Sircar, Dineschandra, *The Śākta Pīṭhas*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1998.
Skorupski, Tadeusz, “Buddhist Permutations and Symbolism of Fire” in Paine, R.K. and Witzel, M. (eds.). *Homa Variations: The Study of Ritual Change across the Longue Durée,* New York: Oxford University Press, 2015: 67-125.
Smith, H. (ed.), *Sutta-Nipāta Aṭṭhakathā being Paramatthajjotikā II,* 3 vols, London: Pali Text Society, 1966-1972.
Staal, Fritz (ed.), *Agni: the Vedic ritual of the fire altar,* 2 vols., Berkeley: Asian Humanities Press, 1933.
Stewart, C.E., “Account of the Hindu Fire-Temple at Baku, in the Trans-Caucasus Province of Russia,” *The Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland*, April 1897: 311-318.
Steinert, Dirk, M., *Die Inschriften am Feuertempel von Suraxani (Baku, Aserbaidschan): Bildmaterial und Hintergrundbibliographie*, München, 2012.
Talageri, Shrikant G., *The Rigveda: A Historical Analysis,* Delhi: Aditya Prakashan, 2000.
Thapar, Romila, *The Past Before Us: Historical Traditions of Early North India*, Harvard: Harvard University Press, 2013.
Thielmann, Max Guido von freiherr, *Journey in the Caucasus*, *Persian, and Turkey in Asia*, Eng. tr. by Charles Heneage, London: J. Murray, 1875.
Thomson, Robert W. (trans.), *History of the Armenians,* (ed. James Bryce, Cambridge, MA: Harvard University Press, 1978.
Tod, James, *Annals and Antiquities of Rajasthan, Or the Central and Western Rajput States of India,* ed. with notes by William Crooke, vol. 1, London: Oxford University Press, 1920.
Toumanoff, Cyril, *Studies in Christian Caucasian History*, Washington: Georgetown University Press, 1963
Tozer, Henry T., *Turkish Armenia and Eastern Asia Minor*, London: Longmans, Green, and Co, 1881.
Trenckner, V. (ed.), *The Milindapañho*, London: Williams and Norgate, 1880.
Udāsīna, Paṇḍita Brahmānanda, *Gurū Udāsīna Matta Darapana* in Punjabi), Sakhar: A.H. Udasin, 1923.
Unvala, Jamshedji Maneckji, “Inscriptions from Suruhani near Baku,” *Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society*, New Series, vol. 26, part I, 1950: 81-87.
Ussher, John, *Journey from London to Persepolis: Including Wanderings in Daghestan, Georgia, Armenia, Kurdistan, Mesopotamia, and Persia*, London: Hurst and Blackett Publishers, 1865.
Vanamali, *Shakti: Realm of the Divine Mother*, New York: Simon and Schuster, 2008.

Villotte, J., *Voyage d'une missionnaire de la Compagnie de Jésus en Turquie, en Perse, en Arménie, en Arabieet en Barbarie*, Paris: J. Vincent, 1730.
White, C.S.J., "Kṛṣṇa as Divine Child," *History of Religions*, 10 (2), 1970: 156-177.
Widgery, Alban, "The principles of Hindu Ethics," *International Journal of Ethics*, vol. 40, no. 2, 1930: 234-237.
Wilke, Annette and Oliver Moebus, *Sound and Communication: An Aesthetic Cultural History of Sanskrit Hinduism*, Berlin: De Gruyter, 2011.
Williams, Joanna Gottfried (ed.), *Kalādarśana: American Studies in the Art of India,* Leiden: E.J. Brill, 1981.
Wilson, H.H., *Select Specimens of the Theatre of the Hindus*, vol. 2, London: Parbury, Allen, and Co, 1835: 296-398.
Wilson, H.H., *Vāyu Purāṇa,* London: Trübner and Co, 1840.
Windish, E. (ed.), The *Itivuttaka*, London: Pali Text Society, 1889.
Woodward, F.L. (ed.), *Paramattha-Dīpanī: Theragāthā-Aṭṭhakathā, The Aṭṭhakathā of Dhammapālācariya*, 3 vols, London: Pali Text Society, 1940-49.
Wrangham, R., *Catching fire: How cooking made us human*, New York: Basic Books, 2010.
Young, Ulysses, "Travels and Adventures of a Hindu Mystic," *East and West,* vol. 6, no. 4, January1956: 332-334.
Ziyadov, Taleh, *Azerbaijan as a Regional Hub in Central Asia: Strategic Assessment of Euro-Asian Trade and Transportation*, Baku: Azerbaijan Diplomatic Academy, 2012.
Zonn, Igor S., A.N. Kosarev et al, "Baku,"*The Caspian Sea Encyclopedia*, New York: Springer, 2010: 61.